भारत के त्यौहार

कुछ अन्य प्रकाशन

युगपुरुष राम (सचित्र, पुरस्कृत)	अक्षयकुमार जैन	5.00
रावण महाकाव्य (पुरस्कृत)	हरदयालुसिंह वर्मा	6.00
गीत-गोविन्द (सचित्र, पुरस्कृत)	विनयमोहन शर्मा	6.00
दमयन्ती (पुरस्कृत महाकाव्य)	ताराचन्द्र हारीत	8.00
ज्ञान-सतसई	राजेन्द्र शर्मा	3.[illegible]
कौन्तेय-कथा (काव्य)	उदयशंकर भट्ट	1[illegible]
भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय	हरिदत्त वेदालंकार	1.00
भारत का सांस्कृतिक इतिहास (सचित्र)	हरिदत्त वेदालंकार	8.00
भारत की सांस्कृतिक परम्परा (सचित्र)	केदारनाथ शास्त्री	3.00
अभिज्ञान शाकुन्तल (नाटक)	अनु० इन्दुशेखर	3.00
कुरान और धार्मिक मतभेद	मौलाना आज़ाद	2.00
वेला हुई अबेर (अवतार-गाथा)	शैलेश मटियानी	2.00
रामायण की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
महाभारत की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	1.25
चरित्र-निर्माण की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	1.50
पुराणों की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
भागवत की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
सांस्कृतिक कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
देवताओं की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
तपस्वियों की कहानियाँ (सचित्र)	राजबहादुरसिंह	2.00
कुरान की लोक-कथाएँ (सचित्र)	भीमसेन त्यागी : मोहन गुप्त	1.25
धार्मिक लोक-कथाएँ (सचित्र)	श्रीकृष्ण	1.50
बाईबिल की लोक-कथाएँ (सचित्र)	मनोहरलाल वर्मा	1.50

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–6

भारतीय जन-मानस के सौ से अधिक त्यौहारों, पर्वों व राष्ट्रीय उत्सवों का रोचक विवरण

सुरेशचन्द्र शर्मा

1963
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

BHARAT KE TYOHAR

(Festivals of India)

by

Suresh Chandra Sharma

Rs. 3.00

प्रकाशक
रामलालपुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज़ खास, नई दिल्ली
महानगर, लखनऊ-6
चौड़ा रास्ता, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
माई हीरां गेट, जालन्धर
बेगमपुल रोड़, मेरठ
रामकोट, हैदराबाद

प्रथम संस्करण : 1963
मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
शोभा प्रिंटर्स
नई दिल्ली

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-४
मई ७,१९६२
वैशाख १७,१८८४ शक

दो शब्द

हमारे गाँवों के जीवन का त्यौहारों से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ग्रामीण जनता में इनके द्वारा न केवल धार्मिकता जगी रही है वरन् ये मनोरंजन और शिक्षा के भी साधन रहे हैं। मैंने अपनी आत्मकथा में अपने गाँवों के जीवन का वर्णन करते हुए होली, जन्माष्टमी, रामनवमी, दशहरा, अनन्त चतुर्दशी और मुहर्रम का जिक्र किया है।

पंडित सुरेशचन्द्र शर्मा ने अपनी पुस्तक में हिन्दुओं के ९७, अन्य धर्मावलम्बियों के ८ और ५ राष्ट्रीय त्यौहारों का विवरण दिया है। समाज-विज्ञान की दृष्टि से अभी भारतीय त्यौहारों का अध्ययन नहीं हुआ है। त्यौहारों के सम्बन्ध में विवरणात्मक पुस्तकें भी कम ही हैं। देश के अन्य भागों में हिन्दुओं के अंदर ही अन्य कई त्यौहार मनाए जाते हैं। इनकी रीतियाँ-विधियाँ भी अलग-अलग हैं। इस विषय पर अभी बहुत कुछ लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि यह पुस्तक इस दिशा में एक शुभ प्रयास है। पंडित सुरेशचन्द्र शर्मा इसके लिए बधाई के पात्र हैं।

राजेन्द्र प्रसाद

भूमिका

त्यौहार—हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। शताब्दियों और सहस्राब्दियों से वह हमारे सामाजिक जीवन में नव-प्रेरणाओं का सन्देश देते रहे हैं। गत ऐतिहासिक स्मृतियों को जागृत करते हुए वह हमारे पिछले गौरव के मंगलमय मंत्र हमें सिखाते जाते हैं।

हिन्दू जाति का जीवन इन व्रतों और उत्सवों से सँजोया हुआ है। उनका आरम्भ किसी न किसी समाज-सुधार के पहलू को लेकर हुआ है। भारत धर्म-प्राण देश है। इसलिए समाज-सुधार की बातों को भी धर्म-निष्ठा का स्वरूप देकर हमने अंगीकार किया है। यह अवश्य है कि आज वे उत्सव केवल चिह्न पूजा अथवा अंध-विश्वासों के ढेर बन गए हैं। उनके मूल उद्देश्यों को भुलाकर हम यह मान बैठे हैं कि यह सब ढकोसले या पुरानेपन की दुःखद परिपाटियाँ हैं। परन्तु ऐसा सोचना समाज की दृष्टि से हितकर नहीं है। व्रतों, उत्सवों और जयंतियों की उपेक्षा करने से हमारा सामाजिक और नागरिक जीवन शुष्क, नीरस और निष्प्राण हो जायगा। इन त्यौहारों के अन्तराल में ही

'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

सत्य तो यह है कि भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूप अत्यन्त उदार है। जिसके कारण उसके व्यावहारिक रूप में ऐसी लचक पैदा हो गई है कि धान के छोटे-छोटे कोमल पौधों की भाँति वह समय आने पर कुछ-कुछ झुकती रही। बड़े-बड़े अंधड़ उस पर आए और निकल गए। थोड़ा-सा झुककर वह ज्यों की त्यों खड़ी रही। उसके मुकाबिले पर विश्व की अनेक संस्कृतियाँ उठकर खड़ी हुईं और सघन वट वृक्ष के समान दृढ़तापूर्वक स्थिर रहीं। परन्तु समय की भयंकर आँधियों ने उन्हें उखाड़कर धराशायी कर दिया। आज दुनिया में उन के नामों-निशान भी नहीं बचे। किन्तु भारतीय संस्कृति अबतक किसी न किसी रूप में क़ायम है। अनेक मत और वादों तथा महान् आत्माओं ने समय-समय पर जन्म लेकर उसे नए-नए रूप दिए। इन रूपों को

पाकर भी वह अपनी प्राचीन मान्यताओं का आधार लिये हुए अब तक खड़ी है।

इन परम्पराओं को सुरक्षित रखने वाले अनेक महापुरुषों ने कालान्तर में अपने सुसंगठित चरित्र और उपदेशों से उसका संरक्षण किया। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी और आचार्य विनोबा आदि विभूतियों ने अपने-अपने ढंग से अनेक व्रत और महोत्सवों से सुसज्जित भारतीय संस्कृति के महत्त्व को प्रकट किया।

महात्मा सूरदास, संत तुलसीदास, मीराबाई, कबीर और नानक प्रभृति महात्माओं ने उसे अपने युग के अनुरूप मोड़ देकर उसे अक्षुण्ण रखा। उन्हीं आदर्शों को लेकर हिन्दू-धर्म विश्व की अनेक संस्कृतियों के उत्थान और पतन के दृश्य देख चुका है। समय-समय पर उठने वाले उन संस्कृतियों के झंझावात ने हिन्दू धर्म को भी झंझोड़ा, परन्तु उन आंधियों और तूफानों का सामना करते हुए वह अपने वर्तमान विश्वासों के अंतराल में अतीत के गौरव को छिपाए, उनके महत्त्व की गाथा विश्व के कानों में भरता जाता है। इतना ही नहीं, उन संस्कृतियों के प्रवर्तकों को भी हिन्दू-धर्म ने अपने अवतारों में सम्मिलित कर लिया और उनमें से किसी की जन्म तिथि, किसी की निधन तिथि को चिर-स्मृति के रूप में स्वीकार करके अपनी उदारता का परिचय दिया। एवं उनकी कही हुई बातों को आत्मसात् कर लिया।

इस निष्ठा का अर्थ अंध श्रद्धा या रूढ़िवाद नहीं है। वह तो जीवन को प्रशस्त और व्यापक बनाने का मार्ग है। उसकी शक्ति स्वयं मानव है। मानव का विकास ही उसका लक्ष्य है। हिंदू जाति को आर्य, द्रविड़, मंगोल, किरात, हूण, विद्याधर, सर्प, गंधर्व, यवन, पुलिंद, खस, आभीर, किन्नर, यक्ष, नाग आदि श्रेष्ठ जातियों ने मिलकर महासागर का रूप दे दिया है। यह महासागर अनेक रत्न-राशियों को अपने अंतरंग में छिपाये हुए पड़ा है। इस अलौकिक रत्न भंडार को **'जिन खोजा तिन पाईयाँ गहरे पानी पैठि।'**

यह गहराई अपनी सभ्यता की कहानी प्रत्येक उत्सव के रूप में हमें सुनाती हुई अबाध गति से आगे बढ़ती चली जा रही है। अनेक जातियों ने उसे अपनाया और अपने संस्कारों, कर्मकांड, परम्परा और प्रथाओं को लेकर इसमें आ

मिलीं। हिंदू धर्म ने उन्हें अपने में इस तरह से मिला लिया कि वह निर्मल गंगा के प्रवाह की तरह प्रवाहित होता हुआ विकास के महा समुद्र की ओर बढ़ता चला जा रहा है। उसकी सहिष्णुता का रहस्य ही इन उदार विचारों में बिखरा पड़ा है।

व्रतों का सामान्य अर्थ आज 'उपवास' हो गया है। उपवास शब्द का अर्थ है दुर्गणों एवं दोषों से बचकर आत्मा अथवा गुणों के साथ वास अर्थात् निवास। अनुभव से देखा जा सकता है कि मन की कलुषित भावनाओं से मुक्त होकर चित्तवृत्तियों को आत्मा अथवा सत्य में सन्निविष्ट करने की प्रेरणा उपवास के समय में सर्वाधिक होती है। प्रत्येक महीना इन उपवासों और व्रतों के नियमों से संजोया हुआ है। ये व्रत और उपवास केवल स्त्रियों अथवा माताओं के लिए ही नहीं है वरन् प्रत्येक बालक-बालिका, वृद्ध, युवा और महिलाओं के लिए उनका विधान है। विधानों में हमारे देश के भिन्न मतावलंबियों के लिए अपनी-अपनी कुल परम्परागत मान्यता के अनुसार चलने की पूरी सुविधाएँ प्रदान की गईं हैं।

व्रतों की कथाओं का भी जीवन को प्रशस्त करने के मार्ग में कुछ कम महत्त्व नहीं है। वे कथाएँ बड़ी योग्यता के साथ लिखी गई हैं। जिनसे सरल हृदय नागरिकों के हृदय पर तत्काल श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है। यह कथाएँ दरअसल इन व्रतों की संजीवनी शक्ति हैं। उनका संकल्प लेने से मानव में उसके पालन करने की तीव्र एवं बलवती प्रेरणा प्राप्त होती है और उसे छोड़ देने से संचित पुण्य नष्ट होता है—

पूर्वं व्रतं गृहित्वा यो नाचरेत काममोहितः।
जीवन भवति चांडालो मृतः श्वा जायते॥

इतने व्यापक विषय पर प्रस्तुत ग्रंथ में जो कुछ लिखा गया है वह इतना ही है यह कहना भूल होगी। अभी तो इस विषय पर बहुत कुछ जानने को बाकी है। फिर भी कुछ खास-खास व्रत, उत्सवों और जयन्तियों की कहानी, उनका आरम्भ और उनकी मान्यताएँ इस छोटे-से रूप में संकलन की गईं हैं।

यदि इनसे समाज का कुछ उपकार हो सका तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा। विषय जटिल ज़रूर है और मेरी योग्यता इतनी अधिक नहीं है कि ऐसे गम्भीर विषय पर कुछ अधिक सामग्री भेंट कर सकूं। फिर भी जिन महा-

पुरुषों, आचार्यों और लेखकों का आधार लेकर इस ग्रंथ को पूरा किया गया है उनका मैं कृतज्ञ हूँ। भाषा की दुरुहता पर अधिक ध्यान न रखकर लोकोपयोगी ग्रंथ बन सके इस पर अधिक लक्ष्य रखने का प्रयत्न किया गया है। समाज-सुधार की इच्छा रखने वाले भाइयों को हिंदू संस्कृति और उसके त्यौहारों के बारे में समझने का अवसर मिलेगा ऐसी आशा है। तथापि इसमें यदि कोई त्रुटि प्रतीत हो तो उसे मुझे बताने की कृपा अवश्य करें जिससे पुस्तक के अगले संस्करण में उसका संशोधन किया जा सके।

इस ग्रंथ के लेखन में जिन विद्वानों की मूल्यवान कृतियों से मैंने सहायता ली है, उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ। आशा है वे अपने इस विनम्र अनुगामी की इस ढिठाई पर क्षमा करेंगे।

—सुरेशचन्द्र शर्मा

क्रम

1. संवत्सरारम्भ

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा

चैत्र महीने की शुक्ला प्रतिपदा को विक्रमीय सम्वत् का पहला दिन माना जाता है। इसीलिए इसे संवत्सरारम्भ कहते हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि पृथ्वी के साथ संवत्सरों का चिर-सम्बन्ध है। प्रत्येक संवत्सर का इतिहास हमारे पिछले वर्ष के कार्यों का मूल्यांकन और अगले वर्ष के शुभ संकल्पों का द्योतक है।

वेद तो माँ वसुंधरा का यशोगान करते हुए यहाँ तक कहते हैं कि हे पृथ्वी! तुम्हारे ऊपर संवत्सर का नियमित ऋतुचक्र घूमता है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर और बसंत का विधान अपनी-अपनी निधियों को प्रतिवर्ष तुम्हारे चरणों में अर्पण करता है। प्रत्येक संवत्सर का लेखा असीम है। माँ वसुंधरा की दैनिक चर्या तथा अपनी कहानी दिन-रात और ऋतुओं के द्वारा संवत्सर में आगे बढ़ती चली जा रही है।

बसंत ऋतु की किस घड़ी में किस फूल को प्रकृति अपने रंगों की तूलिका से रंगती है, दिन-रात तथा ऋतुएँ किस बनस्पति में माँ वसुंधरा का रस जमा करती हैं, पंख फैलाकर उड़ने वाली तितलियाँ एवं यत्र-तत्र चमकने वाले पटबीजने कहाँ-से-कहाँ जाते हैं, किस समय क्रौंच पक्षियों की कलरव करती हुई पंक्तियाँ मानसरोवर से लौटती हुई हमारे हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों में मंगल करती हैं, किस समय में तीन दिन तक बहने वाला प्रचंड फगुनहरा वृक्षों के पुराने पत्तों को धराशायी कर देता है, और किस समय पुरवाई हवा चलकर आकाश को मेघों की छटा से आच्छादित कर देती है? इस ऋतु विज्ञान की कथा विश्व के कानों में कहते हुए संवत्सर का प्रत्येक पल अपनी तेज़ रफ़्तार से आगे

बढ़ता चला जाता है। उसी संवत्सर का आरम्भ इस शुभ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से होता है।

प्राचीन युग की मान्यता के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि-रचना इसी दिन से आरम्भ हुई थी। ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि दूसरे सभी देवी-देवताओं ने आज से ही सृष्टि के संचालन का कार्यभार सम्भाला। अथर्ववेद में विधान है कि आज के दिन उसी संवत्सर की सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर पूजनी चाहिए। यह संवत्सर ही तो साक्षात् सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्माजी का मूर्तिमान प्रतीक है।

आज के दिन से रात्रि की अपेक्षा दिन का परिमाण बढ़ने लगता है। ईरानियों में आज ही के दिन नौरोज मनाया जाता है, जो संवत्सरारम्भ का पर्याय है। धार्मिक तथा ऐतिहासक दृष्टियों से इस तिथि का इसीलिए इतना अधिक महत्त्व है।

शक्ति-संप्रदाय के अनुयायियों के मत से चैत्र शुक्ल-प्रतिपदा से नवरात्रि का आरम्भ होता है। शाक्त लोग अपने व्रत-अनुष्ठान आदि आज की तिथि से आरम्भ करते हैं। और समूचा वर्ष हमारे तथा देश के लिए शुभ हो; इस मंगल-कामना से शक्तिस्वरूपा भगवती दुर्गा का पाठ आरम्भ करते हैं जो नौ दिन तक चलता है। वैष्णव लोग भी आज से रामायण आदि का पाठ आरम्भ करते हैं।

वैदिक युग में समस्त नागरिक प्रातःकाल स्नान करके गंध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर विधिवत् संवत्सर का पूजन करते थे और परस्पर एक-दूसरे से मिलकर हरे-भरे एवं सरसों के पीले फूलों के परिधान में लिपटे खेतों पर जाकर नई फसल का दर्शन करते थे। बाद में अपने-अपने घरों पर आकर नई बनी हुई चौकी अथवा बालू की वेदी पर स्वच्छ वस्त्र बिछाकर उस पर हल्दी अथवा केसर से रंगे हुए अक्षत् का अष्टदल कमल बना, उसके ऊपर साबुत नारियल या संवत्सर ब्रह्मा की सुवर्ण प्रतिमा रखकर 'ओं ब्रह्मणे नमः।' मंत्र से ब्रह्मा का आह्वान और पूजन करके गायत्री मंत्रों से हवन करते थे। अंत में सारा वर्ष सबका कल्याण करने वाला हो यह प्रार्थना करते थे।

आज भी देश को हर-भरा और सुसम्पन्न बनाने के लिए हमारी

'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के अनुसार समस्त नागरिकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने श्रम से उत्पादित नई फसल का खेतों पर जाकर दर्शन करें। और यदि उसमें कमी है तो उसे पूरा करने का शुभ संकल्प करें; एवं जरूरतमंदों को और ग़रीबों को भोजन करावें तथा सामर्थ्य के अनुसार नए वस्त्रों का दान करें। इससे समाज में सुख और शान्ति होगी, आपस का प्रेम बढ़ेगा। निर्धनों को धन देकर और निर्बलों की सहायता करके ऊँचा उठने का अवसर प्रदान करें। गिरे हुए पिछड़े लोगों को आगे बढ़ने का मौका दें। आपसी कटुताओं को दूर करें और छोटे-बड़े या ऊँच-नीच की भावना मिटाकर सबके साथ समानता का व्यवहार आरम्भ करें। यही संवत्सर-पूजन का रहस्य है।

2. अरुन्धती व्रत

चैत्र शुक्ला तृतीया

अरुन्धती प्रजापति कर्दम ऋषि की पुत्री और महर्षि वशिष्ठ की धर्मपत्नी थीं। उन्हीं के नाम पर इस व्रत की परम्परा आरम्भ हुई थी। सौभाग्याकाँक्षिणी महिलाओं को उनके चरित्र से प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं, साथ ही बाल-वैधव्य दोष का परिहार होता है। यह व्रत चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होकर तृतीया को पूरा होता है। प्राचीनकाल में तो लोग किसी नदी पर अथवा घर में स्नान करके इस व्रत का संकल्प करते थे। दूसरे दिन द्वितीया को नवीन धान्य पर कलश रखकर उसके ऊपर अरुन्धती, वशिष्ठ और ध्रुव की तीन मूर्तियाँ स्थापित करते थे। गणपति के पूजन के पश्चात् उसका पूजन होता था। तृतीया को शिव-पार्वती का पूजन करके व्रत की समाप्ति होती थी। आज-कल इस व्रत का रिवाज कम हो गया है। इसकी कथा पुराणों में इस प्रकार दी गई है :

बहुत प्राचीनकाल में किसी विद्वान् ब्राह्मण की कन्या छोटी उम्र में ही विधवा हो गई। एक दिन यमुना नदी में स्नान करके वह शिव-पार्वती का पूजन कर रही थी कि स्वयं आशुतोष शंकर-पार्वती आकाश मार्ग से उधर निकले। देवी पार्वती ने शंकर से उसके बाल-वैधव्य का कारण पूछा। शिव ने कहा—देवि ! पहले जन्म में यह लड़की पुरुष थी और एक ब्राह्मण परिवार में इसका जन्म हुआ था। परन्तु परस्त्री में आसक्ति रखने के कारण इसे नारी का जन्म मिला और अपनी विवाहिता पत्नी को दुखी रखने के हेतु वैधव्य का दुख उठाना पड़ रहा है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' के नियमानुसार इसे यह दुख सहना पड़ेगा।

पार्वती ने पूछा—प्रभो ! क्या इस पाप का प्रायश्चित्त किसी रीति से हो सकता है ?

शंकर ने कहा—अवश्य ! आज से बहुत पहले जन्मी हुई सती अरुन्धती के पावन चरित्र को स्मरण करती हुई यह बालिका यदि अपना शरीर त्याग दे तो इसे अगले जन्म में सदाचार पालन करने की बुद्धि प्राप्त हो सकती है और इसके बाल-वैधव्य योग का परिहार हो सकता है।

देवी पार्वती ने अवसर देखकर अकेले ही उस बालिका के सामने पहुँच उसके दोष और गुण उसे समझाए। एवं अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए, पतिव्रत धर्म का महत्त्व तथा देवी अरुन्धती के चरित्र को समझाया। पार्वती की सीख पाकर उस बालिका ने चिरकाल तक देवी अरुन्धती का स्मरण करते हुए शरीर त्याग किया। जिसके फल-स्वरूप उसे दूसरे जन्म में सुखी गृहिणी का जीवन प्राप्त हुआ।

अपनी विवाहिता पत्नी का अनादर और परस्त्री में अनुराग रखना दोनों ही भयंकर सामाजिक अपराध हैं। इन दोनों दुष्प्रवृत्तियों के फल घातक होते हैं। इनके हेतु काफी दंड भोगना पड़ता है। इनसे बचने का उपाय यही हो सकता है कि ऐसे व्रत और अनुष्ठानों के द्वारा शुद्ध मनो-वृत्ति का विकास किया जावे। यही इस कथा का रहस्य है। यदि पुरुष यह चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली

गृहलक्ष्मियों के समान हों तो उन्हें भी एक पत्नीव्रत का पालन करते हुए स्त्रियों का आदर करना सीखना होगा। तभी उनके जीवन में सुख और शान्ति क़ायम रह सकेगी।

3. गनगौर व्रत

चैत्र शुक्ला तृतीया

गनगौर व्रत—चैत्र शुक्ला तृतीया को रखा जाता है। यह हिंदू स्त्री मात्र का त्यौहार है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की प्रथा एवं भिन्न-भिन्न कुल परम्परा के भेद से पूजन के तरीकों में थोड़ा-बहुत अंतर हो सकता है। परन्तु इसकी धाराओं में भेद नहीं है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ बहुत प्राचीनकाल से इस व्रत को रखती आई हैं।

मध्याह्न तक उपवास रखकर, पूजन के समय रेणुका की गौर स्थापित करके, उस पर चूड़ी, महावर, सिन्दूर, नए वस्त्र, चन्दन, धूप, अक्षत, पुष्प और नैवेद्य आदि अर्पण किया जाता है। उसके बाद कथा सुनकर व्रत रखने वाली स्त्रियाँ गौर पर चढ़ा हुआ सिन्दूर अपनी मांग में लगाती हैं। गनगौर का प्रसाद पुरुषों को नहीं दिया जाता है। इस व्रत के सम्बन्ध में जो लोक-कथा आमतौर पर गाँवों में प्रचलित है वह इस प्रकार है :

एक बार देवर्षि नारद के सहित भगवान् शंकर विश्व-पर्यटन के लिए निकले। सती पार्वती भी उनके साथ थीं। तीनों एक गाँव में गए। उस दिन चैत्र शुक्ला तृतीया थी। गाँव की सम्पन्न स्त्रियाँ शिव-पार्वती के आने का समाचार पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और उन्हें अर्पण करने के लिए तरह-तरह के रुचिकर भोजन बनाने लगीं। परन्तु ग़रीब स्त्रियाँ जो जहाँ जैसे बैठी हुई थीं, वैसे ही हल्दी-चावल अपनी-अपनी थालियों में रखकर दौड़ीं और शिव-पार्वती के पास पहुँच गईं।

हमारा देश तो ग़रीबों का देश है। ग़रीबों का उपास्य शंकर के अलावा और कौन देवता हो सकता है, जिसके पास पहनने को बढ़िया वस्त्रों के बजाय वाघम्बर मात्र है एवं रहने के लिए फूँस की झोंपड़ी भी नहीं है। फिर भी ग़रीबों के उस देवता की शक्ति अपरम्पार है। विश्व की कोई भी निधि ऐसी नहीं है जो उस देवता के चरणों पर न लोटती हो। इसलिए अपनी सेवा में आई हुई गाँव की ग़रीब और सीधी-सादी महिलाओं के झुंड को देखकर शिव गद्‌गद् हो गए और उनके सरल एवं निष्कपट भाव से अर्पण किये हुए पत्र-पुष्प को स्वीकार करके आनन्द-मग्न हो गए। अपने पति को हर्ष से भरा हुआ देखकर, सती पार्वती का मन भी आनन्द से नाच उठा। उन्होंने आगन्तुक महिलाओं के ऊपर सुहाग रस (सौभाग्य का टीका लगाने की हरदी) छिड़क दी। वे महिलाएँ सौभाग्य दान पाकर अपने-अपने घर चली गईं।

इसके बाद सम्पन्न कुलों की वधूटियाँ आईं। वे सब सोलहों शृंगार से सुसज्जित थीं। उनपर चमकते हुए आभूषणों और सुन्दर वस्त्रों की बहार थी। चाँदी और सोने के थालों में वे अनेक प्रकार के पकवान बनाकर लाई थीं। उन्हें देखकर आशुतोष शंकर ने पार्वती से पूछा—देवि ! तुमने संपूर्ण सुहाग रस तो अपनी दीन पुजारिनों को दे दिया। अब इन्हें क्या दोगी ?

अन्नपूर्णा पार्वती ने कहा—"इन्हें मैं अपनी अंगुली चीरकर रक्त का सुहाग रस दूँगी।" निदान जब वे स्त्रियाँ वहाँ आकर पूजन करने लगीं तब अन्नपूर्णा ने अपनी अंगुली चीरकर सब पर उसका रक्त छिड़क दिया और कहा—बढ़िया वस्त्रों और चमकीले आभूषणों से अपने-अपने पतियों को रिझाने की अपेक्षा अपने प्रत्येक रक्त-बिंदु को स्वामी सेवा में अर्पण करके तुम सौभाग्यशालिनी कहलाओगी। सेवा-धर्म का यह अनोखा उपदेश प्राप्त करके वे कुल-वधूटियाँ अपने-अपने घरों को लौटीं और अपने परिवार की सेवा में रत हो गईं।

इसके उपरान्त उन्होंने स्वयं भी शिव से आज्ञा लेकर—भगवान् शिव तथा महर्षि नारद को वहीं छोड़—कुछ दूर आ नदी में स्नान

किया और बालू के शिव बनाकर श्रद्धापूर्वक उनका पार्थिव पूजन किया। प्रदक्षिणा करके उन्होंने उस शिव प्रतिमा से यह निवेदन किया कि मेरे दिये हुए वरदान को सत्य करने की शक्ति आप में ही है। इसलिए प्राणेश्वर! मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मेरे वचनों को पूर्ण करने का वरदान प्रदान कीजिए। शंकर अपने पार्थिव रूप में साक्षात् प्रकट हुए और सती से कहा—देवि! जिन स्त्रियों के पतियों का अल्पायु योग है उन्हें मैं यम के पाश से मुक्त कर दूँगा। पार्वती वरदान पाकर कृतकृत्य हो गई और शिव वहाँ से अंतर्धान होकर फिर उसी स्थान पर आ पहुँचे जहाँ पार्वती उन्हें छोड़कर गई थीं।

पूजन के उपरान्त जब सती पार्वती लौटकर आईं तो शिव ने उनसे देर से आने का कारण पूछा—प्रिये! देवर्षि नारद यह जानने को उत्सुक हैं कि तुमने इतना समय कहाँ लगाया?

पार्वती ने उत्तर दिया—देव! नदी के तीर पर मेरे भाई और भावज आदि मिल गए थे। उनसे बातचीत करने में विलम्ब हो गया। उन्होंने बड़ा आग्रह किया कि हम अपने साथ दूध-भात आदि लाए हैं, जिसे बहन को अवश्य खाना पड़ेगा। उनके आग्रह के कारण ही मुझे देर हुई है।

अपनी पूजा को गुप्त रखने के अभिप्राय से उन्होंने बात को इतना घुमा-फिराकर कहा था। यह शंकर को अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने पार्वती से कहा—यदि ऐसी बात है तो देवर्षि नारद को भी अपने भाई-भावज के यहाँ का दूध-भात खिलाने की व्यवस्था करो तभी कैलाश चलेंगे। पार्वती बड़े असमंजस में पड़ीं, क्योंकि उन्हें यह आशा नहीं थी कि शंकर उनकी परीक्षा लेने को तैयार हो जाएँगे। अस्तु उन्होंने मन ही मन शिव से प्रार्थना की कि उन्हें इस संकट से पार करें। फिर भी उन्होंने ऊपरी मन से कहा—अवश्य चलिए, वे लोग यहाँ से थोड़ी ही दूर पर हैं। देवर्षि नारद को साथ में लिये हुए शंकर पार्वती सहित उसी ओर चलने को उठ खड़े हुए।

कुछ दूर जाने पर एक सुन्दर भवन दिखाई पड़ने लगा। जब ये लोग उस भवन के अन्दर पहुँचे तो शंकर के साले और सलहज ने आगे

बढ़कर उनका स्वागत किया एवं देवर्षि नारद सहित बड़े प्रेम से उन्हें दूध-भात खिलाया। दो दिन तक बड़ी अच्छी मेहमानदारी हुई। तीसरे दिन सब लोग विदा होकर कैलाश की ओर चल दिए।

पार्वती के इस कौशल और सामर्थ्य को देखकर शंकर प्रसन्न तो बहुत हुए, परन्तु धर्मानुष्ठान को असत्य के आवरण में दबाए रखना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। वह उसका भंडाफोड़ करके निष्कपट होने की शिक्षा सती को अवश्य देना चाहते थे। क्योंकि निष्कपट नारी ही सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति है। कुछ दूर आने पर भगवान् शंकर ने कहा—अन्नपूर्णे! तुम्हारे भाई के घर पर मैं अपनी माला भूल आया हूँ। पार्वतीजी माला ले आने के लिए तत्पर हो गईं।

परन्तु इसी बीच देवर्षि नारद बोले—ठहरो अन्नपूर्णे! इस छोटे से काम को करने का अवसर मुझे ही प्रदान करो। तुम यहाँ शंकर के साथ ठहरो, मैं माला लेकर अभी आता हूँ। पार्वतीजी चकरा गईं। उन्होंने शंकर के आशय को समझ लिया। परन्तु करतीं क्या? देवर्षि नारद तो उनके गुरु थे। उनका आग्रह कैसे टालतीं? शंकर ने मुस्करा कर उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी। नारद उधर की ओर चल दिए।

किंतु उस स्थान पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि न तो वहाँ कोई मकान है और न मनुष्य के रहने का संकेत। चारों ओर घना जंगल ही जंगल। स्वच्छन्द रूप से दौड़ते-भागते हुए जंगली जानवरों का झुंड एवं सघन अंधकार। मेघों से घिरा हुआ आकाश और जंगल की बीहड़ता को बढ़ाने वाली सियारों और उल्लुओं की बोलियाँ।

नारद यह देखकर सोचने लगे कि मैं कहाँ आ पहुँचा। मगर आसपास का दृश्य वही था। केवल वे महल, मकान और सती के भाई-भावज वगैरह वहाँ कुछ भी नहीं थे। दैवात्—उसी समय बिजली की चमक के प्रकाश में देवर्षि नारद ने एक पेड़ पर लटकती हुई माला देखी। उसे लेकर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए वह शंकर के पास पहुँचे और उनसे जंगल की भयानकता का वर्णन करने लगे। शिव बोले—देवर्षि! आपने जो कुछ अब तक देखा यह सब आपकी शिष्या महारानी पार्वती की अद्भुत माया का चमत्कार था। वह अपने

पार्थिव पूजन के भेद को आपसे गुप्त रखना चाहती थीं, इसीलिए नदी से देर से लौटकर आने के कारण को दूसरे ढंग से प्रकट किया।

देवर्षि बोले—महामाये ! पूजन तो गोपनीय ही होता है, परन्तु आपकी भावना और चमत्कारी शक्ति को देखकर मुझे अपार हर्ष है। आप विश्व की नारियों में पातिव्रत धर्म की प्रतीक हैं। मेरा आशीर्वाद है कि जो देवियाँ गुप्त रूप से पति का पूजन करके उनकी मंगल कामना करेंगी उन्हें भगवान् शंकर के प्रसाद से दीर्घायु पति के सुख का लाभ होगा।

शिव और पार्वती उन्हें प्रणाम करके कैलाश की ओर चले गए।

4. रामनवमी

चैत्र शुक्ला नवमी

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समव्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥८॥
नक्षत्रे दिति दैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु।
गृहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यता विदुना सह ॥९॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्व लोक नमस्कृतम्।
कौसल्या जनयद्रामं दिव्य लक्षण संयुतम् ॥१०॥

—श्रीमद्वालमीकि रामायण, सर्ग १८

श्रीमद्वालमीकि रामायण से लिये हुए उपर्युक्त श्लोकों में महाराज दशरथ द्वारा किये गए पुत्रेष्टि यज्ञ के संदर्भ से आगे का हाल दिया गया है।

"यज्ञ के समाप्त होने पर छः ऋतुएँ और बीतीं अर्थात् एक वर्ष बीता, बारहवें चैत्र महीने में नवमी तिथि को जब पुनर्वसु नक्षत्र था, पाँच (रवि, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र) ग्रह अपने उच्च स्थान पर

थे, वृहस्पति चंद्रमा के साथ थे, तब कर्क लग्न में कौशल्या ने अलौकिक लक्षणों से युक्त राम को जन्म दिया—वे जगन्नाथ थे और सबसे नमस्कृत थे।"

उन्हीं श्रीराम का जन्मोत्सव इस तिथि को सारे भारत में बड़ी श्रद्धा से मनाया जाता है। उनके पवित्र जीवन से मानव-समाज को जो प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हीं से उपकृत होकर हम उनकी जन्म-तिथि को अपना सबसे बड़ा त्यौहार मानते हैं। इस देश के प्रत्येक प्रान्त का साहित्य उनके पावन चरित्र की गाथाओं से अलंकृत है। हिंदी भाषा में तो गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने उनकी जीवन-कथा को दोहे, चौपाइयों और छंदों में लिखा है। उन्होंने आज ही के दिन श्री रामचरितमानस ग्रंथ की रचना आरम्भ की थी। इस ग्रंथ का निर्माण श्री अयोध्या में हुआ। इस ग्रंथ की भाषा, भाव और शैली इतनी चित्ताकर्षक और हृदयग्राही है कि आज एक किसान की झोंपड़ी से लेकर बड़े से बड़े राजभवनों में भी उसका गान बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ होता है।

विक्रमीय संवत्सरों में दो नवरात्रियाँ होती हैं। एक चैत्रमास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और दूसरी आश्विन मास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक। पहली को वासंतीय नवरात्र और दूसरी को शारदीय नवरात्र कहते हैं। इसी वासंतीय नवरात्रि के अंतर्गत राम-नवमी का महोत्सव होता है। इस दिन श्री अवध में—जिसे श्रीराम की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है—बड़ा भारी मेला लगता है। अनेक रामभक्त इस अवसर पर प्रतिवर्ष इस मेले में आते हैं। उपवास रखकर, पतितपावनी सरयू के जल में स्नान करके, भजन-कीर्तन आदि में अपना दिवस व्यतीत करते हैं। श्रद्धालु भक्त देवमन्दिरों में या अपने-अपने घरों में ही श्रीराम का स्मरण करते हुए वाल्मीकि रामायण अथवा रामचरितमानस का पाठ करते हैं।

श्रीराम की जीवन-गाथा से कदाचित् ही कोई व्यक्ति अपरिचित होगा। उनका अवतार त्रेता युग में अवध नरेश महाराज दशरथ की बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से हुआ। उनके तीन और भी छोटे सौतेले

भाई थे परन्तु चारों भाइयों का प्रेम हमारे देश के जीवन के लिए आदर्श प्रेम का प्रतीक था। श्रीराम ने बचपन की अवस्था में ही अपने शौर्य से बड़े-बड़े बहादुरों के दाँत खट्टे कर दिए थे। महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा करते हुए उन्होंने विघ्नकारियों और उपद्रवी राक्षसों का दमन किया। शिव का धनुषभंग करके मिथिलापति राजा जनक की कन्या सीता के संग विवाह किया। अयोध्या में वापस आने पर विमाता कैकेई के हठ के कारण राज्य छोड़कर बन जाना स्वीकार किया और चौदह वर्षों का दीर्घ समय भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के सहित वहाँ रहते हुए व्यतीत किया और राक्षसों का दलन करके रामराज्य की स्थापना की।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने श्री रामचरित्र लिखकर संस्कृत भाषा में प्रथम पुस्तक का निर्माण किया। यह ग्रंथ श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के नाम से हमारे समाज में विख्यात है। उन्होंने लिखा है—'रामो विग्रहवान्धर्मः' अर्थात्—श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं। तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए कविवर गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में लिखा है—

बाढ़े बहु खल चोर जुआरा।
जे लम्पट परधन परदारा॥
मानाहि मातु पिता नहिं देवा।
साधुन सन करवावहिं सेवा॥
जिनके यह आचरण भवानी।
ते जानहु निशिचर सम प्राणी॥

ऐसे चरित्र वाले लोगों की अधिकता देखकर महर्षि विश्वामित्र को बड़ी चिंता हुई। उन्होंने महाराज दशरथ के पास जाकर समाज की इस दशा का वर्णन किया और समाज को अच्छे चरित्र का पाठ पढ़ाने की आशा से श्री राम-जैसे चरित्रवान पुत्र को माँगा। उन्हीं श्री राम ने समाज-सेवा का व्रत लेकर हिमालय से लंका तक एक ऐसे राज्य की स्थापना की जिसे हम राम-राज्य के नाम से आज तक स्मरण करते हैं। उस राज्य में कोई किसी से द्वेष नहीं करता था। सब लोग पार-

स्परिक प्रेम के साथ रहकर एक-दूसरे को सहयोग देते थे। कोई दुःखी नहीं था, कोई रोगी और अन्न-वस्त्र से हीन नहीं था। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को सताते नहीं थे।

यही कारण है कि हज़ारों वर्षों का समय बीत जाने पर भी श्री राम की पुनीत-स्मृति हमारे हृदय में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इतना ही नहीं, श्री राम तो हमारे जीवन में इतने समा गए हैं कि वह रोज़-मर्रा की मामूली राम रमौअल से लेकर 'राम नाम सत्य' तक में व्यापत हो गए हैं। उन्हीं श्री राम का जन्मदिन चैत्र शुक्ला नवमी को प्रत्येक भारतीय उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाता है और इसी कारण इसे रामनवमी कहते हैं।

5. श्री रामदास जयन्ती

चैत्र शुक्ला नवमी

आधुनिक आन्ध्र प्रदेश के तिलंगाना क्षेत्र में औरंगाबाद ज़िले के आर्बड परगना में जाम्ब नामक एक पुराना गाँव है। इसी जाम्ब गाँव में श्री सूर्याजी पंत और उनकी पत्नी राणूबाई नामक एक अत्यन्त सुशील, धार्मिक एवं भगवद्भक्त दम्पति निवास करते थे। श्री सूर्याजी सूर्य के उपासक थे। छत्तीस वर्षों तक कठोर तप करके उन्होंने सूर्य की उपासना की थी। इसी व्रत के फलस्वरूप संवत् 1662 वि० (1605 ई०) में राणूबाई के गर्भ से प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बालक का नाम गंगाधर रखा गया, जो आगे चलकर श्रेष्ठ रायो रायदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके उपरान्त संवत् 1665 वि० (अप्रैल सन् 1608) में चैत्र शुक्ला नवमी को दोपहर बारह बजे के समय श्री राणूबाई ने दूसरे बालक को जन्म दिया। इसका नाम नारायण रखा गया। यही नारायण हमारे समर्थ गुरु श्री स्वामी रामदासजी महाराज हैं। गत

पाँच-छः सौ वर्षों में भारत में बड़े-बड़े संत हुए हैं उनमें समर्थ रामदास जी का आसन निर्विवाद रूप से बहुत ऊँचा है। उत्तर भारत में तो कुछ शिक्षित और भक्त लोग ही उनके नाम से परिचित हैं, परन्तु महाराष्ट्र देश में श्री समर्थ के नाम से बच्चा-बच्चा परिचित है। इतना ही नहीं उस प्रान्त में उनको हनुमानजी का अवतार मानते हैं और उनकी देवता के तुल्य पूजा होती है।

श्री समर्थ केवल दिग्गज विद्वान् और बहुत बड़े महात्मा ही नहीं थे, वरन् बहुत बड़े समदर्शी और राजनीतिज्ञ भी थे। छत्रपति महाराज शिवाजी ने जिस महाराष्ट्र साम्राज्य की स्थापना की थी, उसका बहुत बड़ा श्रेय श्री समर्थ को ही प्राप्त था। आमतौर पर यही माना जाता है कि श्री समर्थ की प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ही शिवाजी महाराज ने बहुत-से बड़े-बड़े काम किए। श्री समर्थ ने अपने उपदेशों से महाराष्ट्र में और उसके द्वारा सारे देश में बहुत बड़ी राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की थी। उन्होंने अपने युग में केवल स्वराज्य की भावना मात्र ही पैदा नहीं की बल्कि ऐसे सुराज्य की स्थापना कराई थी जो बहुत बड़े अंश में 'राम-राज्य' के सदृश ही माना जाता था।

समर्थ के शैशव काल में संत एकनाथ की बड़ी ख्याति थी। श्री सूर्या जी पंत और उनकी पत्नी राणूबाई अपने पुत्रों के सहित उनके दर्शनों को गए। संत एकनाथ ने अपने योगबल से बालक को देखते ही पहचान लिया और सूर्याजी से कहा—"यह बालक महावीरजी के अंश से उत्पन्न हुआ है। यह बहुत बड़ा महापुरुष होगा और अपने देश का उद्धार करेगा। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति श्री महावीरजी ने नारायण को सात वर्ष की अवस्था में केवल अपना दर्शन ही नहीं दिया वरन् उन्हें श्री राम का दर्शन भी कराया। श्री राम ने स्वयं उन्हें यह आदेश दिया था कि धर्म और समाज की दशा बहुत बिगड़ती जा रही है, अतः तुम दोनों का उद्धार करो। उन्होंने ही उनका नाम रामदास रखा था।

बारहवें वर्ष में उनकी माता ने बालक नारायण का विवाह रचाने का विचार किया, परन्तु उसके मन में तो देशोद्धार की लगन थी।

इसलिए वह घर छोड़कर भाग खड़े हुए और विवाह का अवसर टलने पर घर लौटे। इसपर माँ ने अपनी शपथ दिलाकर विवाह करने को विवश कर दिया। परन्तु अंतर्पट पकड़ने की रस्म में ब्राह्मणों के मुख से 'शुभ मंगल सावधान' का महामंत्र सुनकर वे सावधान हो गए और गृह त्यागकर वनस्थली की ओर भाग गए।

गोदावरी गंगा के तीर पर पंचवटी में पहुँचकर वह अपनी तप-साधना में लग गए और बारह वर्ष तक अखंड तप में संलग्न रहे। उसके बाद तीर्थों का भ्रमण करने के लिए निकल पड़े। इस तीर्थ-यात्रा में उन्हें लोगों की मनोवृत्ति को परखने का अवसर मिला। सत्य-धर्म में लोगों की आस्था को निर्बल पाकर उन्होंने पुनः अपनी तपःपूत प्रेरणाएँ देना प्रारम्भ किया।

इन्हीं दिनों छत्रपति शिवाजी महाराज ने श्री समर्थ से दीक्षा लेने का विचार किया। श्री समर्थ की सूक्ष्म दृष्टि ने शिवाजी में योग्य-पात्रता को परख लिया और उन्हें दीक्षा दे दी। साथ ही उन्हें सत्य-धर्म के प्रचार एवं स्वराज्य की स्थापना के कार्य में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया। इतिहास इसका साक्षी है कि किस प्रकार शिवा-जी ने गुरु की आज्ञा के अनुसार चलकर एक सर्वप्रिय लोकराज्य की स्थापना की। महाराष्ट्र में रामदास जयन्ती विशेष समारोह के साथ मनाई जाती है।

6. कामदा एकादशी

चैत्र शुक्ला एकादशी

कभी-कभी छोटी-सी भूल की भी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ती है। धैर्य और साहस यदि हम न खोयें तो अल्प साधनों से भी उन पर आसानी से विजय प्राप्त की जा सकती है जिन्हें हम दुख का पहाड़ कह

सकते हैं। कामदा एकादशी की कथा से हमें यही शिक्षा प्राप्त होती है। चैत्र मास की शुक्ला एकादशी को कामदा एकादशी कहते हैं। इसकी कथा बाराह पुराण में इस प्रकार कही गई है—

नागलोक में एक पुण्डरीक नाम का राजा था। उसके दरबार में बहुत-से किन्नर और गंधर्व गाना गाया करते थे। एक दिन उसके सामने ललित नाम का गंधर्व गान कर रहा था। गाते-गाते उसे अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। इसलिए उसके ताल-स्वर विकृत होने लगे। इस भेद को उसके शत्रु कर्कट ने ताड़कर राजा से कह दिया। इस पर पुण्डरीक ने अप्रसन्न होकर उसे राक्षस होने का श्राप दे दिया। राजा के श्राप से ललित राक्षस होकर विचरने लगा। उसकी पत्नी ललिता भी उसके साथ फिरने लगी। अपने पति ललित की दशा देखकर उसे बड़ा दुख होने लगा। अन्त में ललिता घूमते-घूमते विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाले महात्मा ऋष्यमूक के पास गई और श्राप से अपने पति के उद्धार पाने का उपाय पूछने लगी। ऋषि ने उसे कामदा एकादशी का व्रत करने का साधन बता दिया। पत्नी के श्रद्धापूर्वक व्रत करने से ललित श्राप से मुक्त होकर अपने गधर्व स्वरूप को प्राप्त हो गया।

7. श्री हनुमज्जयन्ती

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा

चैत्र की पूर्णिमा को सेवा-धर्म के मूर्तिमान प्रतीक श्री महावीरजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। श्री राम कालीन बनचर (बनों में घूमने वाली) जाति में उनका जन्म हुआ था। उनकी माता का नाम अंजना और पिता का नाम केसरी था। कुछ लोग उन्हें बानर ही समझते हैं। परन्तु वे साक्षात् भगवान् शंकर के अवतार थे। और श्री राम की सेवा के लिए ही वह रूप रखा था। यही उनके जीवन का

व्रत था। उनकी निष्काम सेवा और अनन्य राम भक्ति के कारण भारतीय संस्कृति का प्रत्येक भक्त उनकी पूजा करता है। श्री राम के पावन चरित्र के समान इनका भी चरित्र अत्यन्त पवित्र और ऊँचा है। भारतीय इतिहास में उनकी महिमा का वर्णन स्वर्णाक्षरों में अंकित है। यह वीरता के स्वरूप और संसार के ज्ञानियों में अग्रगण्य माने जाते हैं।

इनकी राम भक्ति की एक कथा अत्यन्त मार्मिक है। लंका जीतने के बाद श्री अवध में राम के पदार्पण करने पर उनका राज्याभिषेक हुआ। उस समय महारानी सीता ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर एक बहुमूल्य मणियों का हार पारितोषिक के रूप में उन्हें प्रदान किया। हनुमानजी उस चमकते हुए रत्नहार की मणियों के दानों को दाँत से तोड़-तोड़कर देखने लगे। यह बात श्री राम के अनुज लक्ष्मण को बहुत बुरी लगी। उन्होंने सोचा—बानर को मणियों का मूल्य क्या मालूम। वह उसके महत्त्व को क्या समझे? इसलिए रोष में भरकर वह पूछ बैठे—"हनुमान! यह क्या कर रहे हो?" हनुमानजी तुरन्त निःशंक होकर बोल उठे—"मैंने सुना है कि मेरे प्रभु राम सब में समाए हुए हैं। इसलिए जरा परीक्षा कर रहा था कि इन चमकीले पत्थरों के किस हिस्से में वह छिपे बैठे हैं?" श्री लक्ष्मण ने उत्तेजित होकर कहा, "क्या राम तुम्हारे कलेजे में भी छिपे बैठे हैं?" महावीर ने विश्वास के साथ अपने नाखूनों से अपना हृदय चीरकर दिखा दिया और उसमें बैठे हुए श्री राम-जानकी का प्रत्यक्ष दर्शन उन्हें करा दिया। उन्हीं भक्त शिरोमणि श्री महावीर का जन्मोत्सव आज के दिन प्रत्येक आस्तिक के घर में मनाया जाता है।

भारतीय संस्कृति में हनुमानजी को बल का प्रतीक माना गया है। उनमें सब प्रकार के बलों का विकास हुआ था। यथा—

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठं
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं
श्री राम दूतं शरणं प्रपद्ये।

हनुमानजी केवल शारीरिक बल में ही पुष्ट नहीं थे, वे मन की

तरह चंचल भी थे। उनका वेग वायु के समान था। उनका शरीर वज्र के समान कठोर और मन पुष्प की भाँति कोमल था। बड़े-बड़े पर्वतों को वह अपने चरण के प्रहार से चूर्ण कर सकते थे और बड़ी-से-बड़ी चट्टान को लेकर आकाश में उड़ सकते थे।

इस अपार शारीरिक शक्ति के साथ उनमें मनोबल भी अपार था। वे जितेन्द्रिय थे, संयमी थे, शीलवान, सच्चरित्र और व्रती थे। उन्होंने कभी भी अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं किया। उन्होंने वासनाओं पर विजय पाई थी। वे बुद्धिमानों में वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ थे। आमतौर पर लोग यह मानते हैं कि जिसमें शारीरिक बल अधिक होता है उसमें बुद्धिबल की कमी होती है और जो बुद्धिमान होता है वह शरीर की शक्ति में दुर्बल होता है। परन्तु हनुमानजी इसके अपवाद थे। शरीर, हृदय और बुद्धि तीनों को बलवान बनाने के बाद एक और भी ज़रूरी चीज़ बचती है, वह है—संगठन की कुशलता। हम खुद तो अच्छे हो सकते हैं, परन्तु दूसरों को बनाने की योग्यता प्राप्त करना सबसे महान् गुण है। हनुमानजी में यह भी गुण था। वे बानर दल के प्रधान थे और उन्हें बड़े-बड़े कामों के करने की प्रेरणा देते थे। इसीलिए समाज उनकी पूजा करता है।

8. शीतला अष्टमी

वैशाख कृष्णा अष्टमी

शीतला या चेचक के प्रकोप को दूर करने के लिए आज के दिन माँ शीतला के निमित्त व्रत या उपवास किया जाता है। भारत धर्म-प्राण देश है। हमारे यहाँ प्रत्येक बात के मूल में धार्मिक भावनाएँ समाई हुई हैं। और यह सत्य भी है कि 'विश्वासो फलदायकः'। मानव अपने विश्वास के बल पर असम्भव को भी सम्भव करके दिखा सकता

है। इसी आधार पर चेचक जैसे घातक रोग के अवसर पर भौतिक उपचारों का भरोसा छोड़कर लोग देवी-देवताओं की शक्ति पर भरोसा रखकर, चलते हैं, और प्रायः उसके परिणाम भी शुभ होते हैं। परन्तु आधुनिक युग ने तो हर तरह के क्षेत्रों में बहुत उन्नति की है। स्वास्थ्य विज्ञान के जानने वाले विशेषज्ञों ने चेचक से बचने के अच्छे-से-अच्छे साधन ढूँढ निकाले हैं। माता निकलने के अवसर पर बाहरी उपचारों का आसरा छोड़कर बैठे रहने वाले भाई-बहनों की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बिना हम यह आग्रह अवश्य करेंगे कि वे लोग आज के युग में की गई खोजों और उसके अनुसार दिये गए सुझावों का लाभ अवश्य उठाएँ। यह ठीक है कि इस रोग में रोगी को अधिक दवा वगैरह नहीं देनी चाहिए।

स्वर्गीय डाक्टर क्रिस्टो का तो यह मत था कि इस रोग के सामान्य आक्रमणों में तो किसी औषधि के देने की जरूरत ही नहीं है। जहाँ इसका प्रचंड कोप हो वहाँ अभी तक कोई औषधि ऐसी नहीं ईजाद हो पाई है जो विश्वासपूर्वक सफलता दे सके। इसलिए रोगी को प्रकृति के भरोसे पर ही छोड़ देना चाहिए। उसी प्रकृति देवी को माता के रूप में मानकर उसका पूजन करना हमारे देशवासियों ने बहुत प्राचीन काल से सीख रखा है। इस दिन बासी खाने की पद्धति है अर्थात् एक दिन पहले का पकाया हुआ भोजन खाया जाता है और इस दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता। इसका वैज्ञानिक आधार खोज निकालने की आवश्यकता है।

9. बरूथिनी एकादशी

वैशाख कृष्णा एकादशी

वैशाख के कृष्ण पक्ष की एकादशी को बरूथिनी एकादशी कहते हैं। भविष्य पुराण में इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं :—

द्यूत क्रीड़ां च निद्रां च ताम्बूलं दन्त-धावनम् ।
परापवाद पैशुन्यं स्तेयं हिंसा तथा रतिम् ॥
क्रोधं चानृत वाक्यं च एकादश्यां विबर्जयेत् ॥

एकादशी के व्रत के दिन जुआ खेलना, निद्रा, ताम्बूल, दंतधावन, दूसरे की निंदा, क्षुद्रता, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और झूठ इन ग्यारह बातों का त्याग अवश्य करना चाहिए ।

उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए एकादशी का व्रत करने से सब प्रकार के मनस्ताप दूर होते हैं । व्रत करने वाले को—दशमी को यज्ञ में अर्पण किया जाने वाला हविष्यान्न भोजन करना चाहिए और रात्रि में जागरण करके अपने परिवार के लोगों के साथ बैठकर भगवान् के नाम का स्मरण और कीर्तन करना चाहिए । इससे मन के विकार दूर होते हैं ।

10. अक्षय तृतीया

वैशाख शुक्ला तृतीया

वैशाख शुक्ला तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं । यह तिथि बसंत ऋतु में पड़ती है । इस समय ग्रीष्म ऋतु के सब अनाज—जौ, गेहूँ आदि तैयार होकर घरों में आ जाते हैं । हमारे देश की प्राचीन प्रथाओं के अनुसार—पहले दान और पीछे भोजन, यह नियम है । आज के दिन जौ के दान का बड़ा महत्त्व माना जाता है । 'यवोऽसि धान्य राजोऽसि' अर्थात्—'तुम जौ हो, तुम धान्यों के राजा हो ।' श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण ने उद्धव से कहा है कि—'औषधीनामऽहं यव:' अर्थात्—फसल पकने पर जो पौधे काट लिये जाते हैं उनमें 'यव' मेरा स्वरूप है ।

भारत-जैसे कृषि प्रधान देश में यह अनुभूतियाँ कितने महत्त्व की हैं, इसकी व्याख्या अत्यन्त मधुर और राष्ट्रहित की दृष्टि से उपयोगी है ।

राष्ट्र के हित में अधिक-से-अधिक उपयोग में आने वाली वस्तु की महत्ता को साथ में लिये हुए हमारे त्यौहार अपनी उपयोगिता को स्वतः सिद्ध करते हैं।

आज तो क्रान्ति का युग है। यह केवल आर्थिक या राजनैतिक क्रान्ति ही नहीं है। यह तो शतमुखी क्रान्ति है। सारा संसार एक खास तरीके की करवट ले रहा है। ऐसे समय में नई दृष्टि भी आवश्यक है। श्रमिकों को अधिक-से-अधिक परिमाण में पेटभर भोजन कैसे मिले यह अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का दृष्टिकोण रहा है। इसीलिए दान को सबसे अधिक माहात्म्य दिया गया है और दान भी उस वस्तु का होना चाहिए, जिसे हम अपनी अमूल्य निधि मानते हैं। घर के कूड़े-कचरे को निकाल फेंकने का नाम दान नहीं है। दान समाज-हित की दृष्टि से किया जाता है। उसका सबसे बड़ा लक्ष्य है ज़रूरतमन्दों की ज़रूरत को पूरा करना। इसीलिए दानकर्ता को स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। दान करते समय पात्र का विचार करना बहुत ज़रूरी है। गीता में कहा गया है कि—

अदेश-काले यद्दानमऽपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

गीता अ० १७, श्लोक २२

अर्थात्—अयोग्य स्थान में, अयोग्य काल में और अपात्र मनुष्यक तथा बिना सत्कार के दिया हुआ दान तामसी दान है। उससे समाज का हित नहीं होता।

एक पाश्चात्य विद्वान् का कहना है कि—'लोक में दो नीतियाँ प्रचलित हैं। एक ऋण नीति और दूसरी धन नीति।' ऋण नीति का उपासक चुपचाप बैठकर माला फेरता है। मंत्र जाप करता है। तीन बार नहाता है, चंदन और त्रिपुंड लगाता है। किन्तु उससे यदि यह पूछा जाय कि देश में फैली हुई भुखमरी हटाने के लिए तुमने क्या किया ? समाज को नई प्रेरणा देने के लिए तुमने क्या-क्या काम किए ? लोगों में फैली हुई बेकारी को हटाने में तुम्हारा क्या योगदान है ? इन प्रश्नों के उत्तर देने में वह मौन रह जाता है। तब उसके व्रत, अनुष्ठान

और पर्व सारहीन बन जाते हैं। इसीलिए हर त्यौहार को मनाने से पहले उसका सही उपयोग और महत्त्व समझना ज़रूरी है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति धन-नीति का पालन करता हुआ स्नान संध्या न करे, देव-दर्शन और पूजन एवं कथा-कीर्तन में भाग न ले, माला, चन्दन और त्रिपुंड में अटका न रहे किन्तु समाज को अन्याय से मुक्त करने के लिए आतुर हो, ग़रीबों की मदद के लिए सदा प्रस्तुत हो, दलितों और पीड़ितों की सेवा के लिए दौड़ पड़े, और उन्हें कष्ट-मुक्त करने के लिए आत्म-बलिदान तक के लिए तैयार रहे; वही मनुष्य समाज में वन्दनीय है, पूजने के योग्य है। इसीलिए आज के दिन भगवान् परशुराम की जयन्ती मनाई जाती है। उन्होंने ब्राह्मण होते हुए भी शोषण करने वाले क्षत्रि-राजाओं के विरुद्ध अस्त्र उठाकर पीड़ित समाज की रक्षा की थी। आज के युग में हम उनकी हिंसक नीति का प्रश्रय भले ही न लें, परन्तु उनकी समाज-सेवा और अन्यायियों के विरुद्ध खड़े होकर अकेले ही मुकाबिला करने की भावना को अवश्य अपना सकते हैं। उनकी कथा यह है—

बहुत प्राचीन काल में हैहय नरेश कार्तवीर्य अर्जुन ने परशुराम के पिता जमदाग्नि के पास कामधेनु गाय देखी जो मनुष्य की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करती थी। कार्तवीर्य ने गाय उनसे माँगी और उनके मना करने पर उसने उन्हें मार डाला। संयोगवश उस समय परशु-राम वहाँ नहीं थे। वह जब कहीं से वापस लौटे तब उन्होंने अपनी माता से सारा हाल सुना। इससे उनका क्रोध भड़क उठा। उन्होंने महिष्मती नगर में पहुँचकर कार्तवीर्य को ललकारा और उसकी असंख्य सेना सहित उसका संहार किया। उसके अन्य साथी परशुराम से बदला लेने के लिए दौड़ पड़े। इक्कीस बार उन्होंने इस धरती के बड़े-बड़े क्षत्रिय योद्धाओं का विनाश किया और उनके द्वारा किए जाने वाले उग्र कर्मों से अनेक पीड़ितों को बचाया।

सीता स्वयंवर में श्री राम के द्वारा जनकपुर में अपने इष्टदेव शिव का धनुर्भंग सुनकर वह पुनः दौड़ पड़े परन्तु श्री राम के शील-सौजन्य से प्रसन्न होकर उन्होंने अपना धनुष और बाण श्री राम को समर्पण करके संन्यस्त

जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले लिया। आसाम राज्य की उतरी पूर्वी सीमा पर, जहाँ से ब्रह्मपुत्र नद भारत में प्रवेश करता है वहाँ एक परशुराम कुंड है, वहीं उन्होंने अपने परशु का त्याग किया। यह भी अनुमान है कि इसी कुंड को खोदकर परशुराम ने ब्रह्मपुत्र को भारत भूमि में लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। जयन्ती मनाने का विधान भी संभवतः तभी से प्रचलित हुआ होगा। अक्षय तृतीया उन्हीं पराक्रमी परशुराम के शौर्य, सेवा और संयम की कथा सुनाती है।

11. सूरदास जयन्ती

वैशाख शुक्ला पंचमी

भक्ति रस के रसज्ञ वैष्णवों के समुदाय पर जिस संत ने अपनी वाणी का चमत्कारी प्रभाव अंकित किया है वह है महात्मा सूरदास। आपका जन्म संवत् 1635 में आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क के किनारे बसे हुए रुनकता ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री रामदासजी सारस्वत ब्राह्मण थे। सूरदास में बचपन से ही प्रतिभा का अलौकिक निखार था। कृष्ण प्रेम में शराबोर होकर उन्होंने अलौकिक गीतों की रचना की थी। उनके बारे में यह दोहा हिन्दू समाज में बहुत प्रचलित है—

सूर-सूर तुलसी शशि, उडगन केसवदास।
अबके कवि खद्योतसम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥

प्रस्तुत ग्रंथ में हमें उनकी कवित्व शक्ति की आलोचना नहीं करनी है। हमारा उद्देश्य तो केवल उनकी उस शक्ति से लोगों को परिचित कराने का है जिससे उन्होंने समाज को एक नए ढंग से कुछ सोचने या समझने की राह दी। इस दिशा में सूर की प्रतिभा अपने धर्म गुरु श्री वल्लभाचार्यजी से भी आगे बढ़ गई है। सूरदास के समय से

पहले हिन्दी भाषा के कवियों ने या तो शृंगार-रस-धारा बहाकर लोगों को विषयों की ओर प्रवृत्त किया था या राजाओं के दरबार में रहकर उनकी स्तुति की थी। समाज की विषयोन्मुखी प्रवृत्ति को कृष्ण-भक्ति की ओर मोड़ देने में सूर का प्रयत्न अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। अनन्य-भक्ति की भावनाओं से भरा हुआ लगभग सवालाख पद्यों का 'सूर-सागर' उनकी एक अमर रचना है। इसमें विशेषकर वात्सल्य रस की जो धारा महात्मा सूरदास ने प्रवाहित की है उसकी समता विश्व का कोई भी कवि नहीं कर सकता। और केवल वात्सल्य रस ही नहीं गोपियों के अनन्य हरि-अनुराग की महिमा को प्रकट करते हुए उन्होंने भ्रमरगीत में उद्धव के ब्रह्मज्ञान का जो उपहास उड़ाया है वह अपने ढंग का एक अनोखा तत्व-दर्शन ही कहा जा सकता है। उसमें इनकी उत्कृष्ट कृष्ण अनुराग की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है।

बौद्धों के शून्यवाद को अद्वैत की एकान्तिक भावना में रँगकर जगत्गुरु भगवान् शंकराचार्य ने समाज को एक ऐसी विचारधारा प्रदान की जिसने धार्मिक जगत् में एक महान क्रान्ति का युग ला दिया। ठीक उसी तरह अद्वैत की भावना को सरसता का जामा पहनाकर कृष्ण-भक्ति के रस के साथ सूर ने जन-जीवन के मानस को अनन्यता की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। उनका पूरा साहित्य रस माधुरी ब्रजभाषा में है। भाषा की सरसता के साथ ही भावों की सरसता का सम्मिश्रण पाकर समाज उनकी वाणी से उपकृत हुआ। लोगों ने धार्मिक क्रान्ति के नेता के रूप में उनका अभिवादन किया। कहते हैं कि उनके अनेक पद्यों की पूर्ति स्वयं उनके इष्टदेव भगवान् मुरली मनोहर ने की है।

सूरदासजी जन्म से ही अंधे थे और रोज़ाना मथुरा के प्रभु श्री द्वारिकाधीश के मंदिर में दर्शनार्थ जाया करते थे। इस पर कुछ चंचल वृत्ति के लोगों ने उनपर एक तीखा व्यंग कसते हुए प्रश्न किया कि—"बाबा! तुम यहाँ क्या करने आते हो?" बात तो सीधी-सी थी, परन्तु तीखेपन से ख़ाली नहीं थी। ठीक भी तो है। अंधे को दर्शनों में क्या दिखाई देता होगा? परन्तु सूरदासजी ने बड़े धैर्य के साथ उत्तर दिया—

"भैया, मेरी आँखें फूटी हैं परन्तु उस जगत् के मालिक की आँखें तो फूटी नहीं हैं। वह तो देखता ही है कि एक अंधा उसके दरबार में आकर अपनी हाज़िरी बजा गया।" सूर के इस उत्तर ने लोगों को निरुत्तर कर दिया। कदाचित् इसी बात को सूर ने अपने इस दोहे में लिखकर प्रकट किया है—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विशाल।
जिन्हें न जग कछु देखिबो, लखि हरि रूप रसाल ॥

अपने गुरु श्री स्वामी वल्लभाचार्यजी महाराज से कृष्ण प्रेम की दीक्षा लेकर जब सूरदास ब्रज-बीथियों के कण-कण में अपने इष्टदेव की खोज में भटक रहे थे, उस समय वह किसी अंधे कुएँ में गिर पड़े। भगवान् मुरली मनोहर ने ही उन्हें सहारा देकर उसमें से निकाला। सूर को प्रभु के उस कर-स्पर्श में ही मोक्ष की सरस शीतलता का अनुभव हुआ। बाहर के नेत्र बंद होते हुए भी उन्होंने अपने सहायक प्रभु को पहचान लिया। परन्तु प्रभु तो अपना हाथ छुड़ाकर चल दिए। सूर ने भटकते हुए गुहार लगाकर ज़ोर से अधीर होकर कहा—

हाथ छुड़ाए जात हो, निबल जान के मोहि।
हिरदै सौं जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि ॥

रासेश्वरी महारानी राधिका का चिर-वियोगिनी के रूप में वर्णन करके महात्मा सूर ने अपने हृदय की उस छटपटाहट का चित्र खींचा है जिसमें अनेक जन्मों से हरि मिलन की भावनाएँ तड़प रही हों। भगवद्दर्शन एक ही जन्म में हो जाता हो ऐसा सौभाग्य किसी विरले को ही मिलता है। उन्हें पाने के लिए तो लाखों जन्मों का पुण्य चाहिए। परन्तु उस पुण्य को धीरे-धीरे अनेक तप-व्रत और अनुष्ठानों को साधते हुए जीव की एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब उसका इष्ट स्वयं अपने जन की खोज करने के लिए आकुल हो उठता है। महात्मा सूर और उनकी विरहिणी राधिका दोनों ही इस अवस्था के मूर्तिमान प्रतीक हैं। ऐसे संत का पावन चरित्र, उसकी तन्मयता के गीत किस मानव की हृत्तन्त्री को झंकृत न कर देंगे ?

कृष्ण प्रेम के इस मूर्तिमान विग्रह की पुण्य-स्मृति में इस वैशाख

शुक्ला पंचमी को उनकी जयन्ती मनाकर हम अपने आदर का परिचय ही नहीं देते, वरन् उनकी अमर वाणी का तत्व अपने जीवन की गागर में भर लेने का प्रयत्न करते हैं। भारतीय समाज उस महात्मा के चरणों में श्रद्धा के साथ अपनी भक्ति पुष्पाञ्जलि अर्पण करता है।

12. श्री शंकर जयन्ती

वैशाख शुक्ला पंचमी

वैशाख शुक्ला पंचमी को पंडित शिवगुरु की पत्नी विशिष्टा देवी के गर्भ से आचार्य शंकर का जन्म वि० सं० 845 (ई० 788) में हुआ। भारत के सुदूर दक्षिण में केरल प्रदेश के अन्तर्गत कोचीन शोरानूर रेलवे लाइन के आलबाई स्टेशन से पाँच या छः मील दूर कालटी ग्राम को भगवान् शंकराचार्य की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है।

शंकर एक प्रतिभा-सम्पन्न शिशु थे। तीन वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अपनी मातृभाषा मलयालम् का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनके पिता की यह उत्कट अभिलाषा थी कि उनका पुत्र संस्कृत भाषा का उच्चतम ज्ञान प्राप्त करे। किंतु असमय में ही उनकी मृत्यु हो गई। तब इनके विकास का भार माता विशिष्टादेवी के कंधों पर आ पड़ा। उन्होंने पाँचवें वर्ष में इनका उपनयन कराके वेदाध्ययन के लिए गुरु के आश्रम में भेज दिया। वहाँ अपनी प्रखर-प्रतिभा से बालक शंकर ने अपने गुरु को भी चकित कर दिया।

माँ की यह लालसा थी कि पुत्र के योग्य होने पर जल्दी से उसका विवाह करके पुत्र-वधू का मुख देखे। परन्तु शंकर को संसार के विषयों से विरक्त होकर संन्यास धारण करने की चिंता उद्विग्न कर रही थी। इसी समय किसी ज्योतिषी ने उनकी कुण्डली देखकर आठवें अथवा सोलहवें वर्ष में उनका भीषण मृत्यु योग बतलाया, जिसने उनके चित्त

को वैराग्य की ओर बढ़ने का और भी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने संन्यास लेकर लोक-सेवा का संकल्प भी ले लिया। बड़ी कठिनाइयों से वह इस मार्ग पर चलने की आज्ञा अपनी माता से प्राप्त करने में सफल हुए।

नर्मदा के तीर पर एक गहन गुफा में उन्होंने योग सूत्रों के रचयिता महर्षि पतञ्जलि के अवतार आचार्य गोविंद भगवत्पाद से वेदान्त धर्म की शिक्षा ग्रहण की। यहाँ लगभग तीन वर्ष तक वे अद्वैत तत्व की साधना करते रहे, और उन्हीं से संन्यास मार्ग की दीक्षा लेकर लोकोपकार में प्रवृत्त हो गए। संन्यास धर्म को ग्रहण करने के बाद आचार्य शंकर भगवान् विश्वनाथ का दर्शन करने काशी पहुँचे। राह में उन्होंने चार भयानक कुत्तों से घिरे हुए एक चाण्डाल को देखा। वह राह रोककर खड़ा हुआ था। शंकर ने उसे एक ओर हट जाने का आदेश दिया। परन्तु उस चाण्डाल ने कहा—

शुचिर्द्विजोऽहं श्वपच व्रजेति
मिथ्याऽग्रहस्से मुनिवर्य कोऽयम्।
सतं शरीरेष्व शरीरमेकम्
उपेक्ष्य पूर्णं पुरुषं पुराणम्॥

—शांकर दिग्विजय, सर्ग ६, श्लो०, ३०

हे मुनिवर्य! मैं पवित्र ब्राह्मण हूँ, तुम श्वपच हो इसलिए एक ओर हटो। यह आपका मिथ्याग्रह कैसा है? क्योंकि सभी शरीरों में रहने वाले एक पूर्ण अशरीरी पुराण पुरुष की उपेक्षा करने का साहस तुम कैसे कर रहे हो?

चाण्डाल के मुख से उपरोक्त देववाणी का संदेश पाकर आचार्य शंकर ने कहा—

यत्र यत्र च भवेदिह बोधस्-
तत्तदर्थं समवेक्षण काले।
बोधमात्रमवशिष्ट्यहं तद्-
यस्य धीरिति गुरु सः नरो मे॥

इस संसार में विषय के अनुभव के समय जहाँ-जहाँ ज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ-वहाँ सब उपाधियों से रहित ज्ञान स्वरूप मैं ही हूँ। मुझ

से भिन्न और कोई पदार्थ नहीं है, ऐसी जिसकी बुद्धि है वही मेरा गुरु है।

यह कहकर उन्होंने चाण्डाल को प्रणाम किया। उसी क्षण उन्हें चाण्डाल के स्थान पर स्वयं देवाधिदेव शंकर और कुत्तों के स्थान पर चारों वेदों का दर्शन हुआ। इस रीति से सत्य-ज्ञान प्राप्त करके वह वहाँ से आगे बढ़े और काशी पहुँचकर वेदान्त सूत्रों का भाष्य लिखना आरम्भ किया। काशी से चलकर आचार्य शंकर महिष्मती नगरी में सुप्रसिद्ध कर्मठ कर्मकांडी आचार्य मंडन मिश्र से मिलने गए। राह में उन्हें मंडन के यहाँ पानी भरने वाली दासियाँ मिल गईं। दैवात् उन्होंने उनसे मंडन मिश्र के घर का पता पूछा। उन्होंने तेजस्वी ब्रह्मचारी शंकर की ओर देखकर कहा—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
कीरांगना यत्र गिरा गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धा
जानीहि तन्मंडनं पंडितौ कः।

शां० दिग्विजय० स० ८।६

दासियों ने कहा—जिस द्वार पर पिंजड़े टँगे हों और उनके भीतर बैठी हुई मैना—वेदवाक्य स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, फल का देने वाला कर्म है या ईश्वर तथा जगत् ध्रुव है या अध्रुव है, इस बात पर विचार कर रही हो, उसे ही मंडन पंडित का घर समझ लीजिएगा।

आचार्य शंकर उन दासियों की वाक्चातुरी और विद्वान् मंडन के पक्षियों का हाल सुनकर चकित हो गए। किन्तु उनके पास पहुँचने पर उन्होंने अपनी युक्तियों से आचार्य मंडन की युक्तियों का खण्डन करके उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया।

शंकर और मंडन के वाद-विवाद में निर्णायिका मंडन की विदुषी पत्नी शारदादेवी थीं। उन्होंने अपने पति की पराजय देखकर आचार्य से कहा—"महात्मन्! अभी आपने आधे ही अंग को जीता है। इसलिए शास्त्रार्थ में मुझे अपनी युक्तियों से परास्त करके ही आप विजयी

घोषित किये जा सकेंगे।" आचार्य ने उसके प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार कर लिया। शारदादेवी ने काम शास्त्र पर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। परन्तु शंकर तो बाल-ब्रह्मचारी थे। उन्हें काम-शास्त्र का कोई ज्ञान न था। इसलिए वह शारदादेवी के प्रश्नों का उत्तर न दे सके। उन्होंने उसके लिए कुछ समय माँगा और परकाय प्रवेश करके तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करके उसे परास्त कर दिया। दिग्विजयी होकर शंकर ने इस देश में फैली हुई नास्तिकता को दूर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन्होंने कई मठ स्थापित किए और वेदान्त धर्म का प्रचार करते हुए अनेक ग्रन्थ लिखे और तैंतीस वर्ष की अवस्था में इस पार्थिव शरीर को त्याग करके परमपद प्राप्त किया।

आचार्य शंकर का इस देश पर महान् उपकार है, उसके लिए किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें। वे शंकर के अवतार थे। हम लोग उनके चरित्र से अपने जीवन को पवित्र बनाएँ। यह श्रद्धांजलि देने के लिए ही प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला पंचमी को शंकर जयन्ती का आयोजन किया जाता है।

13. रामानुज जयन्ती

वैशाख शुक्ला षष्ठी

वैशाख के शुक्ल पक्ष की छठ को परम वैष्णव संत श्री रामानुजाचार्य की जयन्ती मनाई जाती है। आचार्य शंकर के बाद शुष्क अद्वैत साधन को भक्ति की सरसता का रंग देकर उन्होंने समाज को एक नवीन विचारधारा प्रदान की।

आचार्य रामानुज में गौतम बुद्ध की-सी दया, ईसा की सहनशीलता और प्रेम तथा लोगों में कर्त्तव्य-निष्ठा और धर्म की लगन उत्पन्न कराने का अदम्य उत्साह था। तिरुकोट्टियूर के संत महात्मा भाम्बि से

उन्होंने अष्टाक्षर मन्त्र की दीक्षा ली थी। महात्मा भाम्बि ने उन्हें गुरु-मन्त्र लेते समय उसे गुप्त रखने का आदेश दिया था। परन्तु श्री रामानुज ने सभी वर्ण के लोगों को एकत्र करके एक मंदिर के शिखर पर खड़े होकर सब लोगों को ज़ोर-ज़ोर से 'ओं नमो नारायणाय' का अष्टाक्षर मंत्र सुनाया और सबको ज़ोर से कहने के लिए उत्साहित किया। महात्मा भाम्बि ने जब यह हाल सुना तो वह बड़े रुष्ट हुए और बोले—मेरी आज्ञा को भंग करने के अपराध में तुम्हें घोर नर्क भोगना पड़ेगा। श्री रामानुज ने इस पर बड़ी विनम्रता के साथ निवेदन किया कि भगवन्! यदि आपके दिये हुए महामंत्र से हज़ारों व्यक्ति नर्क की यन्त्रणा से बच सकते हैं, तो मैं नर्क का दुःख भोगने को तैयार हूँ। रामानुज के इस उत्तर से गुरु का क्रोध जाता रहा और उन्होंने अपने इतने प्यारे शिष्य को हृदय से लगा लिया।

रामानुज की यही प्राणिमात्र को जीवन की यथार्थ भावना देने की लगन उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। उन दिनों श्री रंगम पर चोल देश के राजा कुलोचुँग का अधिकार था। वे बड़े कट्टर शैव थे और अपनी मान्यताओं के विरुद्ध कुछ भी कहने वाले को मृत्यु दण्ड दे देते थे। एक बार राजा ने इन्हें भी अपने दरबार में बुलवाया। रामानुज उसके अभिप्राय को समझ गए। वह निर्भीक होकर जाने के लिए तैयार हो गए। परन्तु इनके शिष्य कूरतालवार ने कहा—प्रभो! पहले मुझे उस मिथ्याभिमानी के दरबार में हो आने दीजिए। यदि वह मेरी बातों से वैष्णव धर्म की महत्ता स्वीकार कर ले तब आपका वहाँ पधारना उचित होगा। रामानुज ने इसे स्वीकार कर लिया। कूरतालवार रामानुज का-सा वेष बनाकर वहाँ चले गए और राजा के सामने वैष्णव-धर्म की महानता एवं कोमलता का वर्णन किया। राजा ने क्रुद्ध होकर उनकी आँखें निकलवा लीं। श्री रामानुज को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी दिन अपने नेत्रहीन शिष्य को लेकर श्री रंगम का परित्याग कर दिया। राह में कुछ डाकुओं ने उन पर आक्रमण किया। परन्तु आसपास के रहने वाले अछूतों ने उनकी रक्षा की। इन लोगों के प्रेम ने उन्हें मुग्ध कर दिया। इसलिए तिरुनारायणपुर के मन्दिर

—जिसे उन्होंने स्थापित किया था—में अछूतों के प्रवेश की आज्ञा प्रदान कर दी और अछूतों का नाम तिरुवकुलत्तर (हरिजन) रखा।

कुलोचुंग का देहान्त हो जाने पर आचार्य रामानुज ने श्री रंगम में प्रवेश किया। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने उनसे वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली। धीरे-धीरे शैवों को अपने मत से प्रभावित करके उन्होंने साम्प्रदायिक कटुताओं को दूर हटाने का सुदृढ़ प्रयत्न किया। देश-भर में भ्रमण करके लोगों में वैष्णव-धर्म का प्रचार किया। उनकी दृष्टि में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच और धनी तथा निर्धन का एक-सा महत्त्व था। प्रेम, दया और भक्ति के गुणों से मानव के जीवन को अलंकृत करने का व्रत उन्होंने अपने जीवन में अपना लिया था। इसलिए लोगों को पारस्परिक प्रेम और सद्भाव का उपदेश देते हुए उन्होंने अनेक मन्दिरों की स्थापना कराई और लोगों को दीक्षित किया।

श्री रामानुज के सिद्धान्त के अनुसार पुरुषोत्तम भगवान् ही जगत् के आधार हैं। वे प्राणिमात्र में समान रूप से व्याप्त हैं। अपने व्यक्तिगत अभिमान को मिटाकर समष्टि में भगवान् के रूप को साक्षात् करना ही सही भगवदुपासना है। धर्म आत्मा के प्रकाश और भगवत्मिलन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसी धर्म की स्थापना करने के लिए जगन्नियन्ता प्रभु इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और धर्म से विमुख लोगों को जीवन की सीधी-सादी राह दिखाते हैं। भगवान् लक्ष्मी-नारायण इस जगत् के माता-पिता हैं। माता-पिता का प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना सन्तान का सबसे बड़ा धर्म है। वाणी से भगवान् का नाम-स्मरण करना और शरीर से उनकी सेवा करनी चाहिए। इन्हीं उपदेशों को पाकर समाज ने स्वामी रामानुजाचार्य की प्रतिष्ठा की। उनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत मत कहलाता है। वैशाख शुक्ला छठ को उनकी स्मृति में देश के कोने-कोने में समारोह होते हैं, जिनमें वैष्णव मत के मानने वाले लोगों के साथ-साथ विद्वान मंडली श्री रामानुज की पुण्य-स्मृति में श्रद्धांजलि समर्पण करती है।

14. गंगा सप्तमी

वैशाख शुक्ला सप्तमी

वैशाख शुक्ला सप्तमी को गंगा सप्तमी कहते हैं। भारतवर्ष के लगभग 1500 मील के लम्बे क्षेत्र को अपने निर्मल जल से सिंचित करने वाली पवित्र गंगा नदी की महिमा का वर्णन करते हुए आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में एक अद्भुत कथा लिखी है कि सूर्य के वंश में उत्पन्न महाराजा सगर के परपौत्र राजा भगीरथ ने अपने पैरों के एक अंगूठे पर खड़े रहकर एक वर्ष पर्यंत भगवान् शंकर की आराधना की। एक वर्ष बीतने पर शंकर ने महाराज भगीरथ के सामने प्रकट होकर कहा—राजन् ! इस कठोर तप को करने का क्या उद्देश्य है ? महाराज भगीरथ ने कहा—देवाधिदेव, पूर्वजों के समय से ही इस देश में स्वर्ग से गंगा की निर्मल धारा को लाने का एक अविरल प्रयत्न हमारे वंश में हो रहा है। आपके आशीर्वाद से हमें अपने उस श्रम के वरदान में प्रजापति ब्रह्मा से यह आश्वासन मिल चुका है कि वह गंगा की विमल जल-धारा को स्वर्ग से छोड़ देंगे। परन्तु उनका कहना है कि गंगा के वेग को सिवाय आपके और कोई नहीं सम्हाल सकता। अतः यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके गंगा का भार सम्हालने का वचन प्रदान करें। यह सुनकर शंकर ने कहा—

प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्।
शिरसाधारयिष्यामि शैलराज सुतामहम्॥

—वा० रा० स० ४३ श्लोक ३

नरश्रेष्ठ ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और मैं तुम्हारा प्रिय कार्य पूरा करूँगा। हिमवान की कन्या गंगा को मैं अपने मस्तक पर रोकूँगा।

उसके बाद सब लोकों के द्वारा पूजित गंगा बहुत बड़े विकट प्रवाह के रूप में दुस्सह वेग से आकाश से शिव के मस्तक पर गिरीं। उस समय परम दुर्धरा गंगादेवी ने सोचा कि अपनी धाराओं के साथ मैं महादेव को लेकर पाताल लोक में घुस जाऊँगी। गंगा का यह

अभिमान देखकर शंकर बड़े क्रुद्ध हुए और त्रिनयन-शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में छिपा लेने का विचार किया। वह पवित्र गंगा शिव के मस्तक पर गिरी और हिमवान के समान शिव की जटाओं के गह्वर जाल में समा गईं। पृथ्वी पर आने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। पर वह आ न सकीं। बहुत वर्षों तक उन्हें बाहर जाने की राह ही न मिली। इस पर भगीरथ महाराज ने अत्यन्त चिन्तित होकर पुनः अपने तप से शिव को प्रसन्न करके गंगा को मुक्त करने का वर माँगा। आशुतोष शिव ने धीरे-धीरे अपनी जटाओं से गंगा को मुक्त किया। राजा भगीरथ एक रथ पर बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे गंगा की निर्मल जल-धारा बड़े वेग से प्रवाहित होती हुई आगे बढ़ी। सब जलचर गंगा के पीछे-पीछे प्रसन्न होकर चले। जिधर-जिधर राजा भागीरथ जाते थे उधर-उधर गंगा भी चली जा रही थीं।

उस समय अद्भुत कार्य करने वाले जन्हुमुनि यज्ञ कर रहे थे। गंगा ने उनकी यज्ञ सामग्री बहा दी। गंगा के इस उद्धतपने से वे ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक अद्भुत काम किया। गंगा का समस्त जल पी लिया।

यह देखकर स्वर्ग के देवता, गंधर्व और ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महात्मा जन्हु की उन सबने मिलकर पूजा की और कहा कि गंगा आपकी कन्या के नाम से जगत् में विख्यात होगी। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने कानों की राह से उन्होंने गंगा को निकाल दिया। इसी से गंगा जान्हवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

उसी पुनीत दिवस की स्मृति में आज तक 'गंगा सप्तमी' के नाम से इस तिथि को हमारे देश में मनाया जाता है।

15. शिवा जयन्ती

वैशाख शुक्ला अष्टमी

विक्रमीय संवत् 1737 की वैशाख शुक्ला अष्टमी को महाराष्ट्र प्रदेश में दक्षिण के सुप्रसिद्ध वीर छत्रपति महाराज शिवाजी की याद को चिरस्मरणीय रखने के लिए, शिवा जयन्ती बड़ी भावना के साथ मनाई जाती है।

शिवाजी महाराज ने भारत में सुराज्य स्थापित करने का सबल प्रयत्न किया था। उनका निजी जीवन अत्यन्त सादा और धर्ममय था। उन्हें राष्ट्र-निमार्ण की प्रेरणा अपने धर्मगुरु श्री समर्थ रामदासजी महाराज से मिली थी। शिवाजी को दीक्षा देते समय उन्होंने कहा था कि "लोगों में धर्म-भाव तथा आत्म-गौरव का ह्रास हो जाने के कारण ही देश की इतनी अवनति हुई है। और यदि लोगों में फिर से यथेष्ठ धर्म-प्रचार और जागृति उत्पन्न कर दी जाय तो इस दुर्दशा का अंत हो सकता है।" श्री समर्थ ने सदैव इसी विचार के अनुसार सब काम किए और शिवाजी से भी वैसे ही काम कराए। उनके उपदेशों का प्रभाव शिवाजी के जीवन पर यहाँ तक पड़ा था कि वह राज्य कार्यों को भी उनसे संकेत लिए बिना नहीं चलाते थे।

ईस्वी सन् 1665 अर्थात् विक्रमीय संवत् 1722 की बात है कि एक बार श्री समर्थ सतारा में अपने दूसरे शिष्यों के साथ भिक्षा माँगने के लिए निकले और घूमते हुए सतारा के क़िले में पहुँचे। वहाँ द्वार पर खड़े होकर उन्होंने 'जय जय श्री रघुवीर समर्थ' का जय घोष किया। उस समय श्री शिवाजी महाराज उस किले में ही थे। उन्होंने सोचा कि ऐसे सुयोग्य और सत्पात्र गुरु की झोली में डालने के लिए कुछ उपयुक्त भिक्षा चाहिए। अतः उन्होंने अपने लेखक से एक दान-पत्र लिखवाया और बाहर आकर वही दानपत्र श्री समर्थ की झोली में डाल दिया। श्री समर्थ ने पूछा—"यह क्या है?" शिवाजी ने कहा—"भिक्षा है?" श्री समर्थ ने वह दान-पत्र झोली में से निकालकर पढ़ा। उसमें

लिखा हुआ था कि––"मैंने आज तक जो राज्य स्थापित किया है, वह सब गुरुदेव के चरणों में अर्पण है।" शिवाजी की ऐसी गुरुभक्ति देखकर श्री समर्थ बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु उन्होंने पूछा—"राज्य तो तुमने मुझे दे दिया, अब तुम क्या करोगे ?" शिवाजी ने कहा—"आप की सेवा करूँगा।" कहते हैं उस समय शिवाजी ने श्री समर्थ की झोली अपने कंधों पर रखी और गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर नगर में भिक्षा माँगी। समर्थ के भोजन करने के बाद स्वयं उसी में से उनका प्रसाद खाया। बाद में श्री समर्थ ने उनसे कहा—"मैं यह राज्य लेकर क्या करूँगा ? राज्य करना तो क्षत्रियों का काम है। तुम सुचारु रूप से इसका पालन करके प्रजा को सुखी करो। यही मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी।" इसके उपरान्त उन्होंने श्री रामचंद्रजी की वह कथा सुनाई जिसमें उन्होंने गुरु वशिष्ट को अपना सारा राज्य अर्पण कर दिया था और वशिष्टजी ने उन्हें प्रजा-पालन का उपदेश दिया था। अंत में उन्होंने शिवाजी को यह उपदेश दिया कि—"मेरी ओर से प्रधान मंत्री के रूप में तुम्हीं इस राज्य का संचालन करो।" शिवाजी ने नत-मस्तक होकर कहा—"अच्छा, तो अपनी खड़ाऊँ मुझे प्रदान करें। मैं उसी को सिंहासन पर रखकर के आपके आमात्य के रूप में राज्य के सारे काम करूँगा।" सब लोगों को यह सूचित करने के लिए कि यह राज्य श्री समर्थ का है, शिवाजी ने अपने राज्य की ध्वजा का रंग भगवा कर दिया, जिस रंग के वस्त्र श्री समर्थ पहनते थे।

छत्रपति शिवाजी वास्तव में और सच्चे अर्थ में राष्ट्र निर्माता थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनःप्रतिष्ठान का अनुष्ठान अपने जीवन-काल में पूर्ण कर डाला। सारे महाराष्ट्र में विशेष रूप से तथा पूरे भातरवर्ष में साधारण तौर पर इस पुण्य पर्व को बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है।

16. मोहनी एकादशी

वैशाख शुक्ला एकादशी

कूर्म पुराण में मोहनी एकादशी के बारे में एक कथा मिलती है कि—सरस्वती नदी के तीर पर बसी हुई भद्रावती नगरी में द्युतिमान नाम का राजा राज करता था। उसके कई पुत्र थे। एक लड़के का नाम धृष्टबुद्धि था। वह बहुत पापाचारी था। जुआ खेलना, व्यभिचार करना, दुर्जनों का संग और बड़े-बूढ़ों का अपमान करना इत्यादि दुर्गुणों का वह पुँज था। उसकी बुराइयों से दुखी होकर पिता ने उसे घर से निकाल दिया। तब वह बन में रहने लगा। वहाँ भी वह लूटमार करता और जानवरों को मारकर खाता था। एक दिन वह अपने किसी पुण्य संस्कार वश कौंडिन्य मुनि के आश्रम पर आ पहुँचा। वह महात्मा सूक्ष्मदर्शी थे। एक बार देखते ही उन्होंने धृष्टबुद्धि के मन का रहस्य जान लिया। वह बोले—

> यः साधूँश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः।
> प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहले तत्क्षणात्॥
> तामाराधय सत्क्रियाँ भगवतीं भोक्तुँ फलं वाञ्छितं।
> हे साधो! व्यसनैर्गुणेषु विपुले स्वास्थां वृथा मा कृथः॥

अर्थात्—मनोवांछित फल चाहने वाले पुरुषो! दूसरी बातों में वृथा कष्ट और परिश्रम न करके केवल सत्क्रिया रूपी भगवती की आराधना करो। यह दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पंडित, शत्रुओं को मित्र, गुप्त विषयों को प्रकट एवं हलाहल विष को भी अमृत कर सकती है।

महात्मा की सीख और थोड़ी देर के सत्संग से धृष्टबुद्धि का मन बदल गया। वह अपने गत जीवन के अपराधों को स्मरण करके क्षुब्ध हो उठा। उसने विनम्र होकर अपनी आत्मशान्ति का उपाय पूछा। कौंडिन्य ऋषि ने उसे इस एकादशी के व्रत करने का उपाय बता दिया। इसी के फलस्वरूप उसकी बुद्धि निर्मल हो गई और वह सज्जनों की भांति जीवन व्यतीत करने लगा। इस एकादशी व्रत का

साधन करने वाला साधक यदि अपने जीवन में सत्क्रिया अर्थात् सदाचरण को ढालने का सक्षम प्रयत्न करे तो उसे अवश्य मोहन मंत्र और मनोवाञ्छित फलों की प्राप्ति होगी।

17. नृसिंह चतुर्दशी

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को बाल-भक्त प्रह्लाद का मान रखने के लिए त्रैलोक्यपति भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण किया था। आज उन्हीं की पवित्र स्मृति को सजग रखने के लिए यह त्यौहार मनाया जाता है। परन्तु सत्य तो यह है कि आज के दिन भगवान् के नरसिंह रूप में प्रकट होने से अधिक महत्ता उस पाँच वर्ष के बालक के अटल विश्वास की है जिसकी रक्षा के लिए उन्हें प्रकट होना पड़ा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक स्थान पर लिखा है—

"प्रेम बड़ो प्रह्लाद को जिन पाहन ते परमेसुर काढ़े।"

नृसिंह का अवतार, भक्त के विश्वास और दृढ़ता का एक ज्वलंत, उदाहरण है। ईश्वर सर्व व्यापी है—यदि यह विश्वास हृदय में अटल है तो वह पत्थर में से भी प्रकट हो सकता है। यही बात इस अवतार से सिद्ध होती है। कहते हैं—बहुत प्राचीन काल में कश्यप नाम के एक नरेश थे। उनकी पत्नी का नाम दिति था। दिति के गर्भ से दो पुत्र हुए। एक का नाम था हिरण्याक्ष और दूसरे का नाम हिरण्यकशिपु था। दोनों बड़े पराक्रमी थे। हिरण्याक्ष को बाराह रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने मारा था। इसी से क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने विष्णु से अपना बदला लेने का निश्चय किया। उसने अपने तप से प्रजापति ब्रह्मा को प्रसन्न करके अजेय होने का वर प्राप्त किया। बाद में उसकी कठोरता और अत्याचार बढ़ने लगे। संसार में अपने

सभी शत्रुओं को परास्त करता हुआ वह विष्णु का कट्टर विरोधी बन बैठा। दैवयोग से उसकी पत्नी कयाधु के गर्भ से परम विष्णु-भक्त बालक प्रह्लाद का जन्म हुआ। बालक चंद्रमा की कला की भांति दिनों-दिन बढ़ने लगा। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत के अनुसार बालक प्रह्लाद में शैशव काल से ही सरसता, दया, श्रद्धा और विष्णु-भक्ति के चिन्ह प्रकट होने लगे, जिसके कारण उसे अपने पिता का कोप-भाजन बनना पड़ा। परन्तु पिता के अत्याचारों को सहते हुए भी बालक प्रह्लाद का मन डिगा नहीं और विश्वास के पथ में उसकी निष्ठा दिनों दिन दृढ़ होती गई।

एक दिन नंगी तलवारों से सुसज्जित चौदह हज़ार राक्षसों से भरे हुए दरबार में अपना खड्ग चमकाता हुआ क्रूर हिरण्यकशिपु बालक प्रह्लाद से रोष में भरकर पूछ बैठा कि—"मूर्ख ! मेरे परम शत्रु का भक्त होकर तू मेरे समक्ष क्या जीवित रह सकता है ? आज तुझे बताना पड़ेगा कि तेरा वह इष्टदेव विष्णु कौन है और कहाँ रहता है ?" बालक ने आत्म-विश्वास के साथ कहा—"वह कहाँ नहीं है पिताजी ? मुझमें, आप में, खड्ग में, खंभ में सबमें तो वही मेरा इष्टदेव समाया हुआ है।"

हिरण्यकशिपु इन गूढ़ वचनों के मर्म को नहीं समझ सका। उसने तमककर खंभे में गदा मारी और कहा—"कहाँ है तेरा भगवान् रे मूर्ख बालक ?" परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसी खंभ के दो टुकड़े हो गए और उसमें से एक विचित्र मूर्त्ति ने प्रकट होकर उसे पकड़, अपने घुटनों पर रख, अपने नखों को उसके पेट में भोंक दिया। श्रीमद्भागवत में महर्षि वेदव्यास लिखते हैं :—

> सत्यं विधातुं निजभृत्य भाषितम्
> व्याप्ति च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः
> अदृश्यतात्यद्भुत रूपमुद्वहन—
> स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

अर्थात्—अपने भक्त के कहे हुए वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिए और त्रिलोकी में व्याप्त होने की महिमा को चरितार्थ करने के लिए

उग्ररूप धारी भगवान् खम्भ में से ही प्रकट हो गए। जिनका आधा अंग पशु और आधा अंग मनुष्य का सा था। वह समय दिन के अंतराल अर्थात् संध्या का था। ठीक मकान की देहरी पर बैठकर भगवान् ने उसे मारा था। उस समय श्री हरि का उग्ररूप देखकर देवता भी काँप उठे। परन्तु बालक प्रह्लाद ने निर्भीक होकर उनकी वंदना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके अमर पद पाया। भक्त की पुकार पर दौड़ आने वाले भगवान् का प्रत्येक भारतवासी चिर कृतज्ञ रहता आया है और अपनी कृतज्ञता के ज्ञापन के लिए वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को समारोहपूर्वक नृसिंह जयन्ती मानता है।

18. वट सावित्री व्रत

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी से अमावस्या तक, अपने पति और पुत्र की दीर्घायु तथा मंगल-कामना के लिए प्रायः हर प्रदेश की सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस तीन दिन के व्रत को करती हैं।

स्त्रियाँ प्रायः हर देश की सभ्यता और संस्कृति की रक्षिका रही हैं। उनमें शील, सौजन्य, उदारता और सहनशीलता के जो स्वाभाविक गुण होते हैं, उन्हें पाकर हमारे परिवार स्वर्गीय सुखों का अनुभव करते हैं। स्वर्ग तो सचमुच उस सुखी गृह में रहता है जिसमें कलह, द्वेष, कटुता और विरोध न हों। ग़रीबी के दिन काटकर भी एक सद्-गृहस्थ दैवी गुणों से अलंकृत होकर चिर शांतिमय जीवन बिता सकता है और यह तभी संभव होता है जब घर की स्त्रियाँ समझदार और शील-युक्त हों। स्त्रियों को गृहलक्ष्मी कहा जाता है। परन्तु दुर्भाग्यवश बहुत दिनों से हम उनकी उपेक्षा और अवहेलना करते रहने के आदी हो गए हैं। आज तो उनकी सामाजिक दशा बड़ी शोचनीय है। जन्म के समय

से ही कुछ परिवारों में तो उनके साथ पक्षपात का बर्ताव होने लगता है। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर भी उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना लड़कों पर। और कभी-कभी विवाह के पश्चात् उन्हें तुरन्त ससुराल वालों का ही नहीं वरन् अपने पतियों का भी दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता है। प्राचीन काल के लोगों का इतिहास और विशेषत: 'वट-सावित्री व्रत' की कथा तो स्पष्ट रूप से इस बात की द्योतक है कि स्त्रियों का आदर करने वाले परिवार केवल सुखी ही नहीं होते वरन अपने ऊपर आई हुई मृत्यु की कालिमा को भी वे जीवन के प्रकाश में बदल सकते हैं।

कथा यह है कि—मद्रदेश में महाराज अश्वपति नाम के एक नरेश थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी समेत देवी सावित्री के मंत्र का जप, व्रत और पूजन तथा अनुष्ठान शास्त्रोक्त विधि के अनुसार किया। एक दिन उनके आराधन से प्रसन्न होकर सावित्री ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा—तुम्हारे गृह में पिता और पति के कुलों की कीर्तिपताका फहराने वाली एक कन्या का जन्म होगा।

कुछ दिन बाद महाराज अश्वपति के घर में एक सद्गुण-सम्पन्ना सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। राजा और रानी ने पुत्र जन्मोत्सव के समान बड़ी धूम-धाम से बालिका का जन्मोत्सव मनाया। धीरे-धीरे वह कन्या जब विवाह के योग्य हुई तब महाराज ने उसे अपने अनुकूल वर का चुनाव करने की आज्ञा प्रदान की एवं अपने वृद्ध मंत्री को उसके साथ कर दिया। कुछ काल बीतने पर एक दिन देवर्षि नारद राजा अश्वपति से मिलने आए। उसी दिन सावित्री भी वर का चुनाव करके लौटी थी। राजा ने यह समाचार देवर्षि से कहकर अपनी कन्या को उनके सामने बुलाया और मनोनुकूल वर पाकर उसका जीवन सुखी हो यह आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। नारद सावित्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुए परन्तु आशीर्वाद देने से पहले उन्होंने पूछा—"बेटी! तुमने किस योग्य वर को अपने लिए पसन्द किया है?"

सावित्री ने कहा—"देवर्षि! महाराज द्युमत्सेन का राज्य मंत्री ने हरण कर लिया है। वह अंधे होकर अपनी पत्नी के समेत सघन बन

में रहते हैं। उन्हींके इकलौते पुत्र सत्यवान को मैंने अपना पति स्वीकार किया है।"

सावित्री के वचन सुनकर देवर्षि नारद ने गणना करके महाराज अश्वपति से कहा—"राजन्। तुम्हारी कन्या ने वर तो बहुत अच्छा चुना है। सत्यवान को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। वह बहुत ही सुशील, योग्य और सत्यवादी है। वह नर-रत्न है। उसके समान उज्ज्वल चरित्र वाला कोई दूसरा राजकुमार नहीं है। परन्तु उसमें एक ही दोष है और वह यह कि आज से पूरे एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो जाएगी।"

महाराज अश्वपति देवर्षि के इन वाक्यों को सुनते ही सहसा चौंक पड़े। उन्होंने सावित्री से दूसरा वर ढूँढ़ने के लिए कहा। परन्तु सावित्री ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया—"पिताजी! आर्य कन्याएँ जीवन में एक बार ही पति का वरण करती हैं। दूसरे पुरुष की ओर दृष्टि डालना भी पाप है। अतः जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे कोई दूसरा नहीं मिटा सकता। इसलिए वह चाहे दीर्घायु हों अथवा अल्पायु। आपकी कन्या दूसरे को अब पति रूप में अंगीकार नहीं कर सकती।" सावित्री की यह दृढ़ता देखकर देवर्षि नारद बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महाराज अश्वपति को सावित्री का विवाह सत्यवान के साथ करने की अनुमति प्रदान कर दी। तदनुसार सावित्री और सत्यवान विवाह-सूत्र में बद्ध हो गए। जंगलों में रहकर साध्वी सावित्री अपने पति की सेवा के साथ-साथ अंधे सास-ससुर की सेवा में रत रहने लगी।

उधर देवर्षि ने जो बात बताई थी उससे भी वह बेखबर नहीं थी। वह एक-एक दिन गिनती जाती थी। धीरे-धीरे आसन्न मृत्यु का वह भयानक दिवस भी आ पहुँचा। किन्तु उसके तीन दिन पहले ही सावित्री ने उपवास आरम्भ कर दिया था। तीसरे दिन प्रातः उसने नित्य कर्मों से निवृत होकर अपने कुल-देवता और पितृ-गणों का वन्दन एवं पूजन बड़ी श्रद्धा के साथ किया। संध्या के समय जब सत्यवान अपने नित्य के नियम के अनुसार जंगल से लकड़ी काट लाने के लिए जाने लगे तब सावित्री ने भी साथ चलने का आग्रह किया और अपने सास-

ससुर से आज्ञा लेकर सत्यवान के साथ हो ली।

सत्यवान ने जंगल में पहुँचकर पहले कुछ मीठे फल तोड़े और उसके बाद लकड़ी काटने के विचार से वह एक पेड़ पर चढ़कर जब लकड़ी काट रहे थे तब एकाएक उनके मस्तक में पीड़ा आरम्भ हुई। वह लकड़ी काटना छोड़कर नीचे उतर आए और एक वट वृक्ष की शीतल छाया में सावित्री की जंघा पर सिर रखकर लेट गए। सावित्री का भी हृदय अन्दर से धक-धक कर रहा था। उधर सत्यवान की पीड़ा बहुत बढ़ गई, वह बेचैन होकर छटपटाने लगे। इतने में देवी सावित्री ने देखा कि अपने हाथ में पाश लिये हुए दूतों के सहित स्वयं यमराज सामने खड़े हैं। सावित्री ने उन्हें प्रणाम किया और उनके वहाँ आने का कारण पूछा। यमराज ने विधि-विधान की रूपरेखा सावित्री को सुना दी और सत्यवान के प्राणों को अपने पाश में बद्धकर अपने लोक की ओर जाने लगे। सावित्री भी अपने स्थान से उठकर उनके पीछे-पीछे चलने लगी। बहुत दूर पहुँचने पर यमराज ने अपने पीछे आती हुई सावित्री को मुड़कर देखा। वह रुककर बोले—"सावित्री! संसार में मनुष्य जहाँ तक मनुष्य का साथ दे सकता है वहाँ तक तुमने भी अपने पति का साथ दिया। अब लौट जाओ। इससे आगे तुम्हारी गति नहीं है।"

सावित्री ने कहा—"धर्मराज! पति का छाया की तरह अनुसरण करते रहना ही पत्नी की मर्यादा है। जहाँ पति जाय वहीं उसके साथ जाना ही वैदिक धर्म की दीक्षा है। इसलिए उस मर्यादा के विरुद्ध कुछ कहना आपको शोभा नहीं देता।"

सावित्री का धर्मज्ञान और दृढ़ता देखकर धर्मराज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने गम्भीर वाणी में कहा—"देवि! तुम्हारी निष्ठा और धर्म-भावना से मैं प्रसन्न हूँ। अपने पति के प्राणों को छोड़कर यदि तुम कोई वर मुझसे माँगना चाहती हो तो माँगो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होने का वर दूँगा।"

सावित्री ने कहा—"जब मेरे पति के प्राण हरण करके आप मुझसे दूर ले जाना चाहते हैं तो दूसरी अभिलाषा मन में आ ही कैसे

सकती है। फिर भी आप मुझ पर प्रसन्न होकर कोई वर देने का वचन दे चुके हैं तो यही दें कि मेरे अंधे सास-सुसर को अपनी खोई हुई निधियाँ नेत्रों की ज्योति और दीर्घायु प्राप्त हो।"

यमराज "तथास्तु" कहकर आगे बढ़े। परन्तु कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि सावित्री अभी भी उनके पीछे चली आ रही है। पातिव्रत धर्म के प्रभाव के कारण यमराज उसकी गति में अवरोध नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने पुनः पास आकर कहा—"सावित्री! इस जगह से आगे किसी शरीरधारी प्राणी की गति नहीं है। अतः तुम यहाँ से पीछे लौट जाओ।"

परन्तु सावित्री विनम्रभाव से बोली—"धर्मराज! पति को छोड़कर नारी की कोई दूसरी गति नहीं है। अतः मेरे पति को जब आप एक राह पर लेकर चले जा रहे हैं तब मुझे क्यों दूसरी राह पर जाने का आदेश दे रहे हैं?" सावित्री की विनयशीलता और निष्ठा यमराज के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करती जा रही थी। इसलिए वह कुछ दयार्द्र होकर बोले—"सावित्री! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। यदि तुम और कोई वर पाना चाहती हो तो मांगो मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।" सावित्री ने अपने लिए सौ भाइयों की बहन होने का वरदान माँगा। यमराज "तथास्तु" कहकर आगे बढ़ गए। परन्तु सावित्री ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ा। कुछ दूर बढ़ने पर उन्होंने मुड़कर पीछे देखा। सावित्री अभी भी आगे बढ़ती हुई चली आ रही थीं। यम ने रुककर उससे कहा—"सावित्री! क्या अभी भी कुछ पाने की लालसा तुम्हारे मन में है यदि है तो एक वर और माँग लो और लौट जाओ।"

अपने श्वसुर और पिता के कुल के हित का अभिलषित वर पा लेने के बाद पतिपरायणा सती को अपने पति की दीर्घायु के सिवाय क्या बचता है? इसलिए सावित्री ने सोचकर कहा—"धर्मराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और दया करके एक और वरदान देना स्वीकार करें तो मेरे सौ पुत्र हों यही वर प्रदान करें।" यमराज "तथास्तु" कहकर आगे बढ़े। परन्तु सावित्री ने अभी भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। कुछ दूर आने पर उन्होंने मुड़कर पीछे देखा। सावित्री अभी भी आगे बढ़ती

चली आ रही थी। यम ने रुककर उससे कहा—"सावित्री! अब क्या चाहती हो?" सावित्री ने कहा—"धर्मराज! क्या बिना पति के भी आज तक कोई स्त्री संतान का मुख देख सकी है?" यमराज बोले—"ठीक है, देवि! तुमने ऐसा वर मुझ से माँग लिया है जो बिना तुम्हारे पति को पाश से मुक्त किए पूरा नहीं हो सकता। किन्तु वचनबद्ध होने के कारण मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सौ पुत्रों की माता बनो और साथ ही तुम्हारे पति को भी अपने पाश से मुक्त करता हूँ। तुम्हारी निष्ठा, धर्म-ज्ञान और पतिव्रत की कहानी जगत् में अमर होगी। जाओ, अब लौट जाओ।"

सावित्री यम को प्रणाम करके अपने पति के प्राणों को लेकर वापस लौटी। जिस वट के नीचे उसने प्राण छोड़े थे, सावित्री ने पहले उसकी ही प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा पूरी होते-होते सत्यवान जीवित होकर उठ बैठे। सावित्री उन्हें जीवित देखकर हर्ष से फूली न समाई। दोनों वहाँ से उठकर महाराज द्युमत्सेन के पास पहुँचे। उन्हें नेत्रों की ज्योति मिल चुकी थी। साथ ही उनके मंत्री आदि उनकी खोज करते हुए वहाँ पहुँच चुके थे। उन्होंने पुनः महाराज को ले जाकर उनके राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया। समय पाकर सावित्री के पिता श्री महाराज अश्वपति को सौ पुत्र प्राप्त हुए। चारों ओर देवि सावित्री के पतिव्रत धर्म-पालन की कीर्ति का गान होने लगा। और उन्हें सौ पुत्रों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सती सावित्री का यशोगान करते भारत की नारियाँ नहीं अघातीं। वर्ष में तीन दिन ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी से अमावस्या तक वे व्रत रखकर सावित्री के जीवन-वृत्त से पातिव्रत धर्म पालन करने की प्रेरणा लेती आ रही हैं।

19. गंगा दशहरा

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को पुण्यतोया भगवती भागी-रथी गंगा का जन्म-दिन मनाया जाता है। भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से गंगा नदी की महिमा हमारे देश में व्याप्त है ही, परन्तु आर्थिक दृष्टि से भी गंगा माता ने भारतीय जन-जीवन को बहुत ही प्रभावित किया है। पुराणों में उनकी महिमा का यहाँ तक वर्णन किया गया है कि—

गंगा गंगेति यो ब्रूयान्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स: गच्छति ॥

गंगा से सौ योजन दूर बैठकर कोई व्यक्ति परम श्रद्धा से उनके नाम का उच्चारण करे तो भी वह पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक की प्राप्ति करता है। आज के दिन वही गंगा आर्य जाति की माता बनकर स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरीं। आर्यों के बड़े-बड़े साम्राज्य इसी पवित्र नदी के तट पर स्थापित हुए। कुरु तथा पांचाल देश से लेकर उत्तर में ब्रह्मा-वर्त, बिहार और बंगाल प्रदेश की भूमि को अपनी निर्मल वारिधारा से उर्वरा बनाती हुई माँ गंगा हमारे देश की लगभग 1500 मील की धरती का सिंचन करती है। मानसरोवर के विशाल जलभण्डार से हिमालय की उत्तुंग शृंग माला के घुमाव-फिराव को पार करते हुए जिस महापुरुष ने इस सरिता को देश-हित की दृष्टि से इस क्षेत्र में लाने की योजना पहले-पहल बनाई थी, वह महापुरुष भगवान् सूर्य के कुल में उत्पन्न महाराजा सगर थे। उन्हें अपनी प्रजा प्राणों के समान प्रिय थी। उसके जल-संकट को दूर करने के लिए महाराज ने एक विशेष अनुष्ठान किया। वह अनुष्ठान था—गंगा माता को लोक-कल्याण के लिए धरती पर लाने का दृढ़ संकल्प। सगर के साठ हज़ार पुत्रों ने मिलकर अपने श्रम से उस यज्ञ को सफल बनाया। श्री-मद्वालमीकीय रामायण में विस्तारपूर्वक इसका उल्लेख है। महर्षि विश्वामित्र ने यह यज्ञवार्ता राम को जनकपुरी की पैदल यात्रा करते

समय गंगा के तीर पर खड़े होकर सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

एक बार महाराज सगर ने बहुत बड़ा यज्ञ किया। उस यज्ञ की रक्षा का भार उनके पौत्र अंशुमान ने अपने ऊपर लिया। यज्ञ करने वाले यजमान सगर के यज्ञीय-अश्व को देवराज इन्द्र ने चुरा लिया। अश्व के चुराए जाने को यज्ञ का विघ्न मानकर, अंशुमान और उनकी प्रजा के साठ हज़ार मनुष्यों ने मिलकर खोज आरम्भ की। परन्तु सारी पृथ्वी पर कहीं भी घोड़े का पता नहीं चला। तब पाताल लोक तक ढूँढ निकालने की भावना से उन्होंने पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग खोद डाला। वहाँ सनातन भगवान् वासुदेव महर्षि कपिल के रूप में बैठे हुए तप कर रहे थे। उनके पास सगर का यज्ञाश्व भी चर रहा था। वे सब उन्हें देखकर सहसा ही चोर-चोर चिल्ला उठे। इससे महर्षि कपिल की समाधि भंग हो गई। योगनिद्रा से जागते ही जिस समय महर्षि कपिल ने उन लोगों को अपने आग्नेय नेत्रों से देखा तो वे सब वहीं भस्म हो गए।

बहुत दिनों बाद उन मरे हुए लोगों की कल्याण चिन्ता से व्याकुल महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ ने कठोर तप करके प्रजापति ब्रह्मा से गंगा को माँगा। प्रजापति ने कहा—राजन्! तुम गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारकर ले आना चाहते हो किन्तु तुमने पृथ्वी से कभी यह पूछा भी है कि क्या वह गंगा के वेग और भार को सम्हाल लेगी। मेरे विचार में तो केवल कैलाशवासी शंकर ही उसका वेग सम्हाल सकते हैं। इसलिए तुम उनसे गंगा का भार सम्हाल लेने का वर प्राप्त करके मेरे पास आना। महाराज भगीरथ ने अपने तप से शंकर को प्रसन्न करके गंगा को मस्तक पर सम्हालने का वर प्राप्त कर लिया। तब प्रजापति ने अपने कमंडलु (मानसरोवर) से गंगा की वारिधारा को छोड़ा। शिव ने अपनी सघन जटाओं में गंगा का जल लेकर जटाएँ बाँध लीं। भगवती गंगा भी उन जटाओं के जाल में से बाहर जाने की राह न पा सकीं।

इस पर महाराज भगीरथ को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने मृत पूर्वजों का उद्धार करने के लिए स्वर्ग से गंगा को लाने का श्रम किया

था। परन्तु गंगा को बीच में ही रोक लेने वाले शंकर के पराक्रम से उनकी आशा अधूरी रह गई। इसलिए उन्होंने पुनः तप करके शंकर को प्रसन्न किया और गंगा की धारा को मुक्त करने का वर प्राप्त कर लिया। शिव की जटाओं से छूटकर गंगा हिमाचल की घाटियों से टकराती हुई मैदान की ओर बढ़ चली। गंगा के निर्मल जल-स्पर्श से उन सबका उद्धार हो गया। उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर महाराज भगीरथ से कहा—

तच्च गंगावतरणं त्वया कृतमरिंदम।
अनेन व भगवान्प्राप्तो धर्मस्यायतनं महत् ।।
प्लावयस्व त्वयात्मानं नरोत्तम सदोचिते।
सलिले पुरुष श्रेष्ठ शुचिः पुण्य फलो भव ।।

अर्थात्—हे शत्रुनाशन! आप जो पृथ्वीतल में गंगा ले आने में समर्थ हुए हैं, उससे आप बहुत बड़े धर्म के भागी हुए हैं। गंगा में स्नान सदा कल्याणकारी है और भविष्य में इसके एक-एक बूंद जल से मानव का जीवन उपकृत होगा। इससे आप स्वयं पवित्र होंगे और दूसरों को पवित्र कर सकेंगे। आपका कल्याण हो। लोक में यही गंगा युगों तक आपके श्रम की अक्षय कीर्ति निरन्तर लोगों को सुनाती रहेगी। गंगा को लाकर प्यासी भूमि को सींचना, मरे हुओं को जीवनदान देने के बराबर है, उस महान् अनुष्ठान की पूर्ति का यशोगान भारत का जन-जन आनन्द में विभोर होकर किया करता है। और ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को, जिस दिन पुण्यतोया भागीरथी ने पृथ्वीतल को छुआ, लोग महान् पर्व मनाते हैं।

20. निर्जला-एकादशी

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी

प्रत्येक मास में दो बार एकादशी तिथि पड़ती है। और प्रत्येक एकादशी का महत्त्व उसी ऋतु के अनुसार अलग-अलग होता है। सत्य तो यह है कि एक पक्ष में कम-से-कम एक दिन का उपवास अवश्य करना चाहिए। ताकि इससे पाचन के जो यंत्र हमारे शरीर में दिन-रात कार्य करते रहते हैं, उन्हें कुछ विश्राम मिल जाय। यह तो हुई मास में दो बार उपवास करके अपने शरीर को नीरोग बनाने की प्रक्रिया, किंतु उसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष का कार्य उस समय तक प्रशस्त नहीं हो सकता जब तक उपवास के साथ-साथ साधक ब्रह्म चिन्तन में लीन न हो। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि—

विषयाविनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

गीता, अ० 2 श्लो० 59

अर्थात्—निराहार रहने से मनुष्यों के विषय यदि छूट भी जाएँ तो भी वासनाओं का अन्त नहीं होता। परन्तु ब्रह्म का सम्यक् ज्ञान होने पर वासनाएँ छूट भी जाती हैं। इसी बात को गीता के छठे अध्याय में दूसरे ढंग से कहा गया है कि—आदर्श जीवन बनाने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि बहुत ज़्यादा भूखा रहा जाय। उचित यह है कि आहार और विहार का क्रम ऐसा बनाया जाय कि हमारा सारा जीवन ही सदाचार का एक व्रत बन जाय।

कहते हैं कि एक बार महाबली भीमसेन ने वर्ष की चौबीस एकादशियों की कथा महर्षि वेदव्यास से सुनी। भीमसेन अपनी दूसरी कमज़ोरियों को जीतने का प्रयत्न तो करते भी थे, परन्तु निराहार रहकर व्रत करना उन्हें बिलकुल नहीं भाता था। इसलिए उन्होंने व्यासजी से कहा—"मेरे अन्य भाई तो आए दिन कोई न कोई व्रत करते रहते हैं। क्या उनके पुण्य का कोई अंश मुझे नहीं मिल सकता ?" व्यासजी

ने चकित होकर कहा—भीम ! तुम्हारे आशय को मैं समझा नहीं, ज़रा और समझाकर कहो। भीम बोले—प्रभो ! मैं भूखा एक दिन भी नहीं रह सकता। इसलिए मुझे तो आप कोई एक ऐसा व्रत बता दें जिसे मैं वर्ष में केवल एक बार कर लिया करूँ। व्यासजी ने भीम का प्रयोजन समझ लिया और कहा—तुम ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी का व्रत कर लिया करो। इससे तुम्हारा जो अन्य एकादशियों में अन्न खाने का दोष है वह नष्ट हो जायगा। भीम ने प्रसन्न होकर यह मान लिया। और निर्जला एकादशी का व्रत किया। इस एकादशी को इसीलिए भीमसैनी एकादशी भी कहते हैं।

निर्जला एकादशी व्रत अत्यन्त कष्ट-साध्य है। ज्येष्ठ के महीने में दिन बड़े होते हैं और प्यास बहुत सताती है। ऐसी दशा में जल का त्याग करके रहना बड़े संयम का काम है। परन्तु इस दिन नियम-पूर्वक व्रत करना और सामर्थ्य के अनुसार द्रव्य एवं जलयुक्त कलश देने का बड़ा महत्त्व है।

21. कबीर जयन्ती

ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा

हिंदू समाज के मानस पर जिन संतों ने अपने पावन चरित्र और उपदेशों से एक स्थायी प्रभाव अंकित किया है, उनमें महात्मा कबीर को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1455 को उनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि उनकी माता एक विधवा ब्राह्मणी थी, जिसने लोक-लाज के भय से इन्हें काशी के लहरतारा कुंड के निकट फेंक दिया था। नीरू और नीमा नामक एक जुलाहा दम्पति की नज़र इस नवजात बालक पर पड़ी और उन्होंने उसे उठाकर उसका पालन-पोषण किया। कौन जानता था कि इस धरातल पर इस

प्रकार असहाय अवस्था में प्रकट होने वाला बालक पृथ्वी माता का एक जाज्वल्यमान रत्न है जो इस युग के जन जागरण का अग्रदूत बनकर अमर हो जाएगा। आज भी युगावतार कबीर एक आदर्श प्रतीक के रूप में जनता के हृदय-सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। भगवान् बुद्ध के पश्चात् भारत के धार्मिक क्षेत्र में कबीर ने एक ऐसी विचार-धारा को जन्म दिया है जो अब तक बेजोड़ है और जिससे युग प्रवर्तक संत-महात्माओं ने प्रेरणा ले-लेकर अपने-अपने पंथ चलाए हैं। महात्मा गांधी-जैसा युगपुरुष भी उनसे कितना प्रभावित हुआ था यह बात समय-समय पर गांधीजी की लेखनी और व्यवहार द्वारा प्रकट होती रही है।

समाज के अन्दर फैले हुए बाह्याडम्बरों का तीव्रतम विरोध करते हुए महात्मा कबीर ने एकेश्वरवाद को स्थापित किया था और विशुद्ध मानवता के प्रेमी होने के नाते निर्भीक होकर धार्मिक एवं सामाजिक विषमताओं पर उन्होंने निर्भय प्रहार किए थे। वे चाहते थे कि साम्प्रदायिक कटुताओं को दूर हटाकर जन-मानस को प्राञ्जल बनाया जाय, जिससे प्रेम तथा भ्रातृत्व भाव का प्रसार हो और वातावरण में शान्ति और सौम्यता छा जाय। समाज के सभी वर्गों को एकता के सूत्र में बाँधने को उन्होंने न केवल एक राष्ट्रीयता की भावना का बीजारोपण किया बल्कि मानवता के स्तर पर अभिन्नता का साक्षात्कार कराया। परमात्मा में सच्ची लगन और प्राणी-मात्र के साथ निष्कपट व्यवहार ही सत्य धर्म का सार है। इसे कबीर ने प्रत्यक्ष कर दिखाया और इसी धारणा को अपने जीवन का सम्बल बनाया। धर्म के मूल तत्व को गांधीजी ने भी इसी रूप में स्वीकार किया था। हरिजन उद्धार और अहिंसा व्रत का पालन इसी तत्व के क्रियात्मक रूप थे। गांधीजी ने आध्यात्मिक शक्ति को समाज-सेवा के क्षेत्र में सीमित न रखकर राजनैतिक क्षेत्र में भी उसका उपयोग किया और सत्याग्रह का प्रचार करके राजनीति के साथ धर्म का मेल कराया। इस क्षेत्र में जो वे आगे बढ़ सके हैं उसमें कबीर से उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली है। सारांश यह कि कबीर का अपना एक विशिष्ट स्थान है। धार्मिक क्षेत्र में हम उन्हें क्रांति-

कारक विचारक और नैष्ठिक कर्मयोगी के पद पर आरूढ़ पाते हैं। उन्होंने सीधी-सादी भाषा में धर्म के गहन तत्वों को भरा है। अद्वैत की भावना और सूफीमत की छाप उनकी वाणियों में पूरी तरह झलकती है।

ज्यों तिल माँही तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सके तो जागि॥

कुछ लोगों का कहना है कि कबीर कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। हो सकता है कि उनकी दृष्टि से यह ठीक भी हो परन्तु कबीर का यह मत जरूर था कि—

पोथी पढ़ि-पढ़ि सब मुए, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर इसी कोटि के पंडित थे। साधना और आत्मानुभूति के क्षेत्र में वह बड़े-बड़े दिग्गजविद्वानों से भी कहीं आगे हैं। उनका कहना था—

कबिरा सांई पीर है, जो जाने पर पीर।

महात्मा कबीर दिव्य प्रतिभा के धनी थे इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वे जन्मजात जगद्गुरु थे। उनकी प्रच्छन्न प्रतिभा स्वामी रामानन्द का स्पर्श पाकर उसी प्रकार मुखर हो उठी थी, जिस प्रकार पारस को छूकर लोहा सोना बन जाता है। आज सैकड़ों वर्ष बीत गए पर हम कबीर को जन-जीवन में इतना घुसा पाते हैं कि उनको अपने से अलग मानना प्रायः असम्भव-सा प्रतीत होता है। वे राज्य के, धर्म के और समाज के ठेकेदारों के विरोधी थे और शोषित एवं पीड़ित मानव समुदाय के साथी और समर्थक। समाज में परम्पराओं के प्रति जो अंध-निष्ठा प्रचलित थी उसने उन्हें विद्रोह के लिए मजबूर कर दिया था। जो उनकी ज्ञान-अनुभूति की कसौटी पर खरा उतरता था उसका ही वे समर्थन करते थे और उनके लिए अंतः प्रेरणा अनुभूति देती थी वही उन्हें ग्राह्य था। शेष का विरोध वे बड़े तीव्र शब्दों में करते थे।

मानव-समाज के प्रति प्रेम, सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना का पुण्य संदेश लेकर अवनीतल पर अवतरित होने वाले विश्ववन्द्य कबीर की मानव लीला की अंतिम झाँकी भी उन्हीं के अनुरूप भव्य और अनोखी

थी। वे जानते थे कि अंतिम भावना का नहीं बल्कि व्यक्ति का पुजारी शिष्य समुदाय उनके शव के लिए लड़ मरेगा। उन्होंने ऐसा आयोजन कर दिखाया कि जहाँ शव था वहाँ फूलों का एक ढेर रह गया। और शव ग़ायब कर दिया गया। उन फूलों के आधे भाग को लेकर हिन्दुओं ने दाह संस्कार किया और आधे ढेर को मुसलमानों ने दफ़ना दिया।

अन्ध परम्पराओं के कितने विरोधी थे वे, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण उनकी मृत्यु की घटना में निहित है। धार्मिक पुस्तकों में मगहर में मरना निश्चित रूप से निषिद्ध क़रार दिया गया है। कहा जाता है कि मगहर में मरने से निश्चित रूप से गति नहीं होती। किन्तु धार्मिक क्रांति के इस अग्रदूत ने अपनी मृत्यु के लिए मगहर को ही चुना। "जो कबिरा काशी मरै, रामहि कौन निहोर।" यह पंक्ति कबीर की अपनी भावना की द्योतक है।

ऐसे अनोखे मानव को कितना ऊँचा पद दिया उसके देशवासियों ने, इसका सबूत इसी से मिलता है कि ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिवर्ष देश के कोने-कोने में उनकी जयन्ती मनाई जाती है।

22. रथ-यात्रा

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को रथ-यात्रा का पर्व मनाया जाता है। यद्यपि सारे देश में यह उत्सव होता है परन्तु जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा प्रदेश) में विशेष धूमधाम रहती है। क्योंकि इस पर्व का सम्बन्ध जगन्नाथ पुरी से विशेष है।

जगन्नाथ पुरी भारत के प्रधान चार धामों में से एक है। जो उड़ीसा प्रदेश में समुद्र तट पर स्थित है। जगन्नाथजी का मन्दिर

भारतीय शिल्पकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कहा जाता है कि इसका निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।

सबसे बड़े महत्त्व की बात यह है कि देश भर में फैली साम्प्रदायिक कटुता और छुआछूत के विरुद्ध इस तीर्थ की परम्पराओं ने क्रियात्मक रूप से प्रचार किया है। यहाँ के प्रसाद में जातीय बंधनों की मर्यादा का त्याग अनिवार्य है, यही इस तीर्थ की विशेषता रही है। बाद में धर्म प्रचारकों द्वारा डाले नए अनेक प्रकार के संकुचित विचार और अन्धविश्वासों से वह भावना छिन्न-भिन्न हो गई जो मानवता के लिए एक अभिशाप सिद्ध हुई। हमारी संकीर्ण भावना ने हमारे सामाजिक जीवन में आपसी कुटुता का विष घोल दिया। जगन्नाथ धाम में देव प्रतिमाएँ मंदिर में बन्द नहीं रहतीं। वर्ष में एक बार उन्हें बाहर लाया जाता है और रथ में पधराकर नगर-यात्रा कराई जाती है। रथ को खींचने का अधिकार एक चांडाल तक को होता है। प्रस्तर कला के सौन्दर्य के साथ-साथ इस मंदिर की दीवारों पर उन सारे भौतिक जीवन सम्बन्धी कार्यकलापों के चित्र अंकित किये गए हैं जिनमें दैहिक सुख प्राप्त करने का इच्छुक प्राणी निरन्तर बहता रहता है। परन्तु आज तक क्या किसी भी मनुष्य को अपने जीवन में सांसारिक विलास-लालसा से तृप्ति प्राप्त हो सकी है ? क्या अपार धन-सम्पत्ति, विलास और रति सुख आज तक किसी को चिर शान्ति दे सके हैं ? प्रसन्नता हमारे खाने-पीने या ऐश-आराम लेने में नहीं, यह तो आदर्श जीवन जीने से आती है, जिसका जन्म संकुचित विचारों से ऊपर उठकर भगवत्सेवा से ही प्राप्त होता है।

विलास-लालसा की तृप्ति के लिए अर्थोपार्जन के साथ-साथ नाना प्रकार की काम-चेष्टाओं के उत्तरोत्तर बढ़ाते जाने से कहीं भी और कभी भी किसी को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी। केवल आत्मानुभूति से ही चिरशान्ति प्राप्त हो सकती है। इसी संदेश को गर्भ ग्रह में बैठे हुए जगन्नाथ स्वामी जगत् को देते रहते हैं। परन्तु ऊपरी आडम्बरों में फँस जाने के कारण हम उस सन्देश को नहीं सुन पाते। तब अपने रथ पर चलकर जगन्नाथ यात्रा को निकल खड़े होते हैं और जन-

जन को अपना संदेश सुनाने के लिए सारे नगर में यहाँ तक कि आस-पास के ग्रामों में यात्रा कर आते हैं। यही रथ-यात्रा का संदेश है।

आज हम रथ-यात्रा का महोत्सव तो हर जगह मनाते हैं परन्तु उसके साथ श्री जगन्नाथ का जो प्रिय संदेश है उसे नहीं सुन पाते। इसी कारण आपसी कलह और जातीय कटुताओं के अभिशापों से हमारी मुक्ति नहीं हो रही है। समाज को वह अमर संदेश भी कान लगाकर सुनना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष रथ-यात्रा मनाई जाती है जो केवल अब औपचारिक मात्र रह गई है।

23. हरिशयनी एकादशी

आषाढ़ शुक्ला एकादशी

इस तिथि को पद्मनाभा अथवा हरिशयनी एकादशी कहते हैं। इस दिन से चतुर्मास (चौमासे) का आरम्भ होता है। यह चतुर्मास्य का वातावरण एक विचित्र ढंग का होता है। कई प्रकार के संयम-नियम को स्वीकार करने पर ही चौमासा कुशलतापूर्वक बीतता है। क्योंकि कई विषैले तत्वों की सृष्टि इन चार मासों में हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर होते हैं। आने-जाने में कठिनाई होने के कारण ही किसी एक स्थान पर रहकर अध्ययन करने का पुराना रिवाज था।

ब्रह्मांड पुराण में कहा गया है कि प्राचीन काल में किसी मान्धाता नामक राजा ने आज के दिन व्रत रखकर अपने राज्य में अनावृष्टि का दोष दूर कर दिया था। ऐसे छोटे-से साधन से इतने बड़ काम का होना सुनकर हममें से बहुतों को बड़ा आश्चर्य होगा। परन्तु सच तो यह है कि कोई भी साधन कभी छोटा नहीं होता बशर्ते उसे श्रद्धा और आत्मविश्वास के साथ किया जाय। असल में बड़े कामों को पूरा करने

में वह साधन चाहे भले ही छोटे हों परन्तु सबसे बड़ी चीज़ तो हमारे मन का उत्साह है। यह उत्साह यदि मन के भीतर पूरी तरह से भरा हुआ है, तो हम छोटे-छोटे साधनों से भी बड़े से बड़ा काम कर सकते हैं।

जिस समय निराशा के वश होकर हम अपना मानसिक उत्साह खो बैठते हैं तब हमारी सभी शक्तियाँ क्षीण पड़ जाती हैं। उनमें पारस्परिक सहयोग टूट जाता है और प्रतिभा के कुंठित हो जाने के कारण कार्यदक्षता का अंत हो जाता है। इस गत्यवरोध स्थिति को भंग करने के लिए केवल आध्यात्मिक साधनों का ही प्रयोग किया जाता है। उपवास उस दिशा में पहला क़दम है। आत्म-शुद्धि से नया उत्साह, नई हिम्मत पैदा हो जाती है और ऐसे कामों को कर डालने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जिनसे दुनिया चकित हो उठे।

हमारे पुराणों में यह भी कहा गया है कि आज के दिन से चार महीने के लिए सृष्टि के पालनकर्ता भगवान् पृथ्वी तल के नीचे पाताल में चले जाते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशी तक पाताल के राजा बलि के द्वार पर रहते हैं। यह तथ्य तो और भी रहस्यमय है। बात यह है कि वर्षाऋतु ही एक ऐसी ऋतु है जिसमें अनेक प्रकार की नई औषधियाँ पृथ्वी पर जन्म लेती हैं और पुराने वृक्ष वर्षा के जल के साथ अन्य प्रकार के पोषक तत्वों को पृथ्वी से प्राप्त करते हैं। भगवान् की विधायक और पोषक शक्ति को प्राप्त कर पृथ्वी के गर्भ से असंख्य पेड़-पौधे और जड़ी-बूटियाँ फूट निकलती हैं।

अतः सृष्टि के पालनकर्ता द्वारा पृथ्वी के तल के नीचे जाकर विश्राम करने की कल्पना बड़ी मार्मिक है और रहस्यपूर्ण भी। वरन् सृष्टि के पालनहार को विश्राम कहाँ—गीता में भगवान् कृष्ण का कथन है कि—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवापतव्यं वर्त एव च कर्माणि॥

गीता, अ० 3 श्लो० 22

अर्थात्—मेरे (भगवान् के) लिए कोई कर्म करना शेष नहीं है।

फिर भी मैं निरंतर कुछ न कुछ करता ही रहता हूँ। तब उसे विश्राम कहाँ—पृथ्वी के धरातल में भी विश्राम की अवस्था में उसकी क्रिया-प्रक्रिया गतिमान रहती है।

विश्रांम के बारे में हमारे आज के युग-निर्माता राष्ट्रपिता बापूजी ने अपने अनुभवों में एक जगह पर लिखा है कि—"काम करते-करते थककर दूसरा काम शुरू कर देना ही विश्राम है।" (Change of occupation is rest) मालूम होता है कि सृष्टि तत्व की मौलिक छान-बीन के बाद ही महात्माजी में इस अनुभूति का प्रस्फुरण हुआ था। सर्दी और गर्मियों में संसार के सभी काम जिस रूप में चलते हैं, वर्षा ऋतु में उन्हें एक दूसरे ही ढंग से किया जाता है। काम तो कोई रुकता है नहीं बल्कि कुछ काम तो ऐसे होते हैं जो विशेष ऋतु में ही होते हैं। अतएव सृष्टि की प्रक्रिया और कामों में कोई बाधा नहीं पड़ती।

इसे कुछ लोग यदि भगवान् का विश्राम कहें तो गांधीजी की अनुभूति शाश्वत सत्य की ही अनुभूति मानी जायगी। यह बात दूसरी है कि हम अपने आलस्य के कारण उसे अपने जीवन में उतार न सकें। तो देव-शयनी एकादशी से वे सारे सामूहिक कार्य स्थगित कर दिए जाते हैं, जिनके क्रियान्वित करने में दूर-दूर से स्वजन-संबंधियों के लिए एकत्रित होना आवश्यक होता है। वर्षा ऋतु में मार्ग अवरोध होने के कारण जो असुविधाएँ होती हैं इससे उनका आना-जाना रुक जाता है। इन चार मास तक केवल दो ही काम शेष रह जाते हैं—एक तो खेतों पर काम करना, दूसरे, स्वाध्याय करना और उन्हीं के आरम्भ का यह पर्व है।

24. व्यास पूर्णिमा

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा

नमोस्तुते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविंदायत पत्र नेत्र।
येन त्वया भारत तैल पूर्णः
प्रज्ज्वालितो ज्ञानमय प्रदीपः ।।

—महाभारत, आदि पर्व

खिले हुए सुन्दर कमल पुष्प के समान नेत्र वाले, विशाल-बुद्धि व्यास को हमारा प्रणाम है जिन्होंने भारत रूपी तेल भरकर अर्थात् भारत के इतिहास से शक्ति और सम्बल प्राप्त करके—ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित किया।

इसी ज्ञान दीपक के सहारे हमें भारतीय संस्कृति का दर्शन हुआ। आज के दिन उन्हीं महर्षि वेदव्यास की पूजा की जाती है। उनका हमारे देश और जाति पर महान् उपकार है। उन्होंने एक ही दृष्टि से नहीं, अनेक पहलुओं से मानव-जीवन की समस्याओं पर विचार करके अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि आज संसार में जो भी ज्ञान है वह उन्हीं व्यासजी का उच्छिष्ट माना जाता है। यह बात प्रमाद या मोहवश नहीं कही गई। वरन् उनके रचित ग्रंथों का अध्ययन करने से ही, उनके अगाध ज्ञान-भंडार का परिचय मिलेगा। उन्होंने जो कुछ लिखा वह मानव-जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने के लिए है। उनका यह महान् कार्य देव-वरदान के समान सिद्ध हुआ। समूचे देश के भौतिक रूप का उन्हें पूर्ण परिचय था। और एक-एक वस्तु के साथ उनका निकटतम संबंध था। एक-एक सरोवर, कुंड, नदी और झरने की महिमा से उन्होंने देश-वासियों का परिचय कराया। उसका नामकरण किया, और उसका महात्म्य बताया। इतना ही नहीं, व्यास भगवान् ने देश की वंदना

करते हुए जिस रूप में उसका दर्शन हमें कराया वह प्रत्येक भारतीय के लिए वंदनीय है। उन्होंने लिखा है कि :—

समुद्र वसने देवि पर्वत स्तन मंडले।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

समुद्र के वसन (वस्त्र) पहने हुए, पर्वत रूपी स्तन-मंडलों से सुशोभित, विष्णु पत्नी माँ वसुन्धरा ! मैं जो तुम्हारे शरीर को अपने पाँवों से स्पर्श करता हूँ तो मेरे इस पाद-स्पर्श को क्षमा करना।

भूमि के साथ माँ का संबंध स्थापित करने की पुण्य-कल्पना में भारत के बच्चे-बच्चे के समस्त जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। मातृ-भूमि के स्तन-मंडलों से प्रवाहित होने वाली अनेक सरिताएँ माँ के दूध की धारा के समान हैं जिससे राष्ट्र को जीवन मिलता है, बल मिलता है। यह भावना जब देश के जन-जन में व्याप्त हो जाती है तभी राष्ट्र का कल्पवृक्ष हरियाता है। देश-प्रेम के भाव जाग पड़ते हैं और उसपर निछावर होने को, मर मिटने को ही हम अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। इस स्थिति को ही हम राष्ट्र का जन-जागरण कहते हैं। उस समय जो भी उत्तम विचार-धारा धरती के ऊपर पुण्य-भावनाएँ बरसाकर जन-मानस को सींचती है, उसी मेघ जल को पीकर प्रजा नई-नई प्रेरणा लेकर आगे बढ़ती है।

इस भुवन का आश्रय लेकर हमारे पैर लड़खड़ाएँ नहीं, हमारे पैरों में कहीं ठोकर न लगे, हम कहीं से उत्क्रांत न हों, ऐसे ज्ञान से जन-जन को परिचित कराना ही युग-पुरुष की देन होती है। उसे ही सच्चे रूप में गुरु कहा जा सकता है। एतरेय ब्राह्मण के चरैवेति गान में कहा गया है—

कलिः शयानो जयति संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।

अर्थात्—जनता के पराक्रम की चार अवस्थाएँ होती हैं—कलियुग द्वापर-त्रेता और सत्ययुग। जनता का सोया हुआ रूप कलियुग है। अंगड़ाई लेता हुआ या बैठने की चेष्टा करता हुआ रूप द्वापर है। खड़ा हुआ रूप त्रेता है और चलता हुआ रूप सतयुग है।

जन साधारण को उसके सोते हुए रूप से चलते हुए रूप तक पहुँचाने के लिए जिस महापुरुष न ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्ज्वलित किया उसकी वन्दना किन शब्दों में की जाय ?

आज व्यासजी का पार्थिव रूप हमारे सामने नहीं है इसलिए समाज ने अपने-अपने गुरुओं में व्यास को व्याप्त मानकर, उनको उसी रूप में देखकर जयघोष किया।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरु पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमा का त्यौहार अवश्य ही मनाने के योग्य है। परन्तु अंध-विश्वासों के साथ नहीं। भक्ति और श्रद्धा के साथ। व्यास महिमा और उनके रचे हुए ग्रंथ का पाठ करके उनके विचारों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और उनके उपदेशों पर आचरण करने की निष्ठा का वर माँगना चाहिए।

25. हरियाली तीज

श्रावण शुक्ला तृतीया

भारत कृषि-प्रधान देश है। भारतवासियों ने वर्षाऋतु को जीवन प्रदान करने वाली ऋतु माना है। श्रावण और भाद्रपद वर्षा के मास हैं। वर्षा की प्रत्येक फुहार पर आनन्दोत्सव मनाए जाते हैं और बच्चों से लेकर बूढ़े तक आनन्द में विभोर हो जाते हैं।

श्रावण शुक्ला तृतीया को हरियाली तीज इसलिए कहते हैं कि आज के दिन कुमारी कन्याएँ हरी दूब (दूर्वा) लेकर घर-घर जाती हैं और गोधन को, गौवों को जीवनदान करने वाली दूर्वा को, सौभाग्य और सदाशयता के प्रतीक के रूप में पहुँचाकर प्रेम और सौहार्द्र के

बंधनों को सुदृढ़ करती हैं। लोग इन कुमारिकाओं के दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं।

वर्षा के कारण चारों ओर हरियाली छाई हुई होती है। हवा शीतल होती है। प्रायः आकाश भी निर्मल होता है। ऐसे अवसर पर झूला झूलने में भी बड़ा आनन्द आता है। गाँवों में बड़े पेड़ों की डाल पर झूला डाला जाता है। बालिकाएँ तथा युवतियाँ टोली बनाकर झूलने का आनन्द लेती हैं और 'अमवाँ' की डाल पर पड़े झूले पर बड़ी-बड़ी पेंगे लेकर कोयल को मात करने वाले पंचम सुरों में मल्हार रागिनी से वातावरण को मुखरित कर देती हैं।

असल में यह खेल-कूद से भरा हुआ स्वच्छन्द जीवन ही तो हमारे जातीय जीवन का सर्वस्व है। भारतीय संस्कृति ने उत्सवों को इसी आन्तरिक उल्लास से अलंकृत किया है। भारतीय जन-जीवन आनन्द और उल्लास से स्पंदित रहता आया है।

26. नाग पंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी को नाग पंचमी कहते हैं। आज के दिन नागों की पूजा की जाती है। गाँवों में घरों के द्वार पर गोबर से नाग की मूर्तियाँ लिखी जाती हैं। महाराष्ट्र प्रदेश में जंगल से चिकनी मिट्टी लाकर उसका नाग बनाते हैं और घुंघचियों से उनकी आँख तथा दूर्वा दल लगाकर उसकी दो जीभ बनाते हैं और तब कुल परम्परा के अनुसार उनका पूजन किया जाता है। पूजन में सुगन्धित पुष्प और उपलब्ध होने पर कमल लिया जाता है। नैवेद्य में दूध अथवा खीर सर्पों को अर्पित की जाती है।

नाग पंचमी पर महाभारत में बड़ा रोचक वर्णन मिलता है।

भारत के हर त्यौहार के पीछे कोई न कोई कथा तो जुड़ी ही है। लेकिन जिन कारणों से नाग-पूजा सारे भारत का त्यौहार बन गया उसके बारे में इतिहास से नई जानकारी प्राप्त होती है।

एक बार आखेट के लिए गये हुए महाराज परीक्षित ने समाधिस्थ श्रृंगी ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। इस पर उनके पुत्र ने राजा को श्राप दे दिया कि "जो सर्प तुमने ध्यान में बैठे हुए मेरे पिता के गले में डाला है वही आज के सातवें दिन जीवित होकर तुम्हें डसेगा।" सर्प के काटने से महाराज परीक्षित की सातवें दिन मृत्यु हो गई। इस पर नाग जाति से बदला लेने के लिए परीक्षित के पुत्र महाराज जन्मेजय ने एक बहुत बड़ा सर्प-यज्ञ किया। दूर-दूर से आकर बड़े-बड़े सर्प उस प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि में भस्म होने लगे। उसी समय आस्तीक ऋषि ने राजा के पास जाकर कहा—राजन्! बदला लेने की बात आर्य संस्कृति के विरुद्ध है। भारतीय संस्कृति तो क्षमा, दया और प्रेम का आधार लेकर बढ़ती है। आपकी सुलगाई हुई यज्ञाग्नि में नाग जाति के रूप में भारतीय संस्कृति की मर्यादा भस्म हो रही है। तब राजा ने अपने किये हुए यज्ञ पर पश्चात्ताप किया और यज्ञ समाप्त कर दिया गया। महर्षि आस्तीक के उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने घृणा को प्रेम के रूप में बदलकर अपनी उदारता का परिचय दिया और सारे देश में नाग वंश का आदर हो यह राजाज्ञा प्रसारित की।

एक और भी महत्त्व की बात है कि आस्तीक ऋषि के पिता आर्य और माता नाग जाति की थी। इसलिए दोनों पक्ष के लोगों पर उनका प्रभाव था। नाग जाति के लोग बड़े वीर, कला प्रेमी, वस्तुकला के विशेषज्ञ, नगर रचना में कुशल और विद्वान होते थे। वर्षों तक वे आर्यों के साथ घुल मिलकर रह चुके थे। यहाँ तक कि उनमें अंतर्जातीय विवाह भी होने लगे थे। परन्तु तक्षक के दुष्कर्म के फलस्वरूप नागों और आर्यों में आपसी फूट का बीज पड़ गया था। जिसका आस्तीक ऋषि के प्रयत्नों से अन्त हुआ। इस आपसी मेलजोल की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए उनका एक त्यौहार आर्यों के महोत्सवों में नाग-पूजा के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

हमारे गाँवों में आज के त्यौहार के सम्बन्ध में एक लोक-कथा प्रचलित है कि एक किसान अपने परिवार के सहित मणिपुर नामक ग्राम में रहता था। उसके दो पुत्र और एक कन्या थी। एक दिन जब वह खेत में हल चला रहा था तो फाल में बिधकर तीन सर्प के बच्चे मर गए। उनकी माता पहले तो बड़ी दुखी हुई। बाद में उसने किसान से बदला लेने का निश्चय किया। रात को उसने किसान, उसकी स्त्री और दो बच्चों को डस लिया। बेचारे सब के सब मर गए। दूसरे दिन वह नागिन, उनकी कन्या को डसने के लिए गई। कन्या ने घर में सर्पिणी को देखकर उसके सामने दूध का कटोरा भरकर रख दिया और अपने पिता के अपराध के लिए क्षमा-याचना की। वह दिन नाग पंचमी का था। इसलिए नागिन ने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया और उससे वर माँगने को कहा—लड़की ने यही वर माँगा कि उसके माता-पिता और भाई जीवित हो जाएँ। नागिन अपने काटे हुए व्यक्तियों के शरीर से अपना ज़हर चूसकर वापस चली गई। उसी दिन से नाग-पूजा प्रचलित हुई।

इतिहास अथवा किंवदंतियों में कुछ भी कथाएँ लिखी गई हों परन्तु सत्य तो यह है कि सर्प तो बन में रहने वाले जीव हैं। वर्षा होने पर उनके बिलों में पानी भर जाता है, तब वे आश्रय पाने के लिए हमारे घरों के पास आकर बैठ जाते हैं। क्षण भर के लिए ही क्यों न हो हमारा आश्रय चाहने वाले वे हमारे अतिथि ही होते हैं। वैसे वे स्वभावतः बस्तियों से दूर रहने वाले जीव हैं। उन्हें जंगल और एकान्त ही प्रिय है। पवित्रता, स्वच्छता, सुगन्धि और सुन्दर गाने उन्हें अच्छे लगते हैं। फूलों और सुगन्धित पेड़ों से वह लिपटे रहते हैं और अपनी ओर से किसी को काटते भी नहीं। परन्तु सताए जाने पर जब काटते हैं तो उनका दंश अचूक होता है। चूहा उनका भोजन है। जिसे खाकर वे हमारे खेतों की रक्षा करते हैं। उनके इस उपकार के बदले में हम वर्ष में एक दिन उन्हें दूध पिलाकर अपनी कृतज्ञता का परिचय दें यही पारस्परिक प्रेम की महत्ता और भारतीय संस्कृति की व्यापक दृष्टि की देन है।

27. तुलसी जयन्ती

श्रावण शुक्ला सप्तमी

सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस जोय।
गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय॥
—रहीम खानखाना

मुगल सल्तनत के वज़ीरे आज़म, अब्दुल रहीम खानखाना ने उपरोक्त दोहे में जिस पावन भावना को चित्रित किया है, उससे तुलसी के प्रति ही नहीं बल्कि उस श्रद्धा के प्रति श्रद्धांजलि है जो आज इस देश के घर-घर में संतों के प्रति उमड़ती हुई दिखाई दे रही है। एक ग़रीब किसान की झोंपड़ी से लेकर बड़ी से बड़ी राज्यभवनों की प्राचीरों तक में उस संत की लिखी हुई चौपाइयों की गूँज सुनाई देती है। तब इस दोहे का रहस्य सहसा ही हृदय पर अंकित हो उठता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का आविर्भाव जिस समय इस देश में हुआ, वह हिन्दू जाति का संकट काल था। परतंत्रता के साथ-साथ विषमता और साम्प्रदायिक कटुता हिन्दू समाज को बुरी तरह घेरे हुए थी। कोई राह नहीं सूझ रही थी। गोस्वामीजी ने राम-भक्ति का—"कल्याणानाम् निधानम कलिमलमथनं पावनम् पावनानाम्।" रूप दिखाकर समाज को मिटने से बचाया। साथ ही जन-जन की भाषा में 'श्रीरामचरितमानम' रचकर मृत-प्राय हिन्दू जाति को नव जीवन प्रदान किया। तुलसी की देन से राम-भक्ति का पीयूषपान करके मुर्दा समाज फिर से जी उठा। गोस्वामीजी ने समाज के हृदय में पैठकर राम नाम की महिमा का मंत्र जागृत किया। कुछ लोगों का मत है कि—स्वयं आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने तुलसी के रूप में अवतरित होकर बोलचाल की भाषा में अपनी रामायण का परिमार्जित रूप 'रामचरितमानस' के नाम से प्रकट किया।

तुलसीदासजी के जन्म स्थान के बारे में दो भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोग तुलसीदासजी का जन्म स्थान सोरों को बताते हैं और कुछ

बाँदा ज़िले के राजापुर ग्राम को। किंतु पुराण इस पक्ष में है कि उनका आविर्भाव वि० सं० 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी को बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में एक सरयू पारीण ब्राह्मण के घर में हुआ।

आपके पिता का नाम पं० आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। अभुक्त मूल में जन्म होने के कारण माता-पिता ने उन्हें अपने से अलग कर दिया था। बचपन में उनका नाम रामबोला था। वि० सं 1583 में उनका विवाह रत्नावलि नाम की एक रूपवती विदुषी बालिका के साथ हुआ। स्त्री पर उनकी बड़ी गहरी आसक्ति थी। एक दिन जब वह बिना कुछ कहे-सुने अपने नैहर चली गई तब आप भी पीछे-पीछे वहीं जा पहुँचे। स्त्री को उनकी इस आसक्ति पर अत्यन्त खेद हुआ। उस समय उसने अपने पति को सामने देखकर कहा—

हाड़चाम की देह मम, तापर इतनी प्रीति।
तसु आधो जो राम पर, होत मिटत भव-भीति ।।

आक्षेप तीखा था और तुलसी-जैसे भावुक के लिए असह्य। उसके वचनों से तुलसी का हृदय तिलमिला उठा। आप उसी क्षण घर छोड़-कर निकल खड़े हुए और प्रयाग आकर विरक्त हो गए। चित्रकूट में मंदाकिनी गंगा के तीर पर स्नान करने के बाद जब वह चंदन घिस रहे थे उस समय श्री राम और लक्ष्मण किशोर अवस्था के कुमारों के रूप में प्रकट हुए और तुलसी से चंदन लगाने को कहा। तुलसी ने उन्हें सामान्य राजकुमार समझकर चंदन तो लगा दिया परन्तु उसी समय एक वृक्ष पर बैठे हुए तुलसी के इष्टदेव श्री महावीरजी ने पुकारकर कहा—

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर ।।

तुलसी की अंतरात्मा यह सुनकर चिहुक उठी। उन्होंने उठकर प्रभु के चरण पकड़ने चाहे परन्तु वह तो अन्तर्धान हो चुके थे। उस दिन से तुलसी, तुलसीदास बन गए। सभी तीर्थों में भ्रमण करते हुए वे अयोध्या पहुँचे और संवत् 1631 की चैत्र शुक्ला नवमी को मंगलवार

के दिन श्री हनुमानजी की आज्ञा और प्रेरणा से 'श्री रामचरितमानस' को लिखना आरम्भ किया। दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिन में उन्होंने उस ग्रन्थ को पूरा किया। कहते हैं कि ग्रंथ पूरा होने पर हनुमान जी ने पुनः प्रकट होकर उसे सुना और तुलसीदासजी को आशीर्वाद दिया कि यह कृति उनकी कीर्ति को अमर कर देगी।

रामायण का बालकांड अयोध्या में पूरा करके वह भगवान् विश्वनाथ की नगरी काशी चले गए। इसलिए बालकाण्ड से आगे की कथा काशी में असीघाट पर एक झोंपड़ी में रहते हुए उन्होंने पूरी की। उनकी रचनाएँ इतनी लोक-प्रिय हुईं कि जो कुछ वह लिखते थे वह दो ही एक दिन में लोगों के कंठ स्वर में गूँजने लगता था। भाषा में लिखे इन दोहे और चौपाइयों में रामकथा के पावन गीतों का यह व्यापक प्रचार देखकर संस्कृत भाषा के कुछ ईर्ष्यालु पंडितों ने जब सुना तो वे लोग मिलकर तुलसी और उनके रचे हुए 'रामचरितमानस' ग्रंथ को ही नष्ट कर देने का उपाय सोचने लगे।

एक दिन ऐसी ही दुष्ट प्रकृति के लोग गोस्वामी तुलसीदासजी की कुटिया में अर्द्ध रात्रि के समय रामायण को चुराकर ले जाने के अभिप्राय से गए तो देखा कि श्याम और गौर रंग के दो कुमार हाथ में धनुष-बाण लिये हुए वहाँ पहरा दे रहे हैं। उन्हें देखकर पहले तो वे छिप गए, बाद में अवसर ताककर उन्होंने रामायण को चुराकर लेजाने की घात लगाई। कहते हैं कि ज्योंही उन चोरों ने रामायण में हाथ लगाया वैसे ही रुद्ररूप में भगवान् शंकर ने प्रकट होकर अपने त्रिशूल से उन्हें भयभीत करके भगा दिया। और चौकी पर रखी हुई रामायण की पोथी पर "सत्यं शिवं सुन्दरम्" लिखकर अंतर्धान हो गए।

'मानस' वास्तव में सत्य, शिव और सुन्दर है। हिंदू समाज के लिए देव-वरदान के समान है। आज कदाचित् ही कोई हिंदू सद्-गृहस्थी ऐसा होगा जो रामायण का पाठ न करता हो। वह हमारा एक अलौकिक धर्म ग्रंथ बन गया है। इसके नित्य पाठ से न जाने कितने ही बिगड़े हुए लोग सुधरे हैं, कितनों को ही उसने मोक्ष का मार्ग दिखाया है और कितनों को भगवान् से मिलाया है।

126 वर्ष की अवस्थामें संवत् 1680 की श्रावण शुक्ला सप्तमी को ही गोस्वामी तुलसीदास ने असीघाट पर अपना पार्थिव शरीर छोड़कर साकेत लोक को प्रयाण किया ।

28. रक्षा-बन्धन

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के त्यौहार का रूप भारतीय संस्कृति की व्यवस्था में बिलकुल निराला है। ज्ञानोपार्जन के लिए कृत संकल्प, वीतरागी पुरुष समाज को नेह के बंधन में बाँध, घर में ही रहने को, आज के दिन बहनें मज़बूर कर देती हैं। ज्ञान के साथ-साथ कर्म की उपासना का सबक, भारत की देवियाँ ही देती हैं। पुरुषों का कर्त्तव्य केवल ज्ञानार्जन ही नहीं है ; देश, समाज तथा राष्ट्र की रक्षा का दायित्व भी उनपर है। साथ ही जिन खेतों में बीज डालकर उन्होंने यज्ञ और हवन करके वर्षा का आह्वान किया वे खेत लहलहा उठे हैं और कुछ ही दिनों में सोना उगलेंगे, उस समय अकेली अबलाएँ क्या करेंगी ? क्या वे माँ धरित्री के जीवनदायी अन्यतम उपहार को बटोर-कर घरों में भरने का काम निभा सकेंगी। राष्ट्र की जीवन रक्षा का वह महान् कार्य तो समाज के दोनों अंगों—स्त्री और पुरुष—को मिल-जुलकर करना है और फिर शरदागम पर यह भी तो आशंका बनी रहती है कि कहीं दूसरे राज्यों की सेनाएँ हमला न कर दें। उन्हें नव-रात्र पर माँ शक्ति का आह्वान करके हथियारों को सजाने के साथ ही अन्य बहुत-से काम पड़े हैं संसार में करने को। संसार यदि ज्ञान भूमि है तो वह कर्म भूमि भी है। केवल ज्ञानोपार्जन मात्र से तो संसार चलता नहीं और न ज्ञान मार्ग को विसारकर केवल कर्म मार्ग को अपनाने से भव सागर से निस्तार हो सकता है। भारत के ऋषियों ने कभी

एकांगी चिन्तन नहीं किया, समन्वय और संतुलन उनके जीवन का लक्ष्य रहा है।

आर्यों को द्विज भी कहा गया है। द्विज शब्द से तात्पर्य द्विजन्म से है। अर्थात् एक जन्म तो प्राकृतिक रूप से जो माता के गर्भ से होता है तथा दूसरा और वास्तविक जन्म उस समय होता है जब उसे भारतीय राष्ट्र का नागरिक होने के लिए दीक्षित किया जाता है अर्थात् जब कि उसका उपनयन संस्कार होता है और वेदाध्ययन के लिए गुरु के आश्रम में प्रवेश कराया जाता है। उस समय जनेऊ के तीन तारों में जो ब्रह्म-गांठ बाँधी जाती है वह अज्ञानरूपी गांठ को सुलझाने के प्रण को याद दिलाने के लिए गले में पड़ी ब्रह्म फाँस है और यह फाँस गले से उस समय ही कटती है जब साधक ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार प्रति वर्ष जन्म की तिथि पर प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना जन्मोत्सव मनाया करता है उसी प्रकार द्विजों के लिए उपनयन धारण करके दूसरा जन्म प्राप्त करने वाले संस्कार को पुण्य-स्मृति के रूप में चिर-स्थायी बनाए रखने के लिए श्रावणी पूर्णिमा का दिन निश्चित किया गया है। इस दिन सामूहिक रूप से द्विज मात्र नया जनेऊ धारण करते हैं, और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के अपने प्रण को दोहराते हैं। यह पुनीत कार्य नदी या जलाशय के किनारे अथवा बाग़-बगीचे में या जंगल में सम्पन्न होता है। इसे उपाकर्म संस्कार कहते हैं।

जिस समय इस संस्कार से युक्त होकर व्यक्ति अपने घर लौटता है तो आरती का थाल सजाए बहन-बेटियाँ स्वागत में आँख बिछाए घर पर तैयार मिलती हैं। उत्सव की तैयारी में नाना प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। उनकी भीनी-भीनी सुगंध से घर भरा हुआ होता है। थालों में अनेक प्रकार के मिष्ठान्न, फल तथा पुष्प सजाये हुए बहनें अपने भाइयों को शुद्ध आसन पर बिठला उसके दाहिने हाथ में रक्षा का डोरा बाँधती हैं। उसके कच्चे धागे में जो मज़बूती रहती है वह लौह-ज़ंजीरों में भी नहीं पाई जाती। क्योंकि यह भावनात्मक बंधन है जिसमें गली-मोहल्ले के चाचा तथा गाँव-गोत्र के भाई-भतीजों को बाँधना मुश्किल नहीं। जब स्वयं भगवान् भी बँधे हुए अपने भक्तों के

पास चले आते हैं। इसे ही प्रेम की डोर कहते हैं।

रक्षा के इस कच्चे धागे के बंधन में दोहरी शक्ति होती है। बहन भाई को अपने प्रेमपूर्ण आशीर्वाद के कवच से मंडित करती है, ताकि वह संसार में रहकर और सांसारिक कृत्य करते हुए भी आध्यात्मिकता की साधना से विचलित न हो और नैष्ठिक जीवन बिताने में समर्थ हो सके। दूसरी ओर यदि बहन के परिवार पर कोई संकट आवे तो भाई के नाते वह उस संकट में उसकी सहायता को सदा प्रस्तुत रहे।

सारांश यह कि श्रावणी पूर्णिमा के दिन दो त्यौहारों का समन्वय किया गया है—एक आध्यात्मिक और दूसरा आधिभौतिक। श्रवणी उपाकर्म और रक्षाबंधन की संतुलित समन्वय की रीति को अपनाकर ही हिन्दू-समाज अब तक जीवित रहा है।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि रक्षा-बंधन के द्वारा विदेशी और विधर्मियों को भी प्रेम की डोर में बाँधा गया है। जो लोग दूसरों को या अपने से कमज़ोरों को सताते रहने में ही अपना बड़प्पन मानते हैं ऐसे लोगों को समाज की हितचिन्ता का भार सौंपना भी इस त्यौहार का एक उद्देश्य बन गया था। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में इस प्रथा की प्रतिष्ठा को पुन: संस्थापित किया जाय।

भारतीय त्यौहारों की यह भी विशेषता रही है कि पुरानी संस्कृति को उन्होंने जीवित रखा है। इस युग के मानव से यह आशा की जाती है कि वह नए से नए विचारों को लेकर आगे बढ़े। नए से नए क्षेत्रों में प्रगति की राह खोले। समूचे ज्ञान का संग्रह करके समाज का ढाँचा तैयार करे। हमारी संस्कृति जड़ नहीं है, वह चैतन्य है और जड़ को भी चेतन बनाना उसका लक्ष्य है। इस संस्कृति से यदि प्रेरणा लेकर वे आगे बढ़ें तो उन्हें बना बनाया मार्ग आगे बढ़ने को मिलेगा।

राष्ट्रपिता गांधीजी को ही लीजिए। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें उन्होंने बुद्धि का दीप लेकर प्रवेश न किया हो। राजनीति में तो वह रोज़ नए से नए प्रयोग करते ही थे। परन्तु उद्योग-धंधे, राष्ट्रीय-शिक्षण, समाज-सुधार, स्वास्थ्य, आहार आदि के क्षेत्र में भी उन्होंने अनेकानेक सफल प्रयोग किए। इन प्रयोगों का आधार सत्य और

अहिंसा था। वे विचारशील व्यक्ति थे ही—आस्तिक और श्रद्धावान भी थे। शुद्ध विचारों के साथ उन्होंने हर कार्य को आगे बढ़ाया और बड़ी दृढ़ता से उसे पार पहुँचाया। इसी तरह प्रत्येक भारतीय संस्कृति के मानने वाले व्यक्ति का यह फर्ज हो जाता है कि वह युग के साथ चले और निरन्तर आगे बढ़ते रहने का शुभ संकल्प करे।

पुराने युग की भाँति आज भी किसी नदी में खड़े होकर पंचगव्य प्राशन से शरीर और मन की शुद्धि करके ऋषि-पूजन करना ही उपाकर्म की क्रिया है। ऋषि के अर्थ हैं विचारक। विचारकों की बात का आदर करना ही ऋषि-पूजन है। आज के युग में विचार और विचारकों की आवश्यकता का अनुभव तो सब करते हैं परन्तु अपने-अपने स्वार्थ के कारण न कोई आदरपूर्वक उनकी बातें ठीक से सुनता ही है और न व्यवहार में लाता है। इसलिए हमें ऐसे योग्य विचारकों का आदर करना सीखना चाहिए, उनकी बातों पर ध्यान देना और आगे प्रगति करने के लिए उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। यही रक्षा-बन्धन, उपाकर्म और ऋषि-पूजन के इस महापर्व का संदेश है। शिष्य और गुरु दोनों ही एक साथ सूर्य के सम्मुख मुख करके हाथ जोड़कर यह संकल्प करें—

सहनाववतु सहनो भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

29. हल षष्ठी

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी को यह पर्व होता है। इसी दिन लोक नायक श्री कृष्ण के बड़े भाई श्री बलरामजी का जन्म हुआ था। उनका प्रधान आयुध हल और मूसल था। आज के दिन उसी हल और मूसल की

पूजा विशेष रूप से होती है। भारतवर्ष तो गाँवों का देश है। हमारे गाँवों की संख्या पाँच लाख बासठ हजार है। देश की 83 प्रतिशत आबादी इन गाँवों में रहती है और उसका प्रधान व्यवसाय है खेती। जिसका मूलभूत यन्त्र हल है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि हमारे प्राणों का आधार यह हल ही है और सारे जीवन को शक्तिवान बनाने का प्रधान साधन भी यही है।

हल और मूसल के पूजन से तात्पर्य कृषि के यन्त्रायुधों की साज-संभार है। देश की वर्तमान परिस्थिति में तो इस पर्व को विशेष उत्साह के साथ मनाया जाना चाहिए। हमें ऐसे यन्त्र-आयुधों का आविष्कार करना चाहिए जिनसे कृषि की उन्नति हो। आज हमारे देश में अन्न की कमी है। प्रतिवर्ष अन्य देशों से अन्न मँगाकर हमें उस कमी को पूरा करना पड़ता है। जो देश कभी धन-धान्य से परिपूर्ण था, आज उसकी यह शोचनीय दशा देखकर चित्त द्रवित हो जाता है। परन्तु सच तो यह है कि इस अवस्था का मूल कारण हल की प्रतिष्ठा को विस्मरण कर देना है। किसान की प्रतिष्ठा बड़ी होनी चाहिए। उसका परिश्रम महान् है। अपनी सेवा का प्रत्येक फल वह समाज की भेंट चढ़ाता है। वह महान् कर्मयोगी है। सारा राष्ट्र कृषि से सम्बन्धित यंत्रायुधों की साज-सम्हार से यह सिद्ध कर देता है कि कृषि व्यवसाय हेय नहीं वरन् वंदनीय है।

उस महान् उपयोगी आयुध हल और उसे धारण करने वाले हलधर की प्रत्येक घर, गाँव और समूचे देश में प्रतिष्ठा बढ़े इसलिए यह त्यौहार हमारे यहाँ राष्ट्रीय पर्व के समान मनाया जाता रहा है।

30. जन्माष्टमी

भाद्रपद कृष्णा अष्टमी

भाद्रपद कृष्णा अष्टमी की रात्रि को बारह बजे मथुरा के कारागार में महामना वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। यह तिथि उसी शुभ घड़ी की याद दिलाती है। और सारे देश में बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। आज दिन-भर उपवास रखकर रात्रि को बारह बजे जन्मोत्सव की झाँकी देखकर ही लोग भोजन करते हैं।

आस्तिकों की धारणा के अनुसार इस सृष्टि के पालन करने वाले भगवान् विष्णु के अनेक अवतार हुए हैं। कृष्णावतार उन सबसे मुख्य माना जाता है। जन्म के समय में ही उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय अपनी माता देवकी को दे दिया था। वह समय देश के लिए बड़े संकट का था। उस समय मथुरा में अत्याचारी कंस का राज्य था। उसने देवर्षि नारद से यह सुनकर कि देवकी के गर्भ का आठवाँ बालक तेरा बध करेगा—देवकी को उसके पति वसुदेव समेत कारागृह में डाल दिया था और एक-एक करके उनके सात बच्चों को जन्म लेते ही मार चुका था। आठवें बालक श्री कृष्ण थे। देवकी और वसुदेव के इस संकट से गोकुल के गणराज्याधिपति नन्द बाबा और उनकी पत्नी यशोदादेवी बड़े दुःखी थे। उन्होंने इस दुःखी परिवार की सहायता करने का निश्चय करके इस आठवें बालक की रक्षा करने का उपाय रचा। उपाय की सफलता का मुख्य कारण यह था कि देवकी की गर्भावस्था के काल में यशोदा भी गर्भवती थी। उन्होंने देवकी के आठवें शिशु की प्राण-रक्षा के लिए अपने बालक की बलि देने का निश्चय किया। दैवी विधान के अनुसार देवकी के गर्भ से जिस समय श्री कृष्ण ने जन्म लिया, ठीक उसी समय, माता यशोदा के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। पूर्व निश्चय के अनुसार महात्मा वसुदेव चोरी से कारागृह से निकलकर गोकुल गए और अपने नवजात बालक

को नन्द के यहाँ छोड़कर यशोदा की कन्या को उठा लाए। कानों-कान इसकी किसी को खबर भी न हुई कि देवकी के बच्चा पैदा हुआ। किन्तु उनके लौट आने पर कंस को यह सूचना मिली। उसने कारागार में आकर देवकी के हाथ से नवजात कन्या को छीनकर पृथ्वी पर दे मारा। वह कन्या कोई सामान्य कन्या तो थी नहीं। साक्षात् भगवान् को योगमाया थी। उसने कंस के हाथ से छूटते ही आकाश में स्थिर होकर कहा, मूर्ख ! जिस क्षण-भंगुर शरीर को मृत्यु से बचाने के लिए तू इतने बालकों की हत्या से अपने हाथ रंग चुका है, उस शरीर को नष्ट करने वाला पैदा होकर अन्यत्र जा चुका है। वह जल्दी ही तुझे तेरे पापों का दण्ड देगा।

यह कहकर वह कन्या अंतर्धान हो गई। कंस इस आकाशवाणी को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसके अत्याचार बजाय कम होने के पराकाष्ठा की सीमा तक पहुँचने लगे। जिसके फलस्वरूप वह सभी नवजात शिशुओं की हत्या करने पर उतारू हो गया। उसने और उसके सेवकों ने चारों ओर निरपराध बच्चों की हत्याएँ आरम्भ कर दीं, जिससे जनसाधारण में त्राहि-त्राहि मच गई। जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तब रक्षित क्या करे ?

परन्तु जिसकी कोई नहीं सुनता उसकी भगवान् सुनता है। अंधे, लूले, लंगड़े, अपाहिज यहाँ तक कि भूत-प्रेत और पिशाच तथा बड़े-बड़े विषधर सर्प भी आशुतोष भगवान् शिव का आश्रय पाकर निर्भय हो जाते हैं। भगवान् विष्णु तो दीनानाथ कहलाते ही हैं। श्रीकृष्ण के रूप में प्रगट होकर तो उन्होंने यह बात पूरी तरह सिद्ध ही कर दी कि वह दीन-दुखियों के सच्चे सेवक हैं। राम के रूप में—हमने उनके दर्शन मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में एक आदर्श नरेश की भाँति किए थे किंतु कृष्ण के रूप में तो वह बिलकुल दीनबन्धु होकर मिले।

क्रूर कंस के अत्याचारों से त्रस्त जनता की करुण पुकार से खिचकर उसकी रक्षार्थ ही कृष्णावतार हुआ, ऐसा दृढ़ विश्वास प्रत्येक भारतीय को है। श्रीकृष्ण ने बड़े-बड़े नृशंस शासकों का मद चूर्ण किया। बड़े-बड़े शक्तिशाली चक्रवर्ती सम्राट् उनके आगे नतमस्तक हुए परन्तु वे

स्वयं कभी राजा नहीं बने। उनका जीवन—मृतकों में जीवन फूँकने और दबे हुओं को ऊँचा उठाने में बीता। बालपन में कंस के विरुद्ध ब्रज के ग्रामीणों में राष्ट्रीय भावना प्रबल करने और गणराज्यों का संगठन करने का महान् कार्य किया। ग्वालों के दल में सहयोग और संगठन सबल करते हुए उन्होंने ऐसे-ऐसे काम कर डाले कि लोगों की उँगली मुँह में दबी रह गई। उन्होंने जिस मानवी शक्ति को संगठित किया उसने प्रकृति तक से लोहा लेकर विजय पाई।

ब्रज के चौरासी कोस की भूमि प्रतिवर्ष जल-मग्न हो जाती थी। जननायक श्रीकृष्ण के नेतृत्व में ब्रज के ग्वालों और गोपियों ने बाँध बाँधा और भयंकर जल-प्रलय से छुटकारा पाया। देवताओं का राजा इन्द्र भी उनके इस कार्य से लज्जित हुआ और उसे मुँह की खानी पड़ी। ब्रजवासियों के श्रमदान का प्रतीक गोवर्धन आज भी श्रीकृष्ण के संगठन की क्षमता की विजय दुंदुभि बजा रहा है।

जन-नायक कृष्ण के दर्शन हमें अनेक रूपों में होते हैं, अत्याचारियों से लोहा लेने वाले ग्वाल टोली के नेता के रूप में—अल्हड़ गोपियों की भावनात्मक सरलता का उपयोगकर खेल ही खेल में उन्हें सामाजिक तत्त्वों की महानता समझाकर सुसंस्कृत बनाने वाले योगिराज के रूप में—अत्याचारों के विरुद्ध लोगों की आवाज़ बुलंदकर जन-मानस को क्रांतिकारी विचारों से ओतप्रोत करने की अपूर्व क्षमता रखने वाले संगठक के रूप में—धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जूठन उठाने वाले के रूप में—दुष्ट दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने के लिए चरण चाँपने वाले नंदा नाई के रूप में—निष्क्रिय पड़ी हुई अपार जनशक्ति को जगाकर लोक-कल्याणकारी कार्यों में लगाने की अपूर्व क्षमता और शक्ति के स्रोत के रूप में—कुरु-क्षेत्र के समरांगण में अर्जुन को गीता-ज्ञान देने वाले जगद्गुरु के रूप में और युद्ध करते समय अत्यन्त निपुण सारथी के रूप में हम उनका साक्षात करते हैं। उन्होंने राजा-महा-राजओं और चक्रवर्ती सम्राटों के बीच दीन-हीन जनता के, पददलित, दीन और दुखियों के अधिकारों की रक्षा करते हुए एक निडर और सजग प्रहरी का-सा कार्य किया। उनकी तिरछी नज़र नृशंस एवं

अत्याचारी शासकों का हृदय हिला देने के लिए काफ़ी होती थी। उनकी हुँकार में भूमंडल को कम्पायमान करने की क्षमता होती थी। उनका आयुध सुदर्शन-चक्र था जो शत्रुओं का मद भंग करके पुनः उनकी उंगली में वापस लौट आता था।

अपूर्व क्षमता के धनी होते हुए भी वे गोपी जन वल्लभ तथा गोपबंधु ही रहे। यही उनकी विशेषता थी। सुदामा के तंदुल, विदुर का साग और देवी द्रौपदी की सरल पहुनाई ही उन्हें बाँध सकी। संसार का वैभव वे सदा नगण्य समझते रहे। तीनों लोकों का सौभाग्य उनके चरणों में लोटता रहा और सारे विश्व की राजनीति उनके इशारे पर नाचती रही। किंतु माया का यह सब प्रपंच उस मायावी को छूकर भी नहीं गया। राजा था कन्हैया जिसकी जन्म-तिथि प्रतिवर्ष इस देश का बच्चा-बच्चा सोत्साह मनाया करता है।

गीता उपदेशक के रूप में इन्होंने विश्व को कर्त्तव्य-निष्ठा का ज्ञान-संदेश दिया। उनकी उस प्रतिभा के तेज से आज विश्व की आँखें चौंधिया उठी हैं। हमारा अधिकार कर्त्तव्य करने का है फलों की आशा रखना उचित नहीं। वह हमारे अधिकार की वस्तु नहीं है। यही प्रशस्त मार्ग है, यह पाठ उन्होंने विश्व को पढ़ाया। आज उनके उपदेश से सारा संसार प्रभावित है। विश्व के हर भाग में श्रीकृष्ण को गीता के भक्त मिलेंगे। जितना आदर, मान और प्रतिष्ठा गीता को प्राप्त हुई है अन्य किसी ग्रन्थ को नहीं। दुनिया की कोई भाषा ऐसी नहीं है जिसमें गीता का अनुवाद न हुआ हो।

उन्होंने अवतार लेकर मान-प्रतिष्ठा का मद भंग कर दिया। दीन-हीन मानव की—दरिद्र-नारायण की प्रतिष्ठा स्थापित की। धर्म को एक नया रूप दिया और अपना मान छोड़कर सदाचारियों और भक्तों का मान रखा। आज सारा भारतीय समाज उनके महान् आदर्शों से प्रभावित है। संसार की प्रत्येक परिस्थिति में कैसे स्थिर रहा जाता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन उनके जीवन में हुआ। उनके सामने छोटे-बड़े अथवा ऊँच-नीच को एक-सा आदर मिला। उनके साथ मिल-जुलकर आदर्श जीवन कैसे बने इसका पूरा-पूरा ज्ञान उन्होंने अपने जीवन से

समाज को सिखाया। सच तो यह है कि उन्होंने जो कुछ कहा और जो किया उसकी महिमा अक्षुण्ण है, उसका विस्तार अनन्त है और हमारे शब्दों का भंडार सान्त है।

31· गंगा नवमी

भाद्रपद कृष्णा नवमी

भादों महीने की कृष्णा पक्ष की नवमी को गंगा नवमी कहते हैं। गंगा दशहरे के प्रकरण में पुण्य तोया भगवती भागीरथी के अवतरण का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है परन्तु गंगा नवमी का इतिहास एक दूसरे ही ढंग की कहानी है।

कहते हैं कि त्रेतायुग में अनाचारी पुरुषों के अत्याचारों से त्रस्त होकर कर्मठ और सदाचारी पुरुष बड़े-बड़े नगरों को छोड़कर जंगलों, पहाड़ों और गुफाओं में छिपकर रहने लगे थे। वहाँ यद्यपि उन्हें अनेक प्रकार के दूसरे कष्ट उठाने पड़ते थे फिर भी वे बस्तियों में जाना पसन्द नहीं करते थे। दैव दुर्विपाक से तीन वर्षों तक वर्षा न होने के कारण उन्हें जंगलों में और भी अधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। चारों ओर अकाल पड़ गया। जिसके कारण प्यास से व्याकुल होकर जीव-जन्तु एक-एक बूंद पानी के लिए तड़प-तड़प कर मरने लगे। बड़े-बड़े तालाब, बावड़ियाँ और जलाशय आदि सभी सूख गए। पृथ्वी संतप्त होकर धधकने लगी। दिशाओं से अग्नि स्फुलिंग निकलने लगे और चारों ओर हाहाकार मच उठा।

एक ओर तो अत्याचारियों का आतंक और दूसरी ओर अनावृष्टि के ताप, इन दो पाटों के बीच पड़े हुए मानव की दुर्दशा को देखकर महर्षि अत्रि बड़े दुखी हुए। उन्होंने लोगों की प्राण-रक्षा के लिए निराहार रहकर कठोर तप किया। उनकी साध्वी पत्नी ने भी उनके

समान कठिन व्रत किया। कई दिन बीतने पर एक दिन सायंकाल के समय उनकी समाधि टूटी। योग-निद्रा से जागने पर उन्होंने अपनी पत्नि अनुसूया से थोड़ा-सा जल पीने के लिए माँगा। पति की प्यास बुझाने के लिए अनुसूया कमंडलु में जल लेने के लिए जलाशय की ओर गईं। उनके आश्रम के निकट एक छोटी-सी नदी भी थी। परन्तु उसमें एक बूंद भी जल नहीं था। जलाशय भी एक के बाद दूसरा देखा और दूसरे के बाद तीसरा पर कहीं पानी की एक बूंद भी नहीं मिली। तब तो अनुसूया बड़ी दुखी हुईं।

उसी समय वृक्षों के झुरमुट में से निकलकर एक युवती को उन्होंने अपनी ओर आते हुए देखा। उसने पास आकर अनुसूया से कहा—"देवि ! इन हिंस्र पशुओं से भरे हुए वन में तुम अकेली क्यों भटक रही हो ?" अनुसूया ने कहा—"भद्रे ! मैं अपने प्यासे पति के लिए जल लेने आई थी, किंतु खोज करके भी कहीं जल की एक बूंद नहीं पा सकी। इसलिए हताश होकर यहाँ खड़ी हुई थी। यदि तुम कोई जल का स्थान बता सको तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूँगी।"

युवती ने कहा—"बहन, तुम तो जानती ही हो कि आज कितने वर्षों से पृथ्वी पर एक बूँद पानी की वृष्टि नहीं हुई। ऐसी दशा में पानी की आशा करना व्यर्थ है।"

देवी अनुसूया यह सुनकर उत्तेजित हो उठीं और उस युवती से कहने लगीं—"क्या कहा ? पानी कहीं नहीं मिलेगा ?" युवती बोली—"मैं तो समझती हूँ कि नहीं मिलेगा।"

अनुसूया ने आत्मविश्वास के साथ कहा—"अवश्य मिलेगा और यहीं मिलेगा।" युवती ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"यहाँ कैसे मिलेगा ? क्या तुम पागल तो नहीं हो गई हो ?" अनुसूयाजी ने उसी तरह शान्त भाव से कहा—"मैं पागल नहीं हो गई हूँ। सत्य कहती हूँ। यदि मैंने मन, वचन और कर्म से अपने पति को परमेश्वर मानकर उनकी पूजा सच्चे मन से की है तो मेरे धर्म की रक्षा करने परमेश्वर यहीं पतितपावनी गंगा की निर्मल धारा को प्रकट कर दिखाएगा।"

सती अनुसूया के इस दृढ़ विश्वास को देखकर उस युवती ने

कहा—"देवि ! तुम्हारे यह वचन कहने के पहले ही भक्त वत्सल भगवान् तुम्हारे पतिव्रत की महिमा पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ। तुम्हारे चरित्र और आत्मविश्वास को देखकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुम्हारी निष्ठा से जगत् का बहुत बड़ा कल्याण होगा।"

युवती के शब्दों से चकित होकर देवी अनुसूया ने उससे कहा—"बहन ! क्षमा करना, पति की सेवा और उनकी प्यास बुझाने की चिंता के कारण मैं तुम्हारा परिचय पूछना भी भूल गई थी। परन्तु क्या तुम मुझे अपना परिचय देने की कृपा करोगी ?" युवती ने कहा—"देवि, मैं गंगा ही हूँ और तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा से यहाँ आई हूँ। तुम्हारे पतिदेव प्यासे हैं। और तुम जल की खोज में यहाँ आई हो यह मुझे मालूम था। अब तुम्हें भटकना नहीं पड़ेगा। तुम्हारे पाँव के नीचे जो टीला है उसे कुरेदो और अपना जलपात्र भर लो।"

देवी अनुसूया ने तुरन्त वैसा किया। पृथ्वी को कुरेदते ही पाप-नाशिनी गंगा की निर्मल धारा का स्रोत फूट निकला। बस, प्रसन्नता-पूर्वक कमंडलु में जल लेकर वह महर्षि के पास जाने लगीं, परन्तु पैर आगे रखने से पहले उन्होंने कहा—"देवि ! मेरे पति प्यास से व्याकुल होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं उन्हें जल पिलाकर अभी आती हूँ। तब तक आप यहाँ ठहरें। और यदि कष्ट न हो तो आप मेरे साथ चलकर उन्हें भी दर्शन देने की कृपा करें।"

गंगा ने कहा—"क्षमा करो बहन ! मैं अधिक देर तक यहाँ नहीं ठहर सकती।" अनुसूया ने पूछा—"तो क्या आप मुझ पर असंतुष्ट हैं और आपने मुझे क्षमा नहीं किया। अन्यथा मेरी छोटी-सी बात को आप नहीं टालतीं।" इस पर गंगा ने कहा—"यदि तुम अपनी पति-सेवा के एक वर्ष का फल मुझे दान कर दो तो मैं यहाँ ठहरकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकती हूँ। अन्यथा नहीं।"

अनुसूया ने सहर्ष कहा—"मैं यह फल आपको अर्पण करती हूँ परन्तु उसके लिए मुझे अपने पति की आज्ञा प्राप्त करनी होगी। आप मुझे क्षमा करें और उनकी आज्ञा लेकर आने तक मेरी प्रतीक्षा करें।"

गंगा ने शान्त भाव से कहा—"अच्छा।" अनुसूया शीघ्रता से जल लेकर चली गईं। गंगा एक वृक्ष की छाया में वहीं बैठकर उनके लौट आने की प्रतीक्षा करने लगीं। पत्नी के लाये हुए जल को पीकर महर्षि अत्रि ने अनुसूया से पूछा—"प्रिये। इतने दिनों से अनावृष्टि और दुर्भिक्ष के समय जल की बूँद का मिलना भी दुर्लभ हो गया है, परन्तु इतना अच्छा जल तुम्हें कहाँ और कैसे मिल गया ?"

अनुसूया ने सारी कथा कह सुनाई। पत्नी के मुख से जगज्जननी माँ गंगा के आने का समाचार सुनकर अत्रि भी उनके दर्शनार्थ उठकर चल दिए और गंगा के सामने पहुँचकर बोले—"माँ ! तुमने मेरा आश्रम पवित्र कर दिया। मैं कृतार्थ हो गया। अब हम दोनों की यही प्रार्थना है कि आज से इस झरने का प्रवाह कभी न सूखे। इसी तरह शीतल और उज्ज्वल जलधारा सदा यहाँ बहती रहे।"

गंगा ने प्रसन्न होकर कहा—"ऋषिवर ! यह बात मेरे अधिकार में नहीं है। आप भगवान् शिव से यह वर प्राप्त करें। आपकी पत्नी ने अपनी पति-सेवा के एक वर्ष का फल मुझे अर्पण किया है, आप भी सहर्ष उनसे मुझे यह प्रसाद दिलावें। अनुसूया ने पति की अनुमति पाकर अपनी सेवा के एक वर्ष का पुण्य गंगा को अर्पण कर दिया। और सच्चे मन से वहीं भगवान् शिव का आह्वान किया। शिव ने प्रकट होकर सती अनुसूया को आशीर्वाद देकर वहाँ रहना स्वीकार कर लिया और गंगा को भी नित्य प्रवाहित होते रहने की आज्ञा प्रदान कर दी। अत्रि ऋषि की प्रार्थना पर शंकर ने अनावृष्टि का संकट भी दूर कर दिया जिससे खूब वर्षा हुई। चारों ओर हरियाली छा गई। और सारे कूप, बावड़ियाँ और जलाशय आदि जल से भर गए।

महर्षि अत्रि ने आश्रम के निकट त्रिलोकीनाथ शंकर को स्थापित करके उनका नाम वज्रेश्वरनाथ रखा। उन्हीं के पास प्रवाहित होने वाली गंगा का नाम अत्रि गंगा प्रसिद्ध हुआ। पवित्रता के पुण्य प्रभाव की द्योतक गंगा नवमी आज तक उनकी महिमा की गाथा सबको प्रतिवर्ष सुनाती जाती है।

32. अजा-एकादशी

भाद्रपद कृष्णा एकादशी

उत्सवों के अवसरों पर व्रत करने की प्रथा पर प्रायः लोग यह पूछा करते हैं—"यदि त्यौहार समाज की प्रसन्नता में वृद्धि करने वाले हैं तो उस समय भूखे रहने की क्या ज़रूरत है ?" क्यों न उस दिन और दिनों से अधिक भोजन किया जावे। ऐसा मानने वाले लोग शायद यह सोचते हैं कि व्रत तो दुख या शोक के समय ही करने चाहिएँ। जबकि भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण दूसरा ही है। व्रत या उपवास को वह लक्ष्य की साधना मानती है। जिस उद्देश्य से व्रत किया जाय उसका वह अर्थ नहीं होता कि समारोह मनाया जा रहा है, वरन् यह होता है कि हमारे हृदय पर उस लक्ष्य का गुण अंकित हो। नहाने से शारीरिक पवित्रता होती है। मौन से मानसिक शांति का वातावरण बनता है। उसी तरह उपवास से वृत्तियाँ भी अंतर्मुख होती हैं। विचारों में सात्विकता का उद्रेक होता है। भोजन से शरीर में आलस्य बढ़ता है। काम न करने की इच्छा होती है। इस दशा को हटाकर लक्ष्य की ओर बढ़ा जाय यही उपवास का सही उद्देश्य है। कुछ मनस्वी इतनी लगन वाले होते हैं जो अपने उपवास की साधना का फल अवश्य पा लेते हैं। जिस तरह ब्रह्मचर्य का पालन केवल वीर्यरक्षा के हेतु नहीं होता। वह तो गौण है, प्रधान लक्ष्य तो है संयमपूर्वक वेदाध्ययन या ज्ञान का अर्जन करने की अवस्था और उसमें तन्मयता का होना। इसी तरह उपवास का अर्थ है—साध्य का सान्निध्य या लक्ष्य की तन्मयता। इस तथ्य को प्रकट करते हुए ब्रह्मांड पुराण में अजा-एकादशी की कथा इस प्रकार वर्णन की गई है—

त्रेता युग में राजा हरिश्चन्द्र नामक एक नरेश थे। उन्होंने अपने जीवन को सत्यनिष्ठ बनाने का संकल्प किया। यहाँ तक की स्वप्न की अवस्था में भी अपने किये हुए वचन को पालन करने की प्रतिज्ञा उन्होंने कर डाली। दैवात् एक दिन उन्होंने स्वप्न में अपना

सारा राज्य दान कर दिया। उसी के दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र उनके दरबार में जा पहुँचे। राजा ने स्वप्न में जिस व्यक्ति को अपना राज्य दिया था उसकी शक्ल विश्वामित्र से मिलती हुई थी। इसलिए उन्होंने अपना राज्य उन्हें सौंपकर अपनी पत्नी तारामती और पुत्र रोहिताश्व के समेत राज-भवन त्याग दिया। चलते समय विश्वामित्र ने पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ राजा से और माँगीं। राजा ने राज्य कोश से ले लेने की सलाह दी। इस पर विश्वामित्र ने कहा—"राजन ! जो राज्य तुम मुझे पहले दान कर चुके उसकी किसी भी वस्तु पर अब तुम्हारा अधिकार नहीं है। राजा ने अपनी भूल पहचान ली और पत्नि-पुत्र को बेचकर सुवर्ण मुद्राएँ संग्रह कीं। परन्तु इतने से संकल्पित मुद्राएँ पूरी नहीं हुईं। तब उन्होंने स्वयं को बेचकर मुद्राएँ पूरी कर दीं। जिस व्यक्ति के हाथों में उन्होंने अपने आप को बेचा था वह जाति का डोम था। श्मशान का स्वामी था। मृत व्यक्तियों के संबंधियों से कर लेकर वह शव-दाह करने देता था। यही उसकी जीविका थी। राजा हरिश्चन्द्र को उसने इसी काम पर नियुक्त किया, वह उसे ही अपना कर्त्तव्य समझकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करने लगे।

प्रत्येक साधक के सामने ऐसे अवसर भी आते रहते हैं जिस समय उसे अपनी निष्ठा की कठोर परीक्षा देनी पड़ती है। दरअसल परीक्षा के अवसर आने पर ही मनुष्य के धैर्य, संयम और धारणा को तौला जा सकता है। ऐसा ही अवसर महाराज हरिश्चन्द्र के सामने भी आया। उस दिन एकादशी का व्रत था। साथ ही श्मशान रक्षण का कर्त्तव्य करते हुए वह आधी रात के समय पहरा दे रहे थे। हठात एक युवती अपने पुत्र का शव लिये हुए उसका अन्तिम संस्कार करने के विचार से वहाँ आई। वह बड़ी दीन थी। उसके पास शव को ढाँकने के लिए कफन का वस्त्र भी नहीं था। अपनी आधी साड़ी फाड़कर उसने कफ़न का काम लिया था। परन्तु स्वामी की आज्ञा में तत्पर महाराज हरिश्चन्द्र ने उसके पास आकर श्मशान-कर माँगा। पुत्र-शोक से दुखी उस असहाय नारी ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

परन्तु रात के अंधेरे और एकान्त में भी कर्त्तव्य-निष्ठ लोग अपने कर्त्तव्य-पथ पर अटल रहते हैं। महाराज ने भी बिना कर लिये हुए संस्कार न करने देने का निर्णय किया। बेचारी अबला अधीर होकर रो उठी। उस समय आकाश मेघों से आच्छादित था। हल्की-हल्की पानी की फुहार पड़ रही थी। सहसा बिजली चमक उठी। उसी बिजली के प्रकाश में महाराज ने पहचाना कि वह नारी और कोई नहीं स्वयं उनकी प्रिय पत्नी तारावती है। और शव उनके पुत्र रोहिताश्व का है। सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हुई थी। यह देखते ही वह विच-लित हो उठे। परन्तु दिन-भर के उपवास के कारण महाराज की अंतःवृत्ति हो रही थी। यह काल उनके धैर्य की परीक्षा का था। इस-लिए उन्होंने साहस बटोरकर कहा—"महारानी, जिस सत्य के रक्षण के लिए हम लोगों ने राज-भवन छोड़ा। अपने आपको बेचकर इतना कष्ट सहा, उस सत्य को इस समय भंग करना कर्त्तव्य से च्युत होना कहा जायगा। इस समय तुम्हारी अवस्था शोचनीय है परन्तु ऐसे समय में मेरी सहायता करके तप-धर्म रक्षण में मेरी सहायता करो। रानी ने पति को पहचानकर पुत्र के शव पर से अपनी साड़ी का फटा हुआ भाग उठा दिया और कर के रूप में राजा की ओर बढ़ा दिया। उसी समय साध्यभूति भगवान् वहाँ प्रकट हो गए और महाराज की निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते बोले—"राजन् ! वेद ने केवल सत्य बोलने पर की आज्ञा प्रदान की है। परन्तु उस सत्य का जीवन में कैसे धारण करना चाहिए यह तुमने अपने आचरण से सिद्ध कर दिखाया। तुम धन्य हो। आने वाले युगों के लिए तुम्हारा इतिहास अमर होगा और समाज के लोगों को सत्य आचरण की प्रेरणा देता रहेगा। महाराज ने प्रभु को प्रणाम किया और वर माँगा कि प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इस दुखिया स्त्री को इसका पुत्र प्रदान करें। यही मेरी याचना है। रोहिताश्व उसी समय जीवित होकर उठ बैठे। और श्री हरि के कहने से विश्वामित्र ने उनका राज्य उन्हें पुनः लौटा दिया। राजा ने प्रभु की आज्ञा पाकर उसे स्वीकार कर लिया। यही अजा-एकादशी का महात्म्य है।

33. हरतालिका व्रत

भाद्रपद शुक्ला तृतीया

भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया को सारे देश की स्त्रियाँ हरतालिका व्रत करती हैं। खास तौर पर यह स्त्रियों का त्यौहार है। शंकर और पार्वती का शास्त्रविधि के अनुसार पार्थिव पूजन आज के दिन विशेष रूप से किया जाता है।

इसके सम्बन्ध में भविष्योत्तर पुराण में यह कथा मिलती है कि—राजा हिमवान की कन्या पार्वती ने अपने मन में भगवान् शंकर को ही पतिरूप में वरण किया और उन्हें पाने के लिए जंगल में रहकर कठोर व्रत करने लगीं। बहुत दिनों तक केवल शाक और पत्तों का आहार करके और बाद में केवल वायु का आधार लेकर संयम के साथ अनुष्ठान किया। पार्वती के उस तप को देखकर राजा हिमवान को बड़ी चिन्ता हुई। दैवात् उन्हीं दिनों देवर्षि नारद राजा हिमवान से मिलने के लिए आये। राजा ने पार्वती को दिखाकर उसके कठोर तप और अनुरूप पति के बारे में उनसे चर्चा की। नारद ने कहा—"इस कन्या के लिए भगवान् विष्णु से बढ़कर और कोई वर नहीं हो सकता।" पार्वती के पिता को यह सुझाव अच्छा लगा। परन्तु जब यह समाचार पार्वतीजी को मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उन्होंने अपनी एक सखी से कहा कि संसार में सम्पन्न, सुन्दर और स्वस्थ पति की याचना तो सभी लड़कियाँ करती हैं किन्तु मैंने तो अकुल, अगेह दिगम्बर और दीन पति को वरण किया है। चाहे मेरा शरीर भले ही छूट जाय परन्तु शंकर को पतिरूप में पाने का मेरा हठ नहीं छूट सकता। तब सखियों ने उनसे कहा—"चलो कहीं ऐसी जगह चलकर रहें जहाँ महाराज को पता तक न चले।" अतः तदनुसार पार्वती ने एक एकान्त कन्दरा में रहते हुए पुनः घोर तप आरम्भ कर दिया। उन्होंने बालू की शिवमूर्ति स्थापित करके बड़ी श्रद्धा से उसकी पूजा की और शिव का आह्वान किया। देवाधिदेव शंकर की समाधि भक्तों के आह्वान

से भंग हुई इसलिए वे सती के सामने प्रकट हुए और वर माँगने का आदेश दिया। इस पर सती ने निवेदन किया—"देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे अपनी अर्द्धांगिनी बनाने की स्वकृति प्रदान करें।" शंकर एवमस्तु कहकर अन्तर्धान हो गए।

उसके कुछ काल के बाद उन्हें ढूंढ़ते हुए राजा हिमवान अपने सैनिकों समेत वहाँ जा पहुँचे और पार्वती के तपोमय जीवन की प्रशंसा करके अपने साथ घर ले गए। पार्वती ने शिव के वरदान की बात अपने पिता को कह सुनाई। महाराज ने उसकी बात स्वीकार कर ली और भगवान् शंकर के साथ उसका विवाह कर दिया

संसार में सती की महिमा अमर है। उन्होंने ग़रीब वर को चुनकर अमीरी की चाहना करनेवाली स्त्रियों के समाज को अपने संकल्प से चुनौती दी है। पति का कुल चाहे दीन भले ही हो परन्तु शुभ लक्षणा पत्नी उसे धन-धान्य से भरपूर बनाकर सुखी गृहिणी हो सकती है। विश्व के देवता उसकी वंदना करते हुए अपनी सारी निधियाँ उसके चरणों में अर्पण कर देते हैं। उसकी महिमा को प्रेरित करने के लिए आज का त्यौहार—हरतालिका व्रत—बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है।

34. गणेश चतुर्थी

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी

निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभ कार्येषु सर्वदा।

गणेश अथवा गजानन बुद्धि के देवता हैं और मनुष्य स्वभाव से ही बुद्धिजीवी प्राणी है। संसार के जितने भी आविष्कार तथा चमत्कार हैं, सब उसकी बुद्धि के ही परिणाम तो हैं। यदि मनुष्य में बुद्धि-बल और किसी भी तत्त्व पर गहराई से विचार करने की क्षमता न होती, तो उसमें और दूसरे पशुओं में कोई अंतर नहीं होता। यह अंतर मिटाने

के लिए, मनुष्य ने अपने जीवन, रहन-सहन और तर्ज-तरीकों में बहुत कुछ सोचा, विचार किया और फिर उन्हें सदैव के लिए, दृढ़ता के साथ अपने जीवन में अपना लिया। यही उसकी विशेषता है।

इन्हीं विचारों की धारा में समय-समय पर संशोधन और परिवर्धन भी हुआ। नई बातों ने पुराने विचारों के नए से नए रूप खड़े किए। जिस तरह हिमालय पर्वत में बहुत-से छोटे-बड़े जल-स्रोत हैं, जिन में से अनेक जल-धाराएँ फूट-फूटकर बहती हैं और संयोगवश वे एक होकर नदी बन जाती हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति में भी समय-समय पर अनेक विचारों के स्रोत फूटे और उन सबने मिलकर एक-रूपता धारण कर ली। कुछ ऐसी ही बात गजानन के रूप, गुण और प्रभाव के सम्बन्ध में भी हुई है।

उपरोक्त श्लोक में उनके रूप, गुण और प्रभाव का संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण वर्णन हुआ है। वह वक्रतुंड और महाकाय हैं। यह हुआ उनका स्वरूप। मनुष्य को माता प्रकृति की अंतिम कृति माना जाता है। इसीलिए सम्भवतः वेदान्त सिद्धान्त में यह कहा जाता है कि 'यत्पिंडे सः ब्रह्मांडे' अर्थात् विश्व में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो हमारे पिंड में (शरीर में) निवास न करती हो। अपने शरीर में निवास करने वाली इन शक्तियों का ज्ञान जैसे-जैसे मानव को होता गया वैसे-वैसे उसने महामानव के स्वरूप की बहिरंग कल्पना कर डाली। इसलिए बुद्धि और शक्ति के अपूर्व भंडार गजानन को महाकाय तो होना ही चाहिए। अब रही वक्रतुण्ड होने वाली बात—उसके लिए हमारे धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि गजासुर को मारने के लिए भगवान् विष्णु ने पार्वतीजी के उदर से जन्म लिया। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि एक बार भगवान् शंकर ने आवेश में आकर अपने द्वार-रक्षक गण का सिर काट लिया, किंतु थोड़ी देर बाद अपनी भूल का ध्यान करके उन्होंने असली अपराधी गजासुर का सिर काटकर उस गण के धड़ से जोड़ दिया। तब से महाकाय गणेश का मुख हाथी का हो गया। इस से उन्हें वक्रतुण्ड कह दिया गया।

एक बार देवताओं ने आपस में मिलकर यह निश्चय किया कि हम

में से जो देवता सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके इस स्थान पर सबसे पहले आ जाय, उसे देवों में सर्व-प्रथम पद मिले और बाकी सब देवता उसकी पूजा करें। इस निश्चय के अनुसार सभी देवता अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर दौड़े। गजानन तो बुद्धि के तीव्र थे ही। उन्होंने सोचा—इस सारी पृथ्वी की दौड़ लगाना व्यर्थ है। जीव तो स्वयं अपने आप में पूर्ण है। और पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल एवं आकाश आदि पंच तत्व से बने हुए भौतिक शरीर में व्याप्त है तथा जड़ और चैतन्य सब में समान रूप से रम रहा है। 'रमंते चराचरेषु संसारे।' चर और अचर सब में रमा हुआ है इसीलिए उसे राम कहते हैं। अतः उन्होंने वहीं राम नाम लिखकर उसकी प्रदक्षिणा कर ली। और सर्व प्रथम आसन पर आकर बैठ गए। स्वर्ग के देवताओं ने लौटकर जब यह देखा तो उनके ज्ञान की प्रशंसा की और मिलकर बड़ी श्रद्धा के सहित उन का पूजन किया। उस दिन से यह देवताओं में अग्रगण्य मान लिये गए।

गणपति नाम के पीछे एक और भी कल्पना दिखाई देती है। वह यह है कि प्राचीन युग में कई जनतंत्र राज्य गणराज्य कहलाते थे। उन गणराज्यों की लोक-सभा के सभापति का वर्णन इसी रूप में हो सकता है। गणपति की कल्पना संभवतः इसी आधार पर की गई हो। जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा होती है, उसी तरह सुसंगठित समाज की आत्मा का अनुमान लगाया गया हो। इसलिए गणपति की पूजा का अर्थ है सामूहिक जीवन को अपनी भावनाएँ अर्पण करना। वह सामाजिक आत्म-ज्ञान का भंडार है। गजनन बुद्धि के सागर हैं। बिना उनकी कृपा के जगत् अथवा समाज का कोई काम पूरा होने वाला नहीं है। इसलिए हर काम को उनकी पूजा से आरम्भ करना चाहिए।

गीता में प्रकृति और उसके बाहर के सभी तत्वों का त्रिविध विश्लेषण करते हुए प्रत्येक आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पदार्थ को तीन-तीन भागों में बाँटा गया है। वेद ने तो देवताओं की प्रकृति को भी तीन हिस्सों में विभक्त कर दिया है। सात्विकी,

राजसी और तामसी—यह तीन बड़े हिस्से हैं। प्रजापति ब्रह्मा सतोगुण के, सृष्टि पालक भगवान् विष्णु रजोगुण के और भगवान् शंकर तमोगुण के देवता माने गए हैं। इसी भाँति प्रकृति के तीन रंग भी माने गए हैं। लोहित, शुक्ल और कृष्ण। लाल, सफेद और काला। बाकी रंग इन्हीं रंगों के मेल से बनते हैं। गीता में कहा गया है कि—सत्वगुण सुख में, रजोगुण कर्म में और तमोगुण आलस्य और निद्रा की प्रवृत्ति पैदा करता है। कर्म (activity) के देवता गजानन हैं। गजानन का वाहन चूहा इस बात का द्योतक है कि यदि चूहे के आकार का तमोगुण हो तो उसे दबाने के लिए गजानन के सदृश रजोगुण होना चाहिए। चूहा काले रंग का होता है जो तमोगुण का रंग माना जाता है। इसलिए गणेश को दर असल गुणेश कहना अधिक न्याय-संगत है।

वैदिक युग में ग्रंथ लेखन की कला को समाज में अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। परन्तु ग्रंथों को लिपिबिद्ध करने वालों में सर्व श्रेष्ठ स्थान श्री गणेशजी को ही प्राप्त हुआ। क्योंकि महाभारत नामक महाकाव्य को लिखने का संकल्प जिस समय महर्षि वेदव्यास ने किया, तब उन्हें किसी योग्य लेखक की तलाश हुई। उन्होंने गणपति के समक्ष जाकर अपना विचार प्रकट किया। गणेशजी ने उन्हें उत्तर दिया कि आप बोलते जाइए, मैं लिखता जाऊँगा। परन्तु एक ही शर्त होगी और वह यह कि मेरी लेखनी की गति रुके नहीं। व्यासजी ने इसे स्वीकार कर लिया। तभी इतना बड़ा ग्रंथ लिखा जा सका।

ज्योतिष ग्रंथों में भी गणपति का रंग लाल माना जाता है। और लाल रंग के फूल उन्हें चढ़ाए जाते हैं। ऐसी लाल आभा आकाश में चमकने वाले मंगल-ग्रह की भी है। उसे अंगारक कहते हैं और गणेश की कई चतुर्थियों का नाम भी अंगारिकी चतुर्थी रखा गया है। परन्तु मंगल का प्रभाव शुभ नहीं माना जाता है। गणेश तो मंगल मूर्ति हैं। उन्हें विघ्नहर्ता भी कहा जाता है। कलियुग में तो खासतौर पर उन्हीं की पूजा तत्काल सिद्धि देने वाली है यह माना जाता है। 'कलौ चंडी विनायकौ'। रामनौमी, जन्माष्टमी और गणपति-पूजन—इन तीनों त्यौहारों का एक-सा महत्त्व है। भारतीय समाज अपने इन त्यौहारों को

आज दिन भी बड़े उत्साह और श्रद्धा से मनाता है। महाराष्ट्र प्रदेश में तो गणपति की बड़ी सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं और प्रत्येक घर में उनका पूजन होता है। आज का दिन प्रत्येक नए काम को आरम्भ और विद्याध्ययन शुरू करने का माना जाता है।

35. ऋषि पञ्चमी

भाद्रपद शुक्ला पंचमी

जो आदमी अपने सुखों की चिन्ता छोड़कर पर-हित चिन्तन में ही अपना सारा समय लगता है, वही ऋषि है। ऐसे ऋषि बड़े भाग्य से ही किसी देश अथवा समाज को मिलते हैं। जिस तरह वर्षों के झंझावात से मोर्चा लेता हुआ कोई बड़ा वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है, समय पर उसमें फल-फूल आते हैं। फिर हवा आती है और दूर-दूर तक उसका सौरभ एवं परिमल फैला देती है। जंगल का जंगल उसकी सुगंधि से महक उठता है उसी तरह एक भव्य सत्य का प्रयोग करने वाला ऋषि भी बड़ी शान से समाज के बीच खड़ा रहता है। उसके चरित्र गठन के बीज अनेकों हृदय में पड़ते हैं। फिर धीरे-धीरे उसके चारों ओर लाखों उपासकों की भीड़ जमा होने लगती है। उस समय उसका नैसर्गिक रूप छिटक पड़ता है, उसके अंतर-तल में मंगल ध्वनि गूँज उठती है।

ऐसे व्यक्तियों से समाज को नई राह मिलती है और राष्ट्र का ओज चमक उठता है। सृष्टि के आदि से ऐसे लोग प्रत्येक देश, समाज और जातियों में जन्म लेते आए हैं। उन्होंने स्वयं कष्टमय जीवन बिताकर भी दूसरों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे लोग आने वाली पीढ़ियों के लिए अनेक पुण्य स्मृतियाँ अपने पीछे छोड़ जाते हैं। ऐसे लोगों की भाषा का कलेवर भिन्न हो सकता है, परन्तु कर्तव्य और

उसके साथ कर्मपथ पर डटे रहने की परम्पराओं में कोई भेद नहीं होता। देश-काल और पात्र की अवस्थाओं के अनुसार उनके व्यवहार अनेकता से परिपूर्ण लग सकते हैं। परन्तु मानव-जीवन को समुन्नत करने वाले मौलिक तत्वों में कोई अंतर नहीं होता। वे जो कुछ कहते या करते हैं वह सारे विश्व के लिए होता है, और विश्व के लोग उनकी बात सुनते हैं।

ऐसे ही लोगों की स्मृति हमें रहे इसीलिए भारतीय संस्कृति ने आज का दिन नियत किया है। इसे ऋषि पंचमी कहते हैं। आज के दिन विश्व के बड़े-बड़े विचारकों की बात ध्यान से सुननी चाहिए और यदि हो सके तो अंतर्मुख वृत्ति करने के लिए बड़ी श्रद्धा सहित उपवास भी करना चाहिए। ताकि हमारे जीवन-विचार और आदर्शों पर उन महापुरुषों की पूरी छाप पड़े। यही ऋषि पंचमी के महोत्सव का रहस्य है।

36. संतान सप्तमी व्रत

भाद्रपद शुक्ला सप्तमी

भादों शुक्ला सप्तमी को यह व्रत किया जाता है। इसे भुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं। यह मध्यान्ह तक ही किया जाता है और शिव पार्वती का षोड्शोपचार पूजन करके सम्पन्न किया जाता है। संचित पापों के क्षय और पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि के लिए याचना की जाती है।

आज की परिस्थितियाँ तो बिलकुल विपरीत हैं। सारे देश की आबादी बहुत बढ़ती जा रही है। परन्तु काम करने वाले लोगों का टोटा है। चारों ओर देश में जन-संख्या बढ़ने के विरुद्ध चीख-पुकार मची हुई है। परन्तु संस्थाओं में काम करनेवाले लोगों का अभाव है। भारतीय संस्कृति इस अनावश्यक जन-संख्या की वृद्धि का समर्थन नहीं

करती, वरन् उसका सिद्धान्त तो यह है कि—'वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खाः शतान्यपि।' अर्थात् सौ मूर्ख और आचरण-हीन पुत्रों से एक गुणवान पुत्र ही अधिक अच्छा है। परन्तु गुणी पुत्र यों ही किसी पेड़ से टपक पड़ते हैं, ऐसी बात नहीं है। उसे पाने के लिए माता-पिता को तप करना पड़ता है। दैवी गुणों से अपने जीवन को संजोया जाता है, जिनके प्रभाव से दीर्घायु तथा विद्वान सन्तान के जन्म से घर सुशोभित होते हैं। इस सम्बन्ध की एक कथा श्रीकृष्ण के जन्म से पहले की है। एक बार लोमस ऋषि मथुरा नगरी में गए और कारागृह में महात्मा वसुदेव और देवी देवकी से भेंट की। माँ देवकी ने उनका बड़ा स्वागत किया। लोमस ऋषि ने माता देवकी से कहा—देवि! दुष्ट कंस ने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, तुम्हारे नव-जन्मित शिशुओं की हत्या से उसने अपने हाथ रंगे हैं इसलिए तुम पुत्र शोक से दुखी हो। अतः तुम्हें संतान सप्तमी या भुक्ताभरण व्रत करना चाहिए। देवी देवकी ने इस व्रत की विधि जानने के साथ उसके पूर्व इतिहास को सुनने की इच्छा प्रगट की। तब लोमस ऋषि ने कहा कि—प्राचीन काल में नहुष नामक नरेश अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चन्द्रमुखी था। अपने राज्य में रहने वाले एक विष्णुगुप्त नामक ब्राह्मण की पत्नी रूपवती से उसका बड़ा स्नेह था। एक दिन दोनों मिलकर सरयू नदी में नहाने के लिए गईं। वहाँ और भी अनेक स्त्रियाँ आई हुई थीं जो स्नान कर चुकीं थी और मंडल बाँध बैठी हुईं शिव और पार्वती का पूजन कर रही थीं। जब वे स्त्रियाँ अपना पूजन समाप्त करके घर की ओर चलने लगीं तब रानी और ब्राह्मण पत्नी ने उनके पास जाकर प्रश्न किया कि तुम किसका और किस आशय से पूजन कर रही थीं ?

उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूजन शिव-गौरी का था। सुख-सौभाग्य पाने की इच्छा वाली नारियों को यह व्रत करना चाहिए ऐसा विद्वानों के मुख से सुनकर ही हमने आजीवन इस व्रत को करते रहने का संकल्प किया। परन्तु घर पहुँचकर यह अपने किये हुए संकल्प को भूल गईं। किसी संकल्प को करके भूल जाना भयानक अपराध है। उसका

परिणाम भी भयंकर होता है। इसलिए मृत्यु के बाद रानी और ब्राह्मणी को वानरी और मुर्गी की योनि में जन्म लेना पड़ा। कुछ काल के बाद उन्हें फिर मनुष्य योनि मिली। रानी इस जन्म में मथुरा के राजा पृथ्वीनाथ की प्रिय पत्नी हुई और ब्राह्मणी उसी राज्य के पुरोहित अग्निमुख को ब्याही गई। इस जन्म में भी उन दोनों में बड़ी प्रीति हुई। किंतु व्रत को भूल जाने का फल दोनों को यही मिला कि बहुत अवस्था बीत जाने पर भी उनके कोई संतान नहीं हुई। बाद में मध्य अवस्था तक पहुँचने पर रानी के गर्भ से एक गूंगा और बहरा लड़का पैदा हुआ जो नौ वर्ष की अवस्था में मृत्यु का शिकार हुआ। किंतु ब्राह्मणी को किसी ज्योतिषी के बताने से अपनी भूल याद आ गई और उसने उसका सुधार करने के लिए व्रत करना आरम्भ कर दिया। इसलिए उसके गर्भ से आठ पुत्र पैदा हुए। इस पर रानी को बड़ी ईर्ष्या हुई। एक दिन रानी ने आठों पुत्रों को भोजन करने के लिए अपने राज-भवन में बुलाया और उन्हें विष मिला हुआ भोजन करा दिया। परन्तु माता के व्रत-पालन के प्रभाव से वे बच गए। तब रानी ने उन्हें नष्ट करने के दूसरे उपाय किए। लेकिन वे फिर बच गए। तब उसने ब्राह्मणी को अपने पास बुलाकर पूछा कि—तुमने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है जो तुम्हारे पुत्र मृत्यु के घातक आक्रमणों से बच जाते हैं। ब्राह्मणी ने ज्योतिषी के बताये हुए भेद को प्रगट कर दिया। इस पर रानी को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और उसने नियमानुसार इस संतान सप्तमी के व्रत को करके एक सद्गुणी संतान का मुख देखा। वह बालक आगे चलकर बड़ा यशस्वी धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य पालन करने वाला निकला।

लोमस ऋषि ने कहा—देवकी ! जिस तरह रानी चन्द्रमुखी ने इस व्रत को पाया वैसे ही इस व्रत से तुम्हें भी एक यशस्वी, विद्वान और जगत् को अपने धर्माचरण से उपदेश देने वाला गुणवान पुत्र प्राप्त होगा।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—"राजन्! माँ देवकी के उसी व्रतानुष्ठान के फलस्वरूप उनके उदर से मेरा जन्म हुआ है। बस इसी से

समझ लो कि इस व्रत का क्या महत्त्व है। संतान की इच्छा रखने वाली प्रत्येक बहन को इस व्रत का पालन करना चाहिए और संयम-नियम-पूर्वक जीवन बिताकर गुणवान पुत्र प्राप्त करके उन्हें लोकोपकार में प्रवृत्त होने की शिक्षा देनी चाहिए। यही इस संतान के व्रत का रहस्य है।"

37. राधा अष्टमी

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी

भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी की भाँति भादों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को प्रतिवर्ष श्रीराधिका रानी के भक्त उनकी जन्म-तिथि पर जन्मोत्सव मनाते हैं। बरसाना श्रीराधाजी के पिता वृषभानुजी की राजधानी थी। परन्तु श्रीराधिका का जन्म उनके ननिहाल रावल ग्राम में हुआ था जो मथुरा से यमुना पार चार मील की दूरी पर था।

राधा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना शक्ति का नाम है। वह उनकी प्रेममयी उपासना का मूर्तिमान स्वरूप है। निरंतर आराधना करते रहने के कारण ही उन्हें राधा कहते हैं। दिन-रात, सोते-जागते और उठते-बैठते अपने आराध्य का अनेक रूपों में चिंतन तो अनेक भक्तों ने किया परन्तु उस आराधन को तैल-धारावत निरंतर अक्षुण्ण कैसे रखा जाय उसका प्रतीक भगवती राधा हैं। उन्हें अपने इष्ट की तन्मयता के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं है। छुट्टी ही कहाँ मिलती है प्रियतम के ध्यान से जो दूसरी बातें सोची जा सकें।

यदि कोयल से कोई कहे कि आज तू छुट्टी मना। कुहू-कुहू का शब्द मत बोल तो वह उत्तर देगी कि मैं अन्न और जल के बिना तो रह सकती हूँ परन्तु मेरा कुहू शब्द नहीं रुक सकता। उससे मुझे कष्ट नहीं होता। वह मेरे अन्दर की अनुभूति है। वह मेरा जीवन है। सूर्य, चन्द्र

और नक्षत्र मंडल आदि को कभी भी छुट्टी नहीं। समुद्र निरन्तर ही गर्जन करता रहता है। नदियों में जब तक जीवन है बराबर बहती रहती हैं। इसी तरह श्री राधा का चिर-स्मरण है। उसमें कभी थकान नहीं, कभी विराम नहीं। वह अखंड है।

एक बार उनकी एक सखी ने उनसे कहा—"बहन! जिन श्याम-सुन्दर की याद में दिन-रात तुम खोई रहती हो वह तो तुम्हारे वाम हैं।" वाम होना संस्कृत साहित्य का एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है विरुद्ध होना। अर्थात् श्री कृष्ण राधाजी के विरुद्ध हैं। इसीलिए वह उनके प्रेम की परवाह न करके उन्हें छोड़कर द्वारिकापुरी में जा बसे हैं। इसलिए सखी की सीख यह है कि जब श्री कृष्ण उन्हें छोड़कर चले गए हैं तो उन्हें भी उनकी याद भुला देनी चाहिए। इस पर श्री राधिका ने उस सखी को उत्तर दिया।

सखि संचरतु यथेच्छं वामो वा दक्षिणोवास्तु।
श्वास इव प्रेयान्माम् गतागतैः जीव धारयति॥

अर्थात्—यह तो उनकी इच्छा है। चाहे वाम हों या दक्षिण—वाम चलें अथवा दाएँ या दूसरे शब्दों में यों कहिए कि विपरीत हों या अनुकूल। इसकी क्या चिंता है। हमारी नासिका के दोनों छिद्रों से प्राण वायु का संचार होता है। परन्तु वह वायु दोनों नथुनों से एक समान नहीं चलता। कभी दाईं ओर से चलता है और कभी बाएँ छिद्र से। पर किसी भी नथुने से प्राणवायु का संचार होने मात्र से ही तो शरीर बना रहता है। उसका रुक जाना ही मृत्यु है। और उसका चलते रहना ही जीवन है। इसी तरह मेरे आराध्य श्री कृष्ण चाहे वाम हों या दक्षिण। वे किसी भी प्रकार चलते रहें यही मेरा जीवन है। उनका किसी भी प्रकार न चलना मेरे लिए घातक है।

कितना ऊँचा आदर्श है भक्ति साधना का महारानी राधिका के जीवन में। हमारी भी अपने लक्ष्य के साथ ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए। उपासना का बोझ हमारे ऊपर लदा हुआ नहीं होना चाहिए। मन की संलग्नता उसमें पूरी-पूरी होनी चाहिए। यदि मन के विरुद्ध उपासना की जाय तो वह भार प्रतीत होगी। जिस कार्य में आत्मा रंग नहीं

जाती, हृदय सम-रस नहीं हो जाता, वह कर्म मृत्यु-जैसा दारुण हो जाता है।

उपासना या भक्ति के क्षेत्र में श्री राधिका को कई सम्प्रदायों में श्री कृष्ण से भी बढ़कर महत्ता दी गई है। केवल ब्रज की गलियों में ही नहीं भारत के समस्त आस्तिक दल में महारानी राधिका के पावन नामों की गूंज सुन पड़ती है। उनके बिना श्री कृष्ण भी अधूरे हैं। किंतु भक्तिरस की इस माधुरी का नाम श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप से नहीं लिया गया केवल ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-माधव की चर्चा की गई है। उसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दी में ब्रज के सन्तों ने अत्यन्त मधुर शब्दों में उनका वर्णन और श्री कृष्ण-प्रेम की तन्मयता का वर्णन अपने-अपने काव्यों में किया है।

भक्ति रस की मूर्तिमती गंगा, सेवा की सजीव साधना और निर्मल तथा विशुद्ध प्रेम की प्राणमयी प्रतिभा महारानी राधिका का पुनीत जन्मोत्सव आज के दिन घर-घर में मनाया जाता है।

38. महालक्ष्मी व्रत

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी

महालक्ष्मी पूजन का अनुष्ठान भादों महीने की शुक्ल पक्षीय अष्टमी से आरम्भ होकर आश्विन की कृष्णाष्टमी तक रहता है। एक पखवाड़े का यह साधन बड़ा कठोर है। इस अनुष्ठान में अपनी दैनिकचर्या को एक खास ढंग से चलाना पड़ता है। भारत में व्रतों और उत्सवों को मनाने का उत्तरदायित्व पुरुषों से अधिक स्त्रियों ने अपने ऊपर रखा है। क्योंकि घर की व्यवस्था को ठीक तरह से चलाने की जिम्मेदारी उन्हीं की होती है। वे हमारे घर की लक्ष्मियाँ हैं। यदि वे अपने उत्तरदायित्व से ही मूल्यांकन करके घर की व्यवस्था को ठीक

तौर से सम्भाल लें तो घरों में सुख-शन्ति के साथ-साथ स्वर्ग की विभूतियाँ अठखेलियाँ करती हुई दिखाई देने लगें। महिलाओं ने अपना कर्त्तव्य बहुत कुछ निभाया भी है। आज हमारे घरों में जो थोड़ा-बहुत धार्मिक वातावरण पाया जाता है तो वह अधिकतर बहनों की बदौलत ही। वरन् हमारा पुरुष वर्ग तो आज के विषावत और वैज्ञानिक चकमक के वातावरण से भरे हुए युग में मन की कोमल वृत्तियों की ओर प्रवृत्त कराने वाले नियमों पर से अपना विश्वास खो बैठा है। और विदेशी शिक्षा-प्रणाली की बदौलत उसमें ऐसी हीन भावनाएँ घर कर गई हैं कि उसे अपनी संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान-गौरव भी नहीं रहा। यह मानना पड़ेगा कि चारों ओर फैले हुए भ्रष्टाचार और अनाचार का मूल कारण ही यह है कि चरित्र को ऊँचा उठाने वाले छोटे-छोटे साधनों तक की हम दिन-रात उपेक्षा करते रहने के आदी हो गए हैं।

स्त्रियों के समाज की भी हालत अब बिगड़ती जाती है। जहाँ तक साधारण बातों का प्रश्न है स्त्रियों में प्राचीन परम्पराओं की मर्यादाओं को दृढ़ता से पकड़े रहने की परिपाटी अवश्य है किंतु उसके साथ ही अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास भी उन्हीं में अधिकतर फैला हुआ है। यदि उन परम्पराओं का पालन उन का सही आशय समझकर वे करने लगें तो बहुत कुछ सुधार हो जाय, और मन पर उनका अच्छा प्रभाव भो पड़े। समझ-बूझकर नियमानुसार करने से महालक्ष्मी का यह व्रत अवश्य फल प्रदान करता है।

घर की लक्ष्मी संयम और नियम से रहकर पूरे एक पखवाड़े महालक्ष्मी का आवाहन करे। घरों को अव्यवस्थित रखने और उनमें अशांति फैलाने के लिए तो किसी साधन की ज़रूरत नहीं है। कूड़ा-कचरा तो हवा के साथ अपने आप ही उड़-उड़कर चला आता है परन्तु घरों को स्वच्छ और स्वस्थ बनाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार पास-पड़ोस के मुहल्लों और गाँव में सफाई और स्वास्थ्यकर वातावरण रखने के लिए और भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है इसलिए लक्ष्मी पूजन को वास्तव में सफ़ाई का अभियान मानना चाहिए। सामूहिक

रूप से इसी के द्वारा गाँव की सफ़ाई हो जाती है। विशेषकर वर्षा ऋतु के पश्चात् प्रायः देखा जाता है कि बहनें सबसे पहले घरों में सोकर उठ जाती हैं और झाड़ू देकर अपने-अपने घरों को बुहारकर देव-मन्दिरों के समान स्वच्छ बनाती हैं। परन्तु अशिक्षा के कारण अपने घर का सारा कूड़ा-कचरा इकट्ठा करके पड़ौसी के दरवाज़े पर डाल आती हैं। ऐसा क्यों होता है ? सामूहिक चेतना और सामाजिक भावना का अभाव ही इसका मूल कारण है। आज के युग को इस सामूहिक चेतना की बड़ी आवश्यकता है। अपने व्रतों और उत्सवों का फल केवल हमें ही मिले यह सोचना हमें समाज से दूर ले जाएगा और हमारी प्रत्येक क्रिया का फल सारे समाज को मिले, वह आगे बढ़े, इसकी निष्ठाएँ पवित्र हों, सब सुखी हों इस बुद्धि से किये गए प्रत्येक कर्म का फल यदि समाज को मिलता है तो समाज स्वस्थ और बलवान होता है और उसके साथ हमारा भी कल्याण होता है, क्योंकि समाज की हम ही एक इकाई हैं।

गाँवभर की स्त्रियाँ मिलकर एक-जैसा पूजन करें तो उनमें एक ही तरह की तन्मयता और निष्ठा जगेगी। महालक्ष्मी व्रत तो सब अवस्था और जाति की स्त्रियाँ मिलकर करती हैं। भादों की अष्टमी को—जिस दिन यह पूजन आरम्भ किया जाता है उस दिन सभी स्त्रियाँ एक साथ मिलकर किसी नदी, तालाब या जलाशय पर स्नान के लिए जाती हैं और स्वच्छ होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करती हैं। उसके बाद साफ़ स्थान देखकर एक पटा रखती हैं और महालक्ष्मी की पूजा करने की भावना से उनका आवाहन करती हैं। एवं आपस में उनकी महिमा का यशोगान करती हैं। इस सम्मिलित आवाहन से उनके विश्वास के अनुसार महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है।

इस सम्बन्ध में एक पुरानी कथा इस प्रकार है कि—एक राजा के दो रानियाँ थीं। एक के सिर्फ़ एक लड़का था और दूसरी के बहुत-से लड़के थे। महालक्ष्मी पूजा की तिथि आई। छोटी रानी के बहुत-से लड़कों ने एक-एक लौंदा मिट्टी का लाकर एक हाथी बनाया तो बड़ा भारी हाथी बन गया। रानी ने बड़े चाव से उस मिट्टी का पूजन किया।

परन्तु बड़ी रानी, जिसके एक ही लड़का था, चुपचाप सिर नीचा किए बैठी रही। लड़के ने माँ से उदासी का कारण पूछा तो वह बोली—बेटा ! मेरे भी यदि आज कई लड़के होते तो मैं भी इतना बड़ा हाथी बनाकर पूजती। लड़के ने माँ से कहा—माँ ! तुम पूजन की व्यवस्था करो। मैं तुम्हारे लिए इससे बड़ा हाथी लाए देता हूँ। निदान वह लड़का इन्द्र के पास गया और वहाँ से अपनी माँ के पूजन के लिए एरावत हाथी को माँग लाया। माता ने बड़े प्रेम से उसका पूजन किया और कहा—बेटा ! इस हाथी पर बैठकर माँ लक्ष्मी स्वयं आवें और गाँव भरके लोग उनका दर्शन करें। तभी मैं तेरा जन्म सफल मानूँगी। इस पर बेटे ने माँ लक्ष्मी की प्रार्थना की जिससे प्रसन्न होकर वह वहाँ प्रकट हुईं और हाथी पर सवार होकर उसकी माँ के सामने आईं। माँ ने बड़ी श्रद्धा से उनका पूजन किया। लक्ष्मी ने कहा—बेटी ! मैं तेरे पुत्र के पुरुषार्थ पर प्रसन्न हूँ। इसलिए यह आशीर्वाद देती हूँ कि तेरे घर में तो मेरा वैभव चमकता ही रहेगा। साथ में इस गाँव के व्यक्ति श्रम और पुरुषार्थ को जब तक महत्ता देते रहेंगे तब तक यहाँ दुख और दरिद्र का वास नहीं होगा। यह सुनकर माँ लक्ष्मी तो अन्तर्धान हो गईं मगर गाँव का प्रत्येक परिवार समृद्धिशाली और सुखी हो गया।

39. पद्मा एकादशी

भाद्रपद शुक्ला एकादशी

भादों के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पद्मा या वामन एकादशी कहते हैं। इस दिन क्षीर सागर में शेष शय्या पर सोये हुए भगवान् करवट लेते हैं। आज के दिन वामन भगवान् के नाम का व्रत किया जाता है और उन्हीं का पूजन किया जाता है।

40. चर्खा द्वादशी

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी अथवा २ अक्टूबर को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म दिन सारे देश में मनाया जाता है। कुछ लोग गांधो को राजनैतिक नेता मानते हैं। इसलिए हो सकता है कि इस धर्म ग्रंथ में उनका नाम देखकर चौंक। परन्तु गांधीजी को केवल राजनैतिक नेता मानना एक भूल है। उनके जीवन का लक्ष्य तो भगवद्दशन था। वह बड़े पक्के आस्तिक और धर्म का पालन करने वाले महापुरुष थे। उन्होंने ईश्वर के दो रूप माने थे। एक साकार और दूसरा निराकार। निराकार रूप में वह परमेश्वर को सत्य मानते थे और साकार रूप में दरिद्र नारायण को ईश्वर का स्वरूप मानते थे। कुछ लोगों ने इस द्वादशी का नाम मोहन द्वादशी रखा था, किंतु गांधीजी को अपनी जयन्ती मनाना अच्छा नहीं लगता था। लोगों को किसी बहाने से यदि दरिद्र नारायण की सेवा का अवसर हाथ आता तो वह उस अवसर को हाथ से जाने नहीं देते थे। इसीलिए उन्होंने इस द्वादशी का नाम चर्खा द्वादशी रखा था। वैसे जब इस तिथी और अंगरेज़ी तारीख में भेद पड़ जाता है तब सप्ताह भर तक चरखा कातने का यज्ञ होता है। गुजरात में इसे रहटा द्वादशी भी कहते हैं।

आज के दिन गांधीजी के लिखे हुए 'हिंद-स्वराज्य' और 'मंगल प्रभात' इन दो ग्रंथों का पाठ अवश्य करना चाहिए और गांधीजी के प्रिय काम करने चाहिएँ। हरिजन सेवा, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम अथवा मुहल्लों की सफ़ाई का काम संगठित रूप में करना चाहिए।

इसके साथ गांधीजी के एकादश व्रत को अच्छी तरह से ध्यान देकर समझना चाहिए और उस पर चलने का संकल्प करना चाहिए। अपने-अपने धर्मग्रन्थों के पाठ के साथ अन्यान्य धर्म ग्रन्थों को भी पढ़ना चाहिए। इससे सर्व धर्म समभाव तो होगा ही पर दूसरों के धर्म में कही हुई अच्छी बातों को समझने का अवसर भो मिलेगा।

गांधी जयन्ती के दिन को बहनों ने खासतौर पर अपनाया है। स्त्री-जाति मोक्ष की, स्वतंत्रता की, ब्रह्मचर्य की और राष्ट्र सेवा की संपूर्ण अधिकारिणी है, इस सिद्धान्त को गांधीजी ने देश के हृदय पर इतनी दृढ़ता के साथ अंकित किया है कि गांधी युग को लोग स्त्रियों के उद्धार का युग कहते हैं। पढ़ी-लिखी बहनें इस काल में अपनी बेपढ़ी बहनों को कुछ ज्ञान देकर और उन्हें विनम्रतापूर्वक प्राचीन आर्य संस्कृति का ज्ञान कराएँ तो देश नव युग के मार्ग में दो क़दम आगे बढ़ जावे।

आज के महत्त्वपूर्ण दिन को व्यर्थ की बातों में नहीं खोना चाहिए। अपने-अपने क्षेत्र में कोई रचनात्मक और ठोस काम करके इसे बनाना चाहिए। इस सप्ताह में गांधीजी के राष्ट्र कार्य और सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन को ऊँचा उठाने वाले सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जितने सार्वजनिक कार्यक्रमों का आयोजन हम कर सकें उतना ही अच्छा है। इस दिन श्रद्धा और प्रेम से भजन और कीर्तन का कार्यक्रम भी रखा जाय तो अधिक अच्छा है।

41. वामन जयन्ती

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

भादों के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु ने वामन रूप से अवतरित होकर पाताल के राजा बलि की परीक्षा ली थी। इसीलिए इस तिथि को वामन द्वादशी भी कहते हैं। लोगों को यह विश्वास है कि जो लोग नियमपूर्वक नदी में स्नान करके यह व्रत करते हैं और वामन रूप हरि का पूजन करते हैं, उनके सभी मनोरथ पूरे होते हैं।

दैत्यराज पुरोचन त्रेता युग के अत्यन्त प्रतापी सम्राट् हो गए हैं। उनका पुत्र बलि भी अपने पिता के समान बलशाली और युद्ध-विद्या

विशारद था। बड़े-बड़े शक्तिशाली लोग, यहाँ तक कि देवता भी उसके नाम से थर-थर काँपा करते थे। एक बार स्वयं लंकेश रावण भी उसके बल की परीक्षा करने गया था। परन्तु लज्जित होकर वहाँ से लौट आया। धीरे-धीरे बलि का प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि देवगण भी उससे सशंकित हो उठे। उसने अपने बाहु-विक्रम से कई देवताओं को जीतकर कैद कर रखा था। इसलिए बहुत-से देवता मिलकर सृष्टि पालनकर्त्ता भगवान् विष्णु के पास अपना संकट निवेदन करने के लिए गए। देवताओं को भयभीत देखकर उन्होंने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें, राजा बलि पर मेरी निगाह है। पर समय की प्रतीक्षा कीजिए। दैत्यराज बलि कोई साधारण मनुष्य नहीं है। वह अपूर्व दानी और तपस्वी है और तपस्वी का तप कभी व्यर्थ नहीं जाता। मैं उसके जीवन-क्रम से बहुत प्रभावित हूँ। इस पर आप लोगों को सशंकित होना उचित नहीं है। वह तपस्वी होने के साथ-साथ बहुत बड़ा स्वाभिमानी और अपने दिये हुए वचनों की रक्षा करने वाला है। आप लोग भी तो कम अभिमान नहीं रखते। बलि ने कुछ देवगणों को बंदी बनाकर आप लोगों के अभिमान को चुनौती दी है। तथापि मैं आप लोगों को वचन देता हूँ कि मैं माता अदिति के गर्भ से जन्म लेकर महाराज बलि के बंधन से देवताओं को मुक्त कर दूँगा।" देवगण यह आश्वासन पाकर अपने-अपने स्थान को चले गए, और भगवान् विष्णु के अवतरित होने की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ समय बाद महर्षि कश्यप की साध्वी पत्नी माता अदिति के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। जन्म के समय शिशु को उन्होंने ग़ौर से देखा कि उसका सिर बहुत बड़ा और हाथ-पाँव छोटे-छोटे थे। इस वामन रूप को देखकर अदिति ने समझ लिया कि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसी रूप में भगवान् ने मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण किया है। परन्तु इस तेजस्वी बालक के जन्म का समाचार सुनकर दैत्यों में बड़ी खलबली मच गई।

पुत्र जन्म से अदिति को जैसी प्रसन्नता हुई, वैसी ही प्रसन्नता हर्मषि कश्यप को भी हुई। भगवान् विष्णु को पुत्र रूप में अपने घर

आया हुआ देखकर वह हर्ष से फूले न समाए। उन्होंने उसी समय अनेक ऋषिगणों को निमंत्रण देकर बुला भेजा और बालक का जात कर्म तथा नामकरण संस्कार किया। यथासमय यज्ञोपवीत संस्कार भी किया। ब्रह्मचारी वेष में यज्ञोपवीत और मृगचर्म पहने हुए वामन बड़े ही सुन्दर दिखाई देने लगे।

उन दिनों राजा बलि एक विशाल यज्ञ कर रहे थे। इस यज्ञ काल में उन्होंने प्रत्येक याचक की इच्छा पूरी करने का संकल्प किया था। वामन रूप-धारी विष्णु इस संकल्प का समुचित लाभ उठाने के आशय से उसके द्वार पर जा पहुँचे। अनेक ऋषि-महात्मा और अपने उच्च कर्मचारियों से घिरे हुए राजा बलि यज्ञ-मंडप में बैठे हुए थे। उसी समय द्वारपाल ने वामन वेषधारी एक ब्रह्मचारी के आगमन की सूचना दी। सुनते ही राजा बलि ने उन्हें आदरपूर्वक दरबार में लाने की आज्ञा प्रदान की। वामन के वहाँ आते ही सभी लोग उनके तेजस्वी वेष को देखकर आश्चर्य-चकित हो गए। वामन वेषधारी ब्रह्मचारी के मुख मंडल पर एक अलौकिक तेज झलक रहा था।

वामन को देखकर महर्षि शुक्राचार्य के मन में संदेह हुआ। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से समझ लिया कि यह वामन कोई साधारण पुरुष नहीं है। इसलिए हो सकता है कि राजा बलि का अमंगल चाहने वाला कोई देवता इस वेष में आया हो। उन्होंने बलि को अपनी भाषा में उससे सावधान रहने का संकेत किया। परन्तु बलि ने उनसे कहा—"गुरुदेव धन और वैभव को मनुष्य पराक्रम से बढ़ा सकता है। उसकी रक्षा कि चिन्ता करके अपने वचन को भंग कर देने वाला मनुष्य पतित हो जाता है। अतः द्वार पर आये हुए अतिथि को निराश नहीं लौटाना चाहिए। यही मेरा निश्चय है।"

शुक्राचार्य ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया परन्तु अपने दृढ़ निश्चय और संकल्प की रक्षा के लिए बलि ने गुरु के वचनों को नहीं माना एवं वामन ब्रह्मचारी को अपने पास बुलाकर पूछा—"क्या माँगना चाहते हो माँगो ?"

वामन ने कहा—"अधिक कुछ नहीं, केवल तीन पैर पृथ्वी का दान

आपसे माँगने मैं आया हूँ। यदि आप इतनी कृपा कर दें तो मैं वेदाध्ययन के लिए एक कुटी बनवा लूँ और उसी में बैठकर विद्याध्ययन किया करूँ।"

बलि ने हाथ में कुशा और जल लेकर अपने कुलगुरु श्री शुक्राचार्य से दान मंत्र उच्चारण करने का आग्रह किया, परन्तु वह मंत्रोच्चारण करने के लिए तैयार नहीं हुए। बलि के आग्रह पर उन्हें मन्त्रोच्चारण के लिए विवश होना पड़ा। बलि ने वामन की इच्छा के अनुसार उन्हें तीन पग पृथ्वी दान कर दी। बलि के हाथ से संकल्प का जल और कुशा हाथ में लेते ही वामन ने अपना अलौकिक तेज प्रकट किया और एक पैर से सारी पृथ्वी नाप ली। दूसरे पैर से सारा आकाश। बाद में वह बलि से बोले—"राजन्! अब तीसरा पैर कहाँ रखूँ?" बलि ने विनम्र होकर ब्रह्मचारी के चरणों में अपना सिर झुकाकर कहा—"प्रभो! अब तीसरा पैर मेरी पीठ पर रख दीजिए।" उस अद्भुत और आश्चर्य-मय दान-कार्य को देखकर स्वर्ग के देवता भी विस्मित हो उठे। चारों ओर बलि की यश दुन्दुभी बज उठी। सभी लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसके बाद दैत्यों के संगठन का तेज घटने लगा। शुक्राचार्य के देखते-देखते उनका बल क्षीण पड़ गया। परन्तु बलि की दानशीलता पर प्रसन्न होकर वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण करने वाले श्री हरि ने उनसे कहा—"राजन्! मेरी आज्ञा है कि तुम आज से पाताल पुरी का राज्य अपने रहने के लिए सम्भाल लो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि वर्ष में चार मास तक प्रतिवर्ष तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हारा राज्य रक्षण किया करूँगा।" इसी वर के अनुसार श्री हरि चतुर्मास का समय प्रतिवर्ष वहाँ बिताते हैं जिसके बारे में देवशयनी एकादशी के प्रकरण में पहले काफी लिखा जा चुका है।

42 अनन्त चतुर्दशी

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी

अनन्त इत्यहं पार्थ मम रूप विबोधय।
योऽयं कालो यथाख्यात: सोऽनन्त इति विश्रुत: ।।

मेरे रूप का अन्त नहीं है। यह काल भी अनन्त है। सब में मैं हूँ। संसार की प्रत्येक वस्तु का अन्त हो जाता है। जड़, चैतन्य, चर और अचर, कोई भी वस्तु इस सृष्टि में ऐसी नहीं है जिस का अन्त न हो। केवल भगवान् ही अनन्त हैं। उन्हीं अनन्त भगवान् के पूजन से अपने जीवन को पवित्र करो यही आज के व्रत का रहस्य है। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे और जवान तथा सभी वर्ण और देश के लोग इस व्रत को कर सकते हैं।

असल में लोकप्रिय वर्षा ऋतु का यह अंतिम उत्सव है। भगवान् विष्णु सृष्टि के पालन करने वाले तथा बनस्पति जगत् के स्वामी हैं। हमारे कृषि प्रधान देश में फ़सल पकने के समीप के समय भगवान् विष्णु का पूजन स्वाभाविक ही है। गरमी की ऋतु में पृथ्वी माता की तपस्या का समय होता है। गरम तवे की भाँति तप उठने तक पृथ्वी गरमी की तपस्या करती और अनन्त आकाश से जीवन-दान की प्रार्थना करती है। वैदिक ऋषियों ने आकाश को पिता और पृथ्वी को माता कहा है 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' और अपने आप को उसका पुत्र माना है। देवी वसुन्धरा का तप देखकर उसके सर्वेश आकाश का हृदय पसीज उठना भी स्वाभाविक है। वह उसपर जल बरसाकर शीतल कर देता है। पृथ्वी अपनी गोद में बाल-तृणों को लेकर हर्ष से प्रफुल्लित हो उठती है। लाखों जीव इस समय पैदा होकर उस माँ की छाती पर खेलने-कूदने लगते हैं। बड़े से बड़े वृक्ष को अपने पोषण के लिए पृथ्वी से रस प्राप्त होता है। पतंगों के भी पंख निकल आते हैं। फूलों के रंगों को भी मात करने वाली तितलियाँ कलियों के साथ क्रीड़ा करती हैं। भ्रमरों की गूंज, पटवीजनों की चमक, कोयल की कुहु निर्जन से

निर्जन वनस्थली को प्रकृति के शयन कक्ष की भाँति बना देती हैं। इस अवसर पर अनन्त भगवान् का स्मरण जीवन को सरसता से भरपूर बना देता है।

संतप्त पृथ्वी को यह निधियाँ जल से प्राप्त होती हैं। इसलिए शुद्ध जल से भरा हुआ घट स्थापित करके, उसके पास चौदह गांठ बांधकर एक डोरा रखा जाता है। और तब उसकी पूजा की जाती है। चौदह गांठ वाले डोरे का विधान इसलिए है कि इस व्रत में चौदह ग्रंथि देवताओं का पूजन है, जैसा नीचे लिखे हुए श्लोक में कहा गया है :—

नव्यदौरे विष्णुरग्निस्तथा सूर्यः पितामहः।
इन्दुः पिनाकी विघ्नेशैः स्कंदः शक्रस्तथैव च
वरुणः पवनः पृथिवी वसवो ग्रंथि देवताः।
सूत्र ग्रंथिषु संस्थाय अनन्ताय नमो नमः॥

पृथ्वी और अनन्त के साथ जन का यह सम्बन्ध नया नहीं है। यह पृथ्वी हमारे पूर्वजों की भी जननी है। उसकी गोद में जन्म लेकर हमारे पूर्व पुरुषों ने बड़े-बड़े पराक्रम के काम किए हैं।

यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रिरे।

—अथर्ववेद पृथ्वी सूक्त ५

उन पराक्रमों की कथा हमारे जन जीवन का इतिहास है। उसी जन की हर्ष से भरी हुई किलकारियों का गीत, नृत्य और मंगलोत्सव जन संस्कृति के द्वारा लोक की आत्मा को प्रकाशित करते हैं। पृथ्वी पर जो ग्राम और अरण्य हैं उनमें भी इसी संस्कृति के अंकुर फूले हैं। वेदों में उसी तथ्य को इन शब्दों में प्रकट किया गया है।

ये ग्रामा यदरण्यं समा अधि भूम्यां।
ये संग्रामा समितयास्तेषु चारु वदेम ते॥—पृ० सू० ५६

इस पृथ्वी पर जो भी ग्राम अथवा बन हैं, जो सभाएँ अथवा ग्राम समितियाँ हैं, जो सार्वजनिक सम्मेलन (मेले) हैं, उनमें माँ वसुंधरे! हम तुम्हारे लिए सुन्दर भाषण करें।

सुन्दर भाषण का अर्थ है माँ वन्सुधरा का प्रशंसा-गान। उसमें हमारी वाणी उदार हो। सभा और समितियों को वेदों में प्रजापति

ब्रह्मा की पुत्रियाँ कहा गया है। राष्ट्रीय जीवन के साथ उनका मिलकर काम करना अत्यन्त आवश्यक है। भूमि, जन और जन की संस्कृति ये तीनों मिलकर राष्ट्र कहलाते हैं। इसलिए अनन्त चतुर्दशी के दिन राष्ट्रीय स्तर पर व्रत करने का विधान है। अत्यन्त उत्साह के साथ पकी हुई फ़सल का बीज लाया जाता है और फ़सल देने वाले इन्द्र, वरुण, गणेश, सूर्य, चंद्र आदि देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अनन्त भगवान् का श्रद्धा सहित पूजन किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा जो लोक में प्रचलित है वह इस प्रकार है :—

"सत्य युग में सुमन्त नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम दीक्षा था। उनकी शुभ लक्षणों से युक्त शीला नाम की एक कन्या थी। जब शीला कुछ सयानी हुई तब दैवयोग से उसकी माता दीक्षा का शरीरान्त हो गया। तब सुमन्त ने कर्कशा नाम की एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया और कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण के साथ शीला का विवाह कर दिया। सुमन्त के मन में अपनी कन्या को कुछ धन देने की इच्छा हुई। परन्तु कर्कशा ने वैसा करने से उसे रोक दिया और एक बक्स में बहुत-से ईंट-पत्थर भरकर लड़की के साथ भेज दिए।

पत्नी को साथ में लिये हुए कौंडिन्य मार्ग में यमुना नदी के किनारे ठहरे। वहाँ कुछ स्त्रियाँ अनन्त भगवान् का पूजन कर रही थीं। नव विवाहिता शीला ने उनके पास जाकर पूजन में भाग लिया और विधि के अनुसार एक डोरे में चौदह गाँठें बाँधकर उसे केसर के रंग में रंगा और अनन्त भगवान् का पूजन करके डोरा अपने हाथ में बाँध लिया। शीला के घर आते ही कौंडिन्य का घर जगमगा उठा। सारा गृह धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया।

एक दिन कौंडिन्य ने ससुराल से मिले हुए बक्स को खोलकर देखा तो बड़े क्रोधित हुए और शीला के हाथ में पीला धागा बँधा देखकर यह समझा कि उसे वश में करने के लिए शीला ने कोई यंत्र बाँध रखा है। उसने उसे छीनकर आग में डाल दिया। शीला बड़ी दुखी हुई और आग में से उस डोरे को निकालकर दूध में भिगोकर फिर हाथ

में बाँध लिया। किंतु कौंडिन्य के घर से धीरे-धीरे सारी सम्पदा खिसकने लगी। सारा माल असबाब चोर चुराकर ले गए। घर में दरिद्रता आ गई। नाते-रिश्ते के लोगों ने साथ छोड़ दिया। शीला ने कौंडिन्य से कहा—"स्वामिन्! आपने बात की असलियत जाने बिना मुझपर शंका करके भगवान् अनन्त का तिरस्कार किया है। आप को इस अपराध का प्रायश्चित्त करना चाहिए। तभी हम लोग फिर से सुखी हो सकेंगे। इस जीवन में अनावश्यक शंका नहीं करनी चाहिए।"

कौंडिन्य अपनी पत्नी से अनन्त भगवान् की महिमा सुनकर गहरे बन में चले गए और निराहार रहकर भगवत्स्मरण करने लगे। एक दिन उन्होंने बन में एक आम का वृक्ष देखा, जो फलों से लदा हुआ था परन्तु उस पर न तो कोई पंछी बैठता था और न कोई कीड़ा-मकोड़ा उस पर चढ़ता था। कौंडिन्य ने उस वृक्ष को देखकर उससे पूछा—"हे महाद्रुम! क्या तुमने भगवान् अनन्त को देखा है?" उस वृक्ष ने कहा—"हे ब्राह्मण! मैंने आज तक किसी अनन्त का नाम भी नहीं सुना।"

इसके बाद कौंडिन्य ने एक बछड़े सहित गाय देखी। वह घास के बीच में इधर-उधर दौड़ रही थी। कौंडिन्य ने उससे पूछा—"हे धेनु! क्या तुमने कभी इस बन में अनन्त भगवान् को देखा है?" गाय ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मण! मैं अनन्त को नहीं जानती।"

आगे बढ़ने पर उसने हरी घास पर बैठे हुए एक बैल को देखा। कौंडिन्य ने उससे भी वही प्रश्न किया—"हे बैल! क्या तुमने अनन्त नाम धारी किसी देवता को इस बन में देखा है?" बैल ने कहा—"नहीं, मैंने अनन्त को नहीं देखा।"

इसके बाद एक हाथी और एक गधा मिला। ब्राह्मण ने उनसे भी वही पूछा। उन दोनों ने बड़े तिरस्कार भरे शब्दों में कहा—"हमने किसी अनन्त नाम धारण करने वाले को आज तक नहीं देखा।" कौंडिन्य ने सोचा कि दुनियाँ का कोई प्राणी जिस अनन्त को नहीं जानता और आजतक उसे न किसीने देखा और न सुना। वह अनन्त कौन है? कैसा है और कहाँ रहता है? ब्राह्मण इसी चिंता में थककर एक ओर बैठ

गया। थोड़ी देर में श्री अनन्त भगवान् एक वृद्ध ब्राह्मण के वेष में प्रकट हुए और कौंडिन्य का हाथ पकड़कर अपनी पुरी में ले गए। उस पुरी का वैभव और शान्त वातावरण देखकर ब्राह्मण को बड़ा संतोष हुआ और उसने वृद्ध तपस्वी से पूछा--भगवान् ! आप कौन हैं ? और यह कौन-सी नगरी है ?''

यह सुनकर प्रभु ने अपना वृद्ध ब्राह्मण का वेष दूर करके शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति के रूप में दर्शन दिए और ब्राह्मण से कहा—"हे विप्र ! मैं ही अनन्त हूँ। अपनी साध्वी पत्नी के पुण्य-बल से ही तुम मेरा साक्षात् कर सके हो। उसका कभी भी तिरस्कार मत करना।" ब्राह्मण ने प्रभु को प्रणाम करके प्रश्न किया कि देव ! आप इतने दुर्लभ हैं कि मार्ग में मिले हुए कोई भी प्राणी मुझे आपके बारे में कुछ नहीं बता सके। इसका क्या कारण है ? श्री भगवान् अनन्त ने कहा--"विप्र ! तुम्हें मिलने वालों में सर्व प्रथम एक आमका वृक्ष था। वह वृक्ष पहले एक ब्राह्मण था जो पंडित होने के साथ बड़ा घमंडी था और अपने शिष्यों को भी पूरी विद्या का रहस्य नहीं बताता था इसीलिए वह वृक्ष बन गया। दूसरी बछड़े समेत गाय थी जो स्वयं पृथ्वी थी। तीसरा बैल था जो साक्षात धर्म था। दो तलैया जो तुमने देखी थी वे पूर्व जन्म में सगी बहनें थी। किंतु वे जो दान करती थीं आपस में ही बाँट लेती थीं इसलिए वे तलैयाँ बनीं। जो हाथी मिला वह धर्म द्वेषी था और गधा एक लोभी ब्राह्मण था। वह बूढ़े बनकर तुम्हारे पास आए थे। तुम निश्चय समझ लो दुर्गुणी पुरुष मुझे कभी भी नहीं पा सकते चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों। मुझे तो सरलता का गुण रखने वाले ही पा सकते हैं। वह गुण तुम्हारी पत्नी में है। इसलिए यह उसी की पुण्य साधना का प्रभाव था कि तुम मुझे पा सके। कौंडिन्य भगवान् अन्नत की भक्ति से ओतप्रोत होकर अपने घर लौटे और अपनी भोली-भाली साध्वी पत्नी का आदर करने लगे। उनका घर फिर से धन-धान्य से भरपूर हो गया और घर में सुख-शान्ति का साम्राज्य छा गया।

43. उमा महेश्वर व्रत

भाद्रपद पूर्णिमा

भादों के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को उमा महेश्वर व्रत किया जाता है। इसके माहात्म्य का वर्णन मत्स्य पुराण में किया गया है। कहते हैं कि एक बार महर्षि दुर्वासा कैलास वासी शंकर के दर्शन करके लौट रहे थे। राह में उन्होंने भगवान् विष्णु को भी घूमते हुए देखा। शंकर जी की दी हुई विल्व पत्र की माला उन्होंने विष्णु को दे दी। भगवान् विष्णु ने वह माला अपने वाहन गरुड़ के गले में डाल दी। इस पर दुर्वासा ऋषी को बड़ा बुरा लगा। उन्होंने भगवान् विष्णु से कहा—"आपने शंकर की माला का अपमान किया है, इसलिए आप अपने विष्णुपद से भ्रष्ट हो जाएँगे।"

श्री विष्णु अपने पद से भ्रष्ट होकर बन में भटकने लगे। एक दिन समाधिस्थ शंकर ने अपने ध्यान में उनकी दशा देखी तो वह दुखी होकर उनके पास गए और उन्हें प्रणाम करके शाप से मुक्त कर दिया। इस व्रत का आशय यही है कि शिव और विष्णु में किसी भी प्रकार का वैर-विरोध नहीं है। विष्णु भगवान् को भी प्रमाद के कारण सजा भुगतनी पड़ी। कर्म की गति ऐसी ही प्रबल होती है।

44. महालयारम्भ

आश्विन कृष्णा प्रथमा

आश्विन कृष्णा प्रतिपदा से महालयारम्भ होता है और अमावस्या को पूर्ण होता है। इस पूरे पक्ष को पितृपक्ष कहते हैं। इसमें अपने मृत पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित

करने के लिए और जीवन वृक्ष में लगे हुए मृत्यु फल की चिर स्मृति क़ायम रखने के लिए इस पक्ष का प्रत्येक दिन एक अमर संगीत का राग सुनाता है।

भारतीय संस्कृति में मृत्यु के संबंध में जो विचार व्यक्त किए हैं वे अत्यन्त भव्य हैं। उनमें मृत्यु की भीषणता को भी केवल वस्त्र परिवर्तन माना गया है जैसा गीता में भगवान् श्री कृष्ण का कथन है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यिन्यनि संयाति नवानि देही॥

अर्थात्—मरना मानों वस्त्र बदलना है। एक कपड़ा पुराना हो गया तो नया वस्त्र बदल लिया गया। यही मृत्यु है। उसे बुरा क्यों मानें ? जीवन और मृत्यु दोनों मंगलभाव हैं। जीवन में मृत्यु का फल लगता है और मृत्यु में जीवन का।

प्रकृति माता कोई दरिद्रा तो है नहीं। उसके भंडार में अन्नत कोटि वस्त्र भरे हुए हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपने कपड़े को फाड़ डालें। जहाँ तक हो सके उन्हें सम्हालकर पहनें और उसका ठीक-ठीक उपयोग करें। जब तक जिएं तभी तक सारे नाते-रिश्ते मानते रहें और मरते ही वह सारे उपकार जो जीवन में मरने वाले ने किए थे उन्हें भुला दें। यह तो अकृतज्ञता हुई। उस अकृतज्ञता को ही क्यों न मिटाया जाय। इसीलिए पितृपक्ष मनाया जाता है। हमारा परिवार या उसमें जो भी सुख-समृद्धि है वह उन्हीं पूर्वजों की संचय की हुई दौलत ही तो है।

यदि मृत्यु न होती तो यह संसार कितना विषम होता। इसीने तो नए-से-नए फूलों को रोज विकसित होने का अवकाश दिया है। अमर होकर रहने में जीवन की नवीनता कैसे आती। इसीलिए तो यह महा-निर्वाण का पर्व है। एक अमर आशा की झलक उसकी तह में दिखाई देती है। वह आत्मा और परमात्मा की एकता का मंगल राग है। उस राग को जीवन में हँसते-हँसते दुहराते रहना चाहिए। उस पर दुखी होकर रोना या चिल्लाना व्यर्थ है। पूर्वजों की चिरस्मृति के उस पर्व को श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाना ही इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है।

45. जीवित्पुत्रिका व्रत

आश्विन कृष्णा अष्टमी

आश्विन कृष्णा अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियाँ इस पर्व के दिन उपवास करती हैं। इससे सन्तान का अल्पायु योग दूर होता है। वे इसे निर्जल सम्पन्न करती हैं। इसके बारे में एक प्राचीन कथा प्रचलित है। वह इस प्रकार है :—

प्राचीन काल में जीमूत वाहन नाम के एक बड़े धर्मात्मा और प्रतापी नरेश थे। एक बार वह बन विहार के लिए गए हुए थे। संयोगवश उसी बन में मलयवती नाम की एक राजकन्या देव-पूजन के लिए आई हुई थी। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और प्रेम पाश में बँध गए। राजकन्या के पिता और भाई ने मलयवती का विवाह जीमूतवाहन के साथ करने का पहले ही निश्चय कर रखा था। मलयवती के भाई भी आखेट के लिए उसी बन में आये हुए थे। उन्होंने इन दोनों के पारस्परिक मिलन को देख लिया। राजकुमारी तो चली गई किंतु विरह-ज्वाला में दग्ध महाराज जीमूतवाहन के लिए वही बन पुण्य-स्थली बन गया, वे वहीं घूमने लगे। घूमते-घूमते एक दिन उन्होने किसी के रोने की आवाज़ सुनी। महाराज ने उस स्थान पर पहुँच कर रोने वाले से दुख का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि शंखचूर्ण सर्प की माता इसलिए विलाप कर रही थी कि उसका इकलौता पुत्र आज गरुड़ के आहार के लिए जा रहा है। राजा ने माँ को शान्त किया और जो स्थान गरुड़ के आहार के लिए नियत था उस स्थान पर सर्प की जगह वह स्वयं लेट गए। गरुड़ ने आकर जीमूतवाहन पर अपनी चोंच मारी। राजा चुपचाप पड़े रहे। गरुड़ को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि यह कौन है। परन्तु जीमूतवाहन ने गरुड़ से कहा कि—"आपने भोजन बंद क्यों कर दिया ?"

गरुड़ ने राजा को पहचानकर बड़ा खेद प्रकट किया। मन में सोचा कि यह भी एक प्राणी है जो दूसरे का प्राण बचाने के लिए अपनी

जान दे रहा है। और एक मैं हूँ जो अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरे के प्राण ले रहा हूँ। इस अनुताप के कारण गरुड़ ने राजा को छोड़ दिया और वर माँगने को कहा। राजा ने कहा कि आज तक आपने जितने सर्प मारकर खाए हैं उन्हें जीवित कर दीजिए और आगे से सर्पों को न मारने का वचन दीजिए। गरुड़ एमवस्तु कहकर चले गए। सर्पों की माता ने भी प्रसन्न होकर राजा को आशीर्वाद दिया और अपने पुत्रों से उनकी खेती की रक्षा करने को कहा। खेत के चूहों को खाकर सर्प उस दिन से हमारे खेतों की रक्षा करने लगे।

कीट, पतंग, पशु, पक्षी, वृक्ष और वनस्पति आदि से ऐसी ही आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न भारतीय संस्कृति में किया गया है। मनुष्य की शक्ति सीमित है। लेकिन उसी सीमित शक्ति से जो कुछ वह कर सकता है उसे करने का आदेश भारतीय संस्कृति ने दिया है। हम सारे जीवों की रक्षा नहीं कर सकते किन्तु प्रेम तो सबसे कर ही सकते हैं। उसका परिणाम शुभ होता है और मानव का कल्याण होता है।

राजा जीमूतवाहन जब वहाँ से उठकर चलने को तैयार हुए तब मलयवती के पिता और भाई उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे और आदर के साथ उन्हें अपने घर ले गए। उस दिन आश्विन की कृष्णाष्टमी थी। घर आकर मलयवती के पिता ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया।

46. इन्दिरा एकादशी

आश्विन कृष्णा एकादशी

अधोगति को प्राप्त हुए पितरों को गति देने वाली इन्दिरा एकादशी आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में पड़ती है। ब्रह्म वैवर्त पुराण में

कहा गया है कि—महिष्मती नगरी में सतयुग में इन्दुसेन नाम का एक राजा था। उससे एक दिन देवर्षि नारद ने कहा कि मैं यमलोक में तुम्हारे पिता को बड़ा दुखी देखकर आया हूँ। इसलिए तुम इन्दिरा एकादशी का व्रत करके उनको सुखी करो। नारद ने राजा को व्रत करने की विधी भी बता दी। जिसे करके राजा ने अपने पिता को स्वर्ग में पहुँचा दिया। उसी नरेश को देखकर समाज के लोगों ने उस विधि के अनुसार इस व्रत को करना आरम्भ कर दिया।

47. पितृ अमावस्या

आश्विन अमावस्या

जिन पितृ-पूर्वजों की निधनतिथि हमें स्मरण न हो उन सबका श्राद्ध आज के दिन किया जाता है। अमावस्या उस तिथि का नाम है जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा एक सीध में रहते हैं। अमावस्या पितृ-कार्य का दिन है और चन्द्रलोक ही पितृ-लोक है। दूसरे दिन से शुक्ल पक्ष का आरम्भ होता है। अंधकार से प्रकाश का मार्ग खुलता है। मृत पितृ अन्धकार से प्रकाश मार्ग पर अग्रसर हों इसलिए अमावस्या का श्राद्ध करके उन्हें विदा दी जाती है। इस दिन शौच स्नान आदि से निवृत होकर किसी नदी के तीर अथवा जलाशय के निकट शान्त-चित से पितरों का तर्पण करके योग्य पात्रों को दान करना चाहिए।

48. नवरात्रि

आश्विन शुक्ला प्रतिपदा

विक्रमीय संवत्सर की काल गणना के अनुसार एक मास में दो पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष में १५ दिन के हिसाब से वर्ष में ३६० दिन होते

हैं। इन ३६० दिनों में चालीस (४० × ९ = ३६०) नवरात्र होते हैं। हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। इसलिए जिन दो नवरात्रियों को महत्त्वपूर्ण मानकर अधिकतर देवकार्य किए जाते हैं वह वही नवरात्रियाँ हैं जिनमें प्रकृति माता की देन के रूप में अन्न पककर हमारे घरों में आता है। इनमें एक शारदीय और दूसरी चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक वासन्तीय होती है। इस काल के निर्धारण में हमारे प्राचीन गणित आचार्यों ने बड़ी योग्यता से काम लिया है। क्योंकि ऋतु विज्ञान के तत्त्ववेत्ताओं ने जीवन का मूल अग्नि और सोम को माना है। उनके धर्म गर्मी और सर्दी हैं। उन दोनों का आरम्भ अपने-अपने ढंग से इन्हीं ऋतुओं में होता है। और दोनों नवरात्रियाँ उनके आरम्भ काल में मनाई जाती हैं। इस अवसर पर नवीन धान्य के साथ-साथ नवीन शक्ति का सञ्चय भी मानव को करना चाहिए। इसलिए इन नवरात्रियों में प्रायः महाशक्ति का भिन्न-भिन्न रूपों में पूजन किया जाता है। महाशक्ति के तीन रूप प्रधान माने जाते हैं—'महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती।' दुर्गा सप्तशती में उन तीनों स्वरूपों के गुण और पराक्रम का वर्णन हुआ है। अट्ठारह अध्याय के इस छोटे से ग्रंथ में तीन चरित्र हैं। प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र और उत्तम चरित्र। तीनों चरित्रों में शक्ति स्वरूपा माँ दुर्गा के अद्‌भुत पराक्रम का उल्लेख है।

इस ग्रंथ के मध्यम चरित्र में एक बड़ी लोकोपकारक कथा का वर्णन हुआ है। वह इस प्रकार है कि पूर्वकाल में देवताओं और असुरों में पूरे सौ वर्ष तक घोर संग्राम हुआ। उसमें असुरों का स्वामी महिषासुर था और देवताओं के स्वामी इन्द्र थे। महिषासुर सामन्तशाही को मानने वाला और साम्राज्यवादी था। अग्नि, वायु, चंद्र, इन्द्र, यम आदि सभी देवगण के अधिकार उसने छीन लिए थे। और उन्हें अपना बंदी बना लिया था तथा उनके सभी कामों को खुद चलाने लगा।

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेश गरुड़ध्वजो ॥४॥

तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजी को आगे करके उस स्थान पर गए जहाँ भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे। परमात्मा ने

जो व्यवस्था सृष्टि की कर रखी थी उसे उसने अस्त-व्यस्त कर डाला। इसी बारे में उन्होंने सब बातें प्रभु से कहीं। उसे सुनकर विष्णु और शंकर दोनों में पुण्य-प्रकोप जाग उठा। उससे एक महाशक्ति का अवतरण हुआ। सभी देवताओं ने उस महाशक्ति को अपने अलंकार आयुध और तेज से मंडित किया। तब उस महाशक्ति से असुरों का युद्ध हुआ जो दशमी तक चला। उसी देवी शक्ति की जीत का त्यौहार नवरात्रि है।

इस विजय से असुरों का ह्रास हुआ। जगत् की बिगड़ी हुई परम्पराओं को देवताओं ने फिर से मिलकर सुधारा। अनुकूल वायु प्रवाहित हुई। वर्षा ने पृथ्वी का ताप हरण किया, दिशाएँ खिल उठीं। त्रस्त लोगों को महाशक्ति का वरदान मिला। वे निर्भय हो गए। सप्तशती के तीसरे चरित्र में महासरस्वती के चित्र का वर्णन है। धरती ने अभी हरित परिधान नहीं छोड़ा था। परिपक्वं धान्य सुवर्ण का रंग लिये हुए खेतों में शोभायमान हो रहा था। उस समय देवों ने भी शारदा का ध्यान किया। जिस रूप में माँ शारदा प्रकट हुईं उसका वर्णन सप्तशती के के इस श्लोक में किया गया है :—

घंटा शूल हलानि शंख मुशले चक्रं धनुः सायकं।
हस्ताब्जेर्दधतीं घनान्त विलशच्छीतांशु तुल्य प्रभाम्॥
गौरी देह समुद्भवाम् त्रिजगतांमाधारभूतामहा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमऽनुमजे शुम्भादि दैत्यार्दिनीम्॥

अर्थात्—जो अपने कर कमल में घंटा, शूल, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण किये हुए, शरद्ऋतु के स्वच्छ चन्द्रमा के समान शुभ्र और शीतल कांति वाली, तीनों लोकों की आधारभूता, शुंभ और निशुंभ आदि दैत्यों का मद मर्दन करने वाली माँ सरस्वती वहाँ प्रकट हुईं।

माँ शारदा के प्रकट होते ही चारों ओर ऋद्धि-सिद्ध चमक उठीं। घर-घर में समृद्धि छा गई। वह माँ किस अवस्था वाली है यह कौन जाने मगर अपनी शक्तिदायिनी स्तन्य धारा से उसने जन-जन का कंठ सिञ्चित किया। तब से वह बराबर अखिल ब्रह्माण्ड को अपने प्रभाव में लेकर

उसका पालन कर रही हैं। हमारी बालोचित क्रीड़ा पर विमुग्ध होकर वह पवित्रता, वात्सल्य करुणा और दया का वरद हस्त हमारे अंग-अंग पर फेरती है। उसका वर पाकर मानव कृतकृत्य हो जाता है। उसकी गंध से सारा दृश्य जगत् सुरभित है। उसके सौरभ का आकर्षण सर्वत्र है। वह श्रद्धा, दया, क्षमा निद्रा, शक्ति और ओज आदि से मानव का जीवन उपकृत करे यही प्रार्थना देवी सूक्त के मंत्रों में कही गई है।

या देवी सर्व भूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

माँ के रूप में उसी शक्ति का पूजन ही नवरात्रि महोत्सव का लक्ष्य है।

49. विजया दशमी

आश्विन शुक्ला दशमी

विजयादशमी विजय की प्रेरणा देने वाला त्यौहार है। सारे देश में यह त्यौहार आश्विन शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार यह क्षत्रियों का राष्ट्रीय पर्व है। परन्तु इस दिन के साथ कई प्रकार की कथाएँ जुड़ी हुई हैं। ब्राह्मणों तथा बुद्धिजीवियों का सरस्वती पूजन या वेदारम्भ; क्षत्रियों का शस्त्र पूजन तथा सीमोल्लंघन, वैश्यों की खेती और शूद्रों की परिचर्या, सभी बातें इस दिवस में समाविष्ट हैं। इसलिए विजयादशमी या दशहरा हमारा राष्ट्रीय पर्व है। जब गाँव के लोग नवरात्रि के सोने जैसी पीली-पीली जौ की नवीन कोंपलों को अपने-अपने कानों में खोंसे हुए गाते-बजाते गाँव की सीमाएँ लाँघकर दूसरे गाँव वालों को उसे प्रदान करने के लिए निकलते हैं। तब ऐसा लगता है कि मानो सारे देश का पौरुष अपनी छटा दिखाने के लिए बाहर निकल खड़ा हुआ हो।

कहा जाता है आज के दिन भगवान् श्री राम ने लंका पर विजय प्राप्त की थी। रीछ और बानरों का दल किलकारियाँ भरता हुआ संसार की बुराइयों को जीतने के लिए कृतसंकल्प हो चल पड़ा था, उसे सफलता मिली थी। वे बुराइयाँ ही तो मानों साक्षात् दशग्रीव रावण है। उसने सारे देश में आतंक मचा रखा था। सब लोग उससे त्रस्त थे। देवता तक उसके बन्दी हो चुके थे। सज्जन तथा सतोगुणी ऋषि और महात्मा उसके भय से भयभीत थे। वह उन्हें भी मारकर खा जाता था। एक बात जो उसमें सबसे भयानक थी वह यह थी कि किसी प्रकार उसका अंत नहीं हो पाता था। यदि एक सिर कटता था तो दूसरा अपने आप आकर जुड़ जाता था। यही हाल तो जगत् की बुराइयों का भी है। यदि एक को रोको तो दूसरी अपने आप उसके स्थान पर कहीं से फट पड़ती है। वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है कि उस नर विरोधी भयंकर राक्षस के पास अपार सैन्य बल था। भौतिक शक्तियाँ सब उसके पास थीं। जिन्हें पाकर उसे किसी विघ्न-बाधा का भय नहीं था। वह निश्चिंत था। श्री राम ने उस पर विजय पाई यानी दुनिया से बुराइयों का खतमा करके एक ऐसे राज्य की नींव डाली जो आपस के प्यार और मुहब्बत तथा सद्‌गुणों के आधार पर चला। उनके संयम और तेज तथा साहस के आगे भौतिक शक्तियाँ विफल हुईं। रावण का अंत हो गया। परन्तु बुराइयों के प्रति जो हमारी सामाजिक घृणा थी वह अभी तक जागृत है इसीलिए आज भी प्रति वर्ष हम रावण का पुतला बनाकर फूंकते हैं। हालांकि उसके असली तथ्य और श्रीराम के सत्य लक्ष्य से हम दूर हट गए हैं। इसलिए दशहरा भी हमारा चिह्न पूजामात्र रह गया है। लोग रामलीला तो बड़े प्रेम से देखते हैं परन्तु समाज में रावण के शीश की भांति जो बुराइयाँ पनपती जाती हैं उनका अंत करने के लिए उत्साहित नहीं होते। आज के दिन तो हमें मिलकर दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि हम बुराइयों से डटकर लोहा लेंगे और उन पर विजय प्राप्त करेंगे। यही इस त्यौहार का वास्तविक उद्देश्य है।

50. पापांकुशी एकादशी

आश्विन शुक्ला एकादशी

आज के दिन व्रत के साथ मौन रहकर पद्मनाभ भगवान् का स्मरण करने से मन के तापों का शमन होता है। ब्रह्मांड पुराण में इसका बड़ा महात्म्य कहा गया है। भगवान् के स्मरण से मन में निर्मलता उत्पन्न होती है और जीवन में सद्गुणों का विकास होता है। एक बार फलाहार करने से शरीर भी हल्का और शुद्ध होता है।

51. शरद पूर्णिमा

आश्विन पूर्णिमा

शरद पूर्णिमा रात्रि का उत्सव है। बाकी उत्सव प्रायः दिन में ही मनाए जाते हैं। शरद पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं के साथ अपना सौन्दर्य पृथ्वी पर उँडेलता है। यह माना जाता है कि पूर्णिमा की रात को चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है। अतः चित्त की शांति के लिए चन्द्रमा की चांदनी का सेवन आवश्यक है। वह पित्त कोप का शमन करता है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार शरद-रात्रि भगवान् के महारासोत्सव की रात्रि है। उसका वर्णन महर्षि वेदव्यास ने दशम स्कन्ध के पाँच अध्यायों में बड़ी सुन्दरता से किया है। मेरे एक मित्र ने एक बार मुझसे कहा कि—"यदि श्री कृष्ण का अवतार न होता तो हमारे देश के कवि और चित्रकार तो भूखे ही मर जाते।" मुझे उनकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इसलिए मैंने पूछा—"क्यों ?" वह बोले—"श्री कृष्ण की लीलाओं को लेकर यहाँ के कवियों ने जैसी-जैसी कविताएँ लिखीं और चित्रकारों ने जैसे-जैसे चित्र बनाए उनसे जन-साधारण में व्याप्त विषय-

लोलुपता की प्रवृत्ति को बल मिला।" बात बहुत दूर तक सत्य-सी प्रतीत हुई। वास्तव में श्री कृष्ण को लेकर जिस तरह की कविताओं से हिन्दी और संस्कृत साहित्य को भरा गया है और जिस तरह के चित्रों की भरमार तसवीरों की दुकानों पर मिलती है उसके आगे आज के सिनेमा के पोस्टर्स की अश्लीलता भी शरमा जाती है। यह बड़ी लज्जा की बात है। जिन श्री कृष्ण को महर्षि वेदव्यास जैसे विचक्षणों ने जगद्गुरु के रूप में लिखकर अपने साहित्य को संजोया; उनके बारे में अश्लीलता के काव्य और चित्र बनाना महान् सामाजिक द्रोह है। उन्हें रोकने का पहले प्रयत्न होना चाहिए। व्यास भगवान् के सामने तो श्री कृष्ण एक पार्थिव रूप में नहीं वरन् एक प्रतीक के रूप में थे, जिनके आदर्शों से जीव अपने उत्थान की प्रेरणा प्राप्त करता है।

गोकुल में श्री कृष्ण की कल्पना ही एक आध्यात्मिक यंत्र है। गो शब्द का अर्थ है इन्द्रियाँ। पशुओं की भाँति यह इन्द्रियाँ भी स्वेच्छा का विहार चाहती हैं। इन इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले और अनुशासनपूर्वक उनसे काम लेने वाले गोपाल योगिराज कृष्ण ही तो हो सकते हैं। जहाँ इंद्रियों की समग्रता है और इस समग्रता पर अनुशासन करने वाला गोपाल। यह गोकुल कोई बड़ा नगर नहीं था, वह तो भारतीय संस्कृति का उद्गम स्थान हमारा छोटा-सा ग्राम था। वहाँ के सारे काम संग दोष के कारण बेसुरे हो गए। श्री कृष्ण ने अपनी मधुर मुरली की तान छेड़कर उन्हें सरस और सुरीला बनाया। विश्व कवि रवि बाबू ने भी तो गीताञ्जलि में एक ऐसी कविता लिखी है कि—"सारा दिन सितार में तार लगाते ही लगाते बीत गया लेकिन अभी तक तार न लग पाए और न संगीत ही आरम्भ हुआ।" हम सब की भी यही दशा है। जीवन के तार बिठाते-बिठाते मृत्यु का घण्टा-रव सुनाई दे जाता है और तार नहीं बैठ पाते हैं। जीवन वीणा में अनेक तार हैं। न मालूम कब वह एक स्वर पर आएँगे कुछ नहीं कहा जा सकता। मन की सहस्रों प्रवृत्तियाँ ही तार हैं। उनसे अलग-अलग स्वर निकल रहे हैं। एक विचित्र प्रकार की खींचतान में हम फंसे हैं। एक

बार श्री कृष्ण की अनन्य प्रेयसी रासेश्वरी महारानी श्रीराधिका ने श्री कृष्ण की मुरली से पूछा :

मुरली कौन सो तप कीन्ह ।
रहत गिरिधर मुखहि लागी, अधर को रस लीन्ह ।

इस पर मुरली ने कहा—राधिके ! तुम मेरा तप सुनना चाहती हो तो सुनो । वियावान उपवन में मैंने जन्म पाया । लोग अपने बच्चों के जन्म के समय कितनी खुशियाँ मनाते हैं, परन्तु मेरे जन्म पर तो कोई आँख उठाकर देखने वाला भी नहीं था । जब ज़रा बड़ी हुई तो मैं रूप-गर्विता की भाँति अपने अंग की लचक पर झूम उठी । यौवन की मादकता ने उपवन के प्रत्येक वृक्ष से मुझे ऊँचा उठा दिया । किन्तु दर्प का भी अंत होता है । एक दिन एक कठोर हृदय बढ़ई ने अपने एक कंटीले लोहे के औज़ार से मेरे अंग को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला । मेरा सारा अभिमान चूर-चूर हो गया । इस तरह अंग कटने में जो असह्य पीड़ा हुई उसे किसी प्रकार मैंने चुपचाप सह लिया । फिर भी दुखों का अंत नहीं हुआ । उस बढ़ई ने अपने घर ले जाकर एक दूसरे टेढ़े औज़ार से मेरे अंग को छेद डाला और उसमें सात सूराख कर दिए । मेरी चीख-पुकार और रोने-धोने का उस पर कोई भी असर न हुआ । बाद में जब अंग छिद चुका तो उसने मुझे अपने घर के कोने में एक ओर डाल दिया । वहाँ से माखनचोर श्री कृष्ण मुझे चुपचाप उठा लाए । जिस समय उन्होंने मेरी जन्मभूमि वनस्थली में कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़े हो, शारदीय पूर्णिमा की खिली हुई चाँदनी में मुझे अपने अधरों पर रखा; उस समय अपने सारे दुखों को भूलकर मैं तन्मय हो गई । उस तन्मयता में मुझे अपनी चीख-पुकार और रोने-धोने की सुधि भूल गई । मैं उन्हीं के स्वर को अपना स्वर और उन्हीं की रागिनी को अपनी रागिनी बनाकर उस निर्जन बन में गूंज उठी । वह आवाज़ इतनी आकर्षक थी कि जिसके कानों में वह पड़ी वही अपना आपा भूल-कर श्यामसुन्दर की ओर दौड़ पड़ा । उस मादक रात्रि में संसार को नचाने वाले कन्हैया ने महारास मनाया जो 'न भूतो न भविष्यति ।'

कहते हैं उस महारास में सोलह हज़ार गोपियों ने भाग लिया ।

सोलह हज़ार क्या वह तो सोलह करोड़ भी हो सकती हैं। हमारी प्रत्येक क्षण में बदलने वाली अन्तःप्रवृत्तियाँ ही तो वह गोपियाँ हैं। श्री कृष्ण की मुरली से निकला हुआ स्वर उन गोपियों को अपनी ओर खींच ले जाता है। वे परवश होकर उसकी ओर खिंची चली जाती हैं। परन्तु श्री कृष्ण उन गोपियों के बाह्य रूप रंग पर मुग्ध नहीं हुए। उन्होंने उन्हें अपने साथ महारास करने के लिए आवाहन किया है। शारदीय चंद्र आकाश पर खिला हुआ था। चंद्र का अर्थ है मन का देवता। वह अपने पूरे विकास पर था। उसका सद्भाव खिल चुका था। उस समय—

भगवानऽपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्ल मल्लिका।
वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रिता॥

शरद मल्लिका से उत्फुल्ल उस रात्रि में वे गोपियाँ भगवान् का सान्निध्य पाकर आनन्द से नाच उठीं। उस समय दो-दो गोपियों के बीच एक-एक कृष्ण का सबने दर्शन किया। यह तत्व कितना अनुभवात्मक है। हमारे दो हाथ हैं मगर दोनों में कार्य करने की एक ही भगवत्शक्ति व्याप रही है। हमारे दो आँखें हैं परन्तु दृष्टि एक है। दो कान हैं परन्तु श्रवण शक्ति एक है। दो नासिका के छिद्र हैं परन्तु प्राण का संचार एक है। यही दो-दो गोपियों के बीच एक-एक कृष्ण के नृत्य करने का रहस्य है। इसी आध्यात्मिक रहस्य की उद्बोधिनी शारदीय पूर्णिमा है, जिसमें जीवन का संगीत सुनने को मिलेगा।

52. करवा चतुर्थी

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को हमारे देश की सौभाग्यवती स्त्रियाँ करवा चौथ का व्रत रखती हैं। यह त्यौहार सुहाग तृप्ति और पति की

स्वास्थ्य और आयु तथा मंगल कामना के लिए मनाया जाता है। व्रत के दिन प्रातःकाल शौच आदि से निवृत होकर आचमन करके व्रत का संकल्प किया जाता है। प्राचीन समय में चंद्रमा की मूर्ति लिखकर शिव, कार्तिकेय और गौरी की प्रतिमा का स्थापन किया जाता था एवं शास्त्र अथवा कुल परम्परा के अनुसार उनका पूजन होता था। यह उपवास निर्जल होता है। देवियाँ चंद्र दर्शन के पश्चात् उसे अर्घ्यदान देकर ही जल लेती हैं। ताँबे या मट्टी के सात कुल्हड़ों में जल भरकर पूजा के बाद दानकर दिए जाते हैं। इस व्रत के महात्म्य पर एक कथा महाभारत में मिलती है। 'एक बार धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन कील-गिरि पर किसी अनुष्ठान को पूरा करने के विचार से चले गए। उस समय द्रोपदी ने अपने मन में सोचा कि यहाँ अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं और अर्जुन है नहीं, इसलिए क्या करना चाहिए। दैवात् उसी दिन श्री कृष्ण उन लोगों से मिलने के लिए आ गए। द्रोपदी ने उनसे बड़ी विनम्रतापूर्वक पूछा कि प्रभो! गृहस्थी में आने वाली छोटी-मोटी विघ्न-बाधाओं को दूर करने के लिए क्या प्रत्यन करना चाहिए? श्री कृष्ण ने उन्हें करवा चौथ का व्रत और पित्त-प्रकोप को दमन करने वाले चंद्रदेव का पूजन विधान बतला दिया। देवी द्रोपदी ने समय आने पर श्री कृष्ण की कही हुई विधि के अनुसार पूजन किया। जिसके फलस्वरूप उनकी विघ्न-बाधाएँ दूर हो गईं और पांडवों को भी भावी महायुद्ध में विजय मिली। सौभाग्य और सम्पन्नता की सुरक्षा चाहने वाली भारतीय देवियों ने उसी विधी के अनुसार इस व्रत को अपना लिया है और बड़ी श्रद्धा के साथ उसे अब तक मनाती हैं।

53· अहोई अष्टमी

कार्तिक कृष्णा अष्टमी

कार्तिक कृष्णा अष्टमी को पुत्रवती माताएँ अहोई का व्रत करती हैं। यह व्रत भी निर्जला व्रत है और चन्द्रमा को अर्घ्य देकर ही जल प्राप्त किया जाता है। संध्या के समय दीवार पर अष्ट कोष्ठक की एक पुतली बनाई जाती है। उसके समीप सेई के बच्चों और सेई की आकृति बनाई जाती है। जमीन पर चौक पूरकर जल-पात्र रखा जाता है। कलश पूजन के बाद पुतली का पूजन होता है। इसके बारे में निम्नलिखित कथा मिलती है कि किसी स्त्री के सात लड़के थे। दीपावली के पूर्व अपने मकान की पुताई करने के लिए वह स्त्री मिट्टी लाने के लिए गाँव से बाहर गई। जिस स्थान पर उसने मिट्टी खोदी वहाँ जमीन के नीचे एक सेई की मांद थी। दैवयोग से उस स्त्री की कुदाल लगने से सेई के एक बालक की मृत्यु हो गई, जिससे वह सेई बड़ी दुखी हुई। स्त्री तो मिट्टी लेकर चली आई और उसने अपने मकान को लीप-पोतकर स्वच्छ कर लिया।

कुछ दिनों के बाद किसी छोटी-सी बीमारी में उसके बड़े लड़के की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसी तरह से दूसरे लड़के की मृत्यु हुई। एक वर्ष में धीरे-धीरे करके सातों लड़के मर गए। इस दुख से वह अत्यन्त दुखी रहने लगी। एक दिन गाँव की स्त्रियों में बैठकर उसने अपने दुख को कथा कही। और कहा कि—मैंने तो कभी कोई पाप नहीं किया। पर एक बार धोखे से मिट्टी खोदते हुए मेरी कुदाल के लगने से एक सेई के बच्चे की मृत्यु हो गई थी उसी दिन से अभी साल भर भी पूरा नहीं हुआ मेरे सातों बच्चे जाते रहे।

तब वे स्त्रियाँ बोलीं कि बहन! चार आदमियों के कान में बात डालकर तुमने आधा पाप तो अभी ही कम कर लिया। अब जो शेष बच रहा है उसका प्रायश्चित्त तभी होगा जब तुम सेई के बच्चे के चित्र लिखकर उनकी पूजा करोगी। ईश्वर की कृपा से तुम्हारी धोखे से

होने वाली हिंसा का पाप दूर हो जायगा और तुम्हें फिर से अपनी संतानें प्राप्त होंगी। यह सुनकर उस स्त्री ने वैसा ही किया जिससे उसे फिर सात बच्चों की जननी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तभी से इस व्रत की परिपाटी चली आती है।

54. तुलसी एकादशी

कार्तिक कृष्णा एकादशी

तुलसी हमारे देश में पैदा होने वाली वनस्पतियों में एक क्षुप जाति का पौधा है परन्तु उसके गुणों की बड़ी महिमा है। आयुर्वेद के ग्रंथों में उसकी पत्तियों को कृमिनाशक माना गया है। वनस्थली में रहने वाले संत-महात्मा उसका बहुत प्रयोग किया करते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से उसका बड़ा उपयोग है। वर्षा ऋतु के अंत में इसका विधि पूर्वक प्रयोग करने से कीटाणुओं से फैलने वाले मलेरिया आदि रोगों का वेग शमन होता है।

वैद्यक ग्रंथों से अधिक महिमा धर्मशास्त्रों में तुलसी की गाई गई है। उन्हें जगत् का पालन करने वाले भगवान् विष्णु की पत्नी माना गया है। इतने बड़े पद को प्रदान करने का रहस्य तो वह त्रिकालदर्शी महात्मा ही जान सकते हैं जिन्होंने वनस्पति शास्त्र के महत्त्व को अपनी तप साधना से पहचाना है। भगवान् भी उन्हें अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है। इस सम्बन्ध में एक कथा यह कही जाती है कि श्री कृष्ण की पत्नी सत्यभामा को अपने रूप का बड़ा गर्व था उन्हें विश्वास था कि उनके रूप के कारण ही श्री कृष्ण अन्य स्त्रियों की अपेक्षा उनपर अधिक स्नेह रखते हैं। इसलिए एक दिन जब नारदजी द्वारिका पुरी में आए तब सत्यभामा ने उन्हें अपने भवन में बड़े आदर से बुलाकर कहा—

"देवर्षि ! आपका आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होता । इसलिए आप मुझे यह वरदान दीजिए कि मुझे आगे होने वाले जन्मों में भी श्री कृष्ण ही पति रूप में प्राप्त हों ।" देवर्षि सत्यभामा के मन का भाव समझ गए । उन्होंने कहा—"देवि ! इस सृष्टि का नियम यह है कि एक जन्म में अपनी प्रिय वस्तु को किसी सुपात्र को दान कर देने से वह अगले जन्म में उसे प्राप्त होती है । अतः तुम यदि श्री कृष्ण को मुझे दान कर दो तो मैं तुम्हें ऐसा वर दे सकता हूँ कि वे तुम्हें भावी जन्मों में भी प्राप्त हों ।" सत्यभामा ने यह सुनकर श्री कृष्ण को नारदजी को दान कर दिया । वह उन्हें अपने साथ स्वर्ग ले चलने के लिए गए । उस समय श्री कृष्ण की अन्य रानियों ने देवर्षि को रोककर श्री कृष्ण को स्वर्ग न ले जाने की प्रार्थना की । नारदजी बोले—श्री कृष्ण को तराजू पर तोलकर उनके बराबर रत्न और सुवर्ण पाकर मैं उन्हें छोड़ दूँगा । रानियों ने श्री कृष्ण को तुला पर रखकर अपने सारे अलंकार चढ़ा दिए परन्तु तुला का पलड़ा न उठा । तब सबने मिलकर महारानी श्री सत्यभामा को जा पकड़ा और उनसे बोलीं कि श्री कृष्ण पर हम सबका एक जैसा अधिकार है तब तुमने बिना हमारी सलाह के श्री कृष्ण को दान कैसे कर दिया ? सत्यभामा ने गर्व से कहा—"मैंने यदि उन्हें दान किया है तो मैं उन्हें उबार भी दूँगी । चलो मैं चलती हूँ । सत्यभामा ने वहाँ जाकर अपने अलंकार भी सबके सब चढ़ा दिए । पर पलड़ा नहीं उठा । इस पर वह अपने मन में बड़ी लज्जित हुई । और श्री रुक्मिणीजी से जाकर सारा हाल कहा । रुक्मिणी जो उस समय ध्यानस्थ होकर तुलसी का पूजन कर रही थीं । उन्होंने माँ तुलसी की वंदना की । उसी समय तुलसी से एक पत्ती गिर पड़ी । वे रानियाँ उस पत्ती को लेकर सत्यभामा के साथ वहाँ आईं और पलड़े पर वहीं तुलसी का दल रख दिया । रखते ही तुला का वज़न बराबर हो गया । नारदजी उसी पत्ती को लेकर स्वर्ग चले गए । रुक्मिणी श्री कृष्ण की पटरानी थी परन्तु उन्होंने तुलसी के वरदान से अपने और अपनी बहिनों के सौभाग्य की रक्षा की । इसलिए उन्होंने अपना सौभाग्य तुलसी को दान कर दिया । श्री कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर उन्हें अपने मस्तक

पर धारण करने का वरदान दे दिया। तब से तुलसी को वह पूज्य पद प्राप्त हो गया। आज की एकादशी में उन्हीं माँ के समान हमारी रक्षा करने वाली तुलसी देवी के नाम का व्रत और पूजन किया जाता है।

55. वत्स द्वादशी

कार्तिक कृष्णा द्वादशी

भारतीय संस्कृति में गाय को माता के समान पद मिला है। आज के दिन जब गाएँ जंगल में चरकर घरों पर वापस आती हैं, उस समय उनके बछड़ों की पूजा की जाती है। गाय के बछड़े हमारे भाई हैं। मनुष्यों की दिवाली मनाने से पहले उनकी दिवाली मनाई जाती है। यह भावना कितनी उच्च है। परन्तु आज स्थिती कितनी अद्भुत हो गई है। गाय तथा गो वंश के साथ हमारा कितना दुर्व्यवहार है। उनकी पूजा को भी हमने यांत्रिक बना डाला है। गौ के प्रति श्रद्धा और आदर भावना का रहस्य हमारे मनों में नहीं बैठता। यद्यपि गाय हमारी सबसे अमूल्य निधि है। वेदों में कहा गया है—'पशुओं से प्रेम करो।' उनसे काम भी लो। वह तुम्हारे आवश्यक अंगों के पूरक हैं। परन्तु उनका ख़याल भी रखो। समय पर पानी पिलाओ। समय पर घास दो। आपकी मार खाकर भी वह चुप रह जाते हैं परन्तु आपकी मानवता तो गड्ढे में चली जाती है। उन मूक पशुओं का आशीर्वाद समाज को समृद्ध बनाएगा। उनमें प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है। हमारी आवाज़ सुनते ही बछड़े किलकते हुए रंभाने लगते हैं। और हमारे हाथ का स्पर्श पाकर नाचने लगते हैं। कितने सुहावने मालूम होते हैं वह बछड़े उस समय। उनके प्रति आदर से हमारा घर ऋद्धि-सिद्धि से भर जायगा। घर-घर में जिस दिन यह पूजा जगेगी उसी दिन मानव-कल्याण जगेगा।

पुराने ज़माने के लोगों ने उनसे मित्रता की थी। उसका शुभ फल प्राप्त किया था। आज के युग में उनकी उपेक्षा ने अन्न और वस्त्र की कमी कर डाली है। उसे पूरा करने का उपाय ही यह पुनीत त्यौहार है।

56. धनतेरस

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को धनतेरस कहते हैं। वैदिक काल से ही हम इसे मानते आए हैं। आज के दिन यमराज का पूजन होता है। यमराज तो साक्षात् मृत्यु का देवता है। परन्तु भारतीय संस्कृति मृत्यु की भी वंदना करती है। उसने मृत्यु को कभी हेय नहीं माना। वरन् उन्मत्त भाव से उसका स्वागत किया। कुछ लोग यह समझते हैं कि मृत्यु मानों अंधेरा है। लेकिन मृत्यु तो अमर प्रकाश है। यदि मृत्यु न होती तो यह संसार कितना दुखद और दारुण होता। मृत्यु तो सचमुच परोपकार करने वाली है। अकसर जो काम जीवन में नहीं हो पाते उन्हें मृत्यु पूरा करवा जाती है। किसी उर्दू के कवि ने कितना सुन्दर कहा है :—

जो देखी हिस्टरी इस बात पर कामिल यकीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया।।

इसलिए आज की संध्या में उसी के नाम का दीप जलाया जाता है। हमारे देश के बड़े से बड़े आदमी ने हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन किया और जिसने अमर होकर जीने की इच्छा की उसे राक्षस या दैत्य की संज्ञा दी गई। गीताकार की दृष्टि में तो मृत्यु की विभीषिका है ही नहीं। उन्होंने तो मृत्यु को कपड़े बदलने के समान माना है। अतएव प्रत्येक जन्म लेने वाले की वही एकमात्र गति है। यह समझकर

हमें प्रतिक्षण उसका ध्यान करते रहना चाहिए। और अपने उत्सवों में उसका भी उत्सव मनाना चाहिए।

आज के त्यौहार का महात्म्य प्राचीन ग्रंथों में यह मिलता है कि एक दिन यमराज ने अपने दूतों से पूछा—"क्या जीवों का प्राण-हरण करते समय तुम्हें कभी दया भी आती है ?" इस बात का हाँ में उत्तर देने का अर्थ था यम की आज्ञा में अविश्वास। दूतों ने संकोच के साथ कहा—"प्रभो ! हमें तो स्वामी की आज्ञा पालन करने में कोई दया-माया नहीं होती। परन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर ज़रूर आ जाते हैं जब हमारा हृदय भी काँपने लगता है। वैसी एक घटना अभी कल ही होकर चुकी है। वह यह है कि हंस नाम का एक राजा था। वह शिकार के लिए वन में गया। दैवात् अपने साथियों से भटककर एक दूसरे राज्य की सीमा में चला गया। वहाँ के शासक का नाम हेमा था। उसने राजा हंस का बड़ा सत्कार किया। उसी दिन हेमा की पत्नी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु जन्म के नक्षत्रों की गणना करके ज्योतिषियों ने कहा कि यह बालक विवाह के चौथे दिन मर जायगा। हँस ने हेमा को जंगल में ब्रह्मचारी बनाकर रखने की सलाह दी। इसलिए राजा ने यमुना के तट पर एक गुहा बनवाकर बालक को स्त्रियों की छाया से दूर रखा। परन्तु विधि-विधान को कौन मेट सकता है। एक दिन हंस की राजकुमारी उस ओर घूमती हुई जा निकली और उसने कुमार के साथ गंधर्व विवाह कर लिया। विवाह के ठीक चौथे दिन उस कुमार की जीवन-लीला समाप्त हो गई।' यमदूतों ने आगे कहा—'धर्म-राज ! आपकी आज्ञा से हमने उसका प्राण हरण तो कर ही लिया। परन्तु उस नव-परिणीता का रोदन सुनकर हमारा हृदय भी काँपने लगा। वास्तव में युवावस्था की मृत्यु बड़ी दारुण होती है। इससे धरती के युवकों की प्राण-रक्षा का उपाय भी कुछ होना चाहिए।' यमराज ने आज की तिथि में दीपदान को युवावस्था की मृत्यु को रोकने वाला बताकर कहा कि इस उपाय से असामयिक मृत्यु का योग टल जायगा।

57. नरक चौदस

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी

आज का त्यौहार घर का कूड़ा-कचरा साफ़ करने का है। वर्षा ऋतु में मकानों पर जो काई इत्यादि लग जाती है उसे हटाकर मकान-मुहल्ले और गाँव में सफ़ाई करनी चाहिए। यदि यह काम सामूहिक रूप में हो तो और अच्छा है। आज के दिन यदि कोई स्नान भी न करे तो उसके सालभर के पुण्यों का क्षय होता है।

स्वच्छ रहने से बढ़कर कोई दूसरा सौन्दर्य नहीं है। मनुष्य तो बहुमूल्य वस्त्राभूषणों में लिपटकर भी गंदा रह सकता है और सादगी में भी सुन्दर लग सकता है।

58. दीपमालिका

कार्तिक अमावस्या

दिवाली—हिंदू मात्र का सबसे बड़ा त्यौहार है। जब छोटी-से-छोटी झोंपड़ी से लेकर बड़े-बड़े राज भवन तक प्रकाश से जगमगा उठते हैं। छोटे-बड़े, ग़रीब-अमीर सबमें एक खास उत्साह दिखाई देता है। कहते हैं आज के दिन अयोध्या की प्रजा ने चौदह वर्षों के बनवास से लौट-कर आये हुए श्री राम के राज्यारोहण पर महोत्सव मनाया था, अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट की थी। इसलिए प्रत्येक देशवासी ने अपने-अपने घरों को दीये जलाकर सुसज्जित किया था। तभी से इस महोत्सव पर दीपमालिका की सजावट का महत्त्व बढ़ा। यद्यपि दिवाली का उत्सव तो उससे पहले भी मनाया जाता था, परन्तु उसकी रीति और उद्देश्य दूसरे ही प्रकार के थे।

ऋतु काल के बारे में पहले चर्चा की जा चुकी है। शरद और

वसंत के प्रकरणों में उस पर काफ़ी प्रकाश डाला जा चुका है। इनमें से बसंत की ऋतु में देश के वही भाग शोभा से उल्लसित होते हैं जिनमें जलाशयों और वृक्षों के समूहों की भरमार होती है। परन्तु शरद तो देश के कोने-कोने में, चाहे मरुभूमि हो अथवा जलाछादित भू भाग सर्वत्र शोभादायक होती है। चारों ओर निमल जल और परिपक्व अनाज की फ़सलों से वसुन्धरा समृद्ध होती है। इसलिए हमारे कृषि प्रधान देश में भी माँ लक्ष्मी का पूजन करने का इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा अवसर हो सकता है? इस काल में प्रत्येक देशवासी प्रसन्नता के साथ लक्ष्मी-पूजन करता है। इस शरद ऋतु में आश्विन और कार्तिक दो महीने होते हैं। कार्तिक के महीने में खेतों से पका हुआ नाज सबके खलिहानों में पहुँच जाता है। नए नाज़ का उपयोग करने से पूर्व उसे यज्ञ द्वारा भगवान् को समर्पित किया जाता है। अतः दीपावली के दिन शष्टोष्टि महायज्ञ का विधान है। इसलिए यह दिन लक्ष्मी पूजन का है। अमावस्या के बारे में तो ज़्यादह विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दिवाली के लिए चांदनी रात इतनी उपयोगी नहीं हो सकती। दूसरे वर्षा के बाद अनेक तरह के कीटाणुओं के पैदा होने की संभावना होती है। वे कीटाणु सूर्य और चन्द्र के प्रकाश में कम पनपते हैं और यदि पनप भी गए तो उनकी अधिकता नहीं होती, जितनी अँधेरे पाख में होती है। इसलिए दिवाली का प्रकाश कृष्ण पक्ष में ही करना ठीक होगा।

दिवाली का उत्सव भारत के हर प्रदेश में होता है और प्रायः प्रत्येक प्रदेश के लोगों ने अपने-अपने ढंग से एक न एक नई कथा इसके बारे में मान रखी है। यदि उन सबका संग्रह किया जाय तो अलग ही एक बड़ा ग्रंथ बन जाय। परन्तु सामान्यतः जो कथा पुराणों में मिलती है वह इस प्रकार है—प्राचीन युग में दैत्यों के राजा बलि ने अपने जीवन में दान का व्रत लिया था। कोई याचक उससे जो वस्तु माँगता राजा उसे वह वस्तु देता था। उसके राज्य में जीव हिंसा, मद्यपान, वेश्या-गमन, चोरी और विश्वासघात इन पाँच महापातकों का अभाव था चारों ओर दया, दान, अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का आदर था।

आलस्य, मलिनता, रोग और दारिद्र्य का उस राज्य में नाम भी नहीं था। लोग आपस के मेल-जोल के साथ रहते थे। द्वेष, असूया या मात्सर्य को रोकने का प्रयत्न सब लोग करते थे। इसलिए इतने अच्छे राज्य का रक्षरण करने के लिए भगवान् विष्णु ने भी राजा बलि का द्वारपाल बनना स्वीकार कर लिया था। राजा बलि की इसी धर्म-निष्ठा की स्मृति को क़ायम रखने के लिए भगवान् विष्णु ने तीन दिन अहो-रात्रि महोत्सव का निश्चय किया। यही हमारी दिवाली है। इसलिए इस त्यौहार पर पहले लोग अपने-अपने घरों का कूड़ा-कचरा, कीचड़ और गंदगी का नाश करते हैं तथा जहाँ-जहाँ अंधेरा होता है वहाँ प्रकाश करते हैं। लोगों के प्राण हरण करने वाले यमराज का तर्पण करना, अपने-अपने पूर्वजों का स्मरण करना, मिष्ठान्न का उपयोग करना और सुगंधित धूप-दीप तथा पत्र-पुष्पों से घर, नगर और बाजारों का सजाना उत्सव की प्रक्रिया है।

दुख को बात है कि आज जहाँ इतनी अच्छी-अच्छी बातों को स्वीकार करने के लिए दिवाली का त्यौहर आता है वहाँ लोगों में जुआ खेलने का व्यसन घर कर गया है। इसके लिए उन्होंने तरह-तरह की मन-गढ़ंत कथाओं का सहारा ले लिया है। लोग कहते हैं कि—आज के दिन जुआ न खेलने से गधे की योनि मिलती है। अथवा आज की रात्रि में शंकरजी ने पार्वतीजी के साथ जुआ खेला था इत्यादि। ये बातें किसने और कैसे प्रचलित कीं इसका कोई संतोषदायक समाधान नहीं मिलता। यह ठीक है कि दिवाली विशेष रूप से वैश्यों का त्यौहार है। परन्तु जुआ खेलना वैश्यों या व्यापारियों का धर्म है यह बात तो किसी भी शास्त्र में नहीं है। हमारे धर्मशास्त्रों में 'वाणिज्य' को वैश्य का धर्म बतलाया गया है। संसार के किसी भी धर्म में आपको ऐसी अच्छी बात न मिलेगी। सत्य, प्रेम, दया और दान आदि का वर्णन तो सभी करते हैं। परन्तु वाणिज्य या व्यापार भी एक धर्म है यह बात केवल हिन्दू धर्म ही कह रहा है।

"कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्।"

जैसे ब्राह्मण का धर्म है—वेदाध्ययन, क्षत्रिय का धर्म है देश-रक्षण

वैसे ही वैश्य का धर्म है वाणिज्य। ब्राह्मण वेदाध्ययन से मुक्ति पा सकता है। भूदान गंगा में आचार्य विनोबाजी ने इस विषय पर कितना सुन्दर लेख दिया है—

"हिन्दू धर्म ने ब्राह्मण और क्षत्रिय की बराबरी में व्यापारी को रखा। किन्तु शर्त यह रखी कि ज्यादह पैसा रखना या प्राप्त करना व्यापारी का धर्म नहीं है। उनका धर्म है लोगों की उत्तम सेवा करना। सर्वसाधारण में ठीक हिसाब करने की वृत्ति नहीं होती, यह व्यापारी में होनी चाहिए। व्यापारी अपना शब्द कभी नहीं टालता। जैसे ब्राह्मण का धर्म है ज्ञान। वैसे ही व्यापारी का धर्म है दया। अगर वह दया न करेगा, तो क्या सिर्फ तराजू लेकर तौल देने मात्र से उसे मोक्ष मिलेगा? इसलिए उनके साथ दया का गुण जोड़ दिया गया। इस धर्म को यदि वे ठीक से पालन करें तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और मोक्ष भी मिलेगा।"

पुराणों में कहा गया है कि नरकासुर नाम का एक असुर था, जिसने स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किए। सोलह हज़ार युवतियाँ उसके कारागार में बंदिनी थीं। यह नरकासुर कोई शरीरधारी मानव, दैत्य, असुर या राक्षस नहीं था। यह था आलस्य जिसके वशीभूत होकर सोलह हज़ार युवतियाँ उसकी बंदिनी हो गई थीं। उन्होंने अपना जीवन नारकीय बना डाला था। श्री कृष्ण भारतीय देवियों की इस दशा को सहन न कर सके। उन्होंने उन देवियों के उद्धार का व्रत लिया और उस राक्षस का नाश करने का संकल्प लिया। उन देवियों की भावना में व्याप्त उस नरकासुर का अंत करने के लिए जब वह जाने लगे तब उनकी पत्नी सत्यभामा ने कहा—"यह स्त्रियों के उद्धार का प्रश्न है। इसलिए इस अवसर पर नरकासुर से लड़ने मैं भी आपके साथ चलूंगी।" श्री कृष्ण ने सत्यभामा की बात मान ली। सत्यभामा और श्री कृष्ण दोनों ने मिलकर जन-संपर्क को साधन बनाकर स्वच्छता अभियान जारी किया और चतुर्दशी के दिन उस असुर का नाश हुआ। देश स्वच्छ हो गया। नरकासुर के नाश होने की खुशी में प्रत्येक व्यक्ति ने दीपोत्सव मनाया।

परन्तु वह नरकासुर मरा नहीं। इस युग में वह पुनः जीवित हो उठा है। वह तो हर बरसात के बाद गाँव-गाँव में अनेक रूप रखकर हर साल पैदा हो जाता है। इसीलिए प्रतिवर्ष उसे मारना पड़ता है। इसी से नरक चौदस को हर घर, ग्राम और मुहल्लों की सफाई करके दीपोत्सव मनाया जाता है। यह हमारी दिवाली का महोत्सव है।

59. अन्नकूट

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा

विक्रमीय संवत् का प्रथम दिवस चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को होता है। संवत्सारम्भ के वर्णन में उसका महत्त्व लिखा जा चुका है। परन्तु उससे भी पहले काल में लोग अपने-अपने घरों की गंदगी दूर करने के बाद बीतने वाले वर्ष और नए अग्रिम वर्ष की संध्या को दीप-उत्सव मनाकर अग्रिम वर्ष का स्वागत करते थे। इस प्रकार दोनों वर्ष का अभिवादन करते थे। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को व्यापारी वर्ग के लोग अपना नया वर्ष मानते हैं और अपने व्यापार के पुराने खाते नए बनाते हैं। नए साल की नई योजना बनाकर वर्ष भर तक उसके लिए प्रयत्न करते हैं। समूचा वर्ष हमारे लिए शुभ हो इसलिए विघ्न विनायक गणपति का पूजन करके ऋद्धि-सिद्धि की याचना करते हैं और अपनी संकल्प की हुई योजनाओं को सफल करने के प्रयास आरम्भ करते हैं। किन्तु यह चिह्न पूजा के रूप में एक पुरानी प्रथा मात्र बनकर रह गया है, इसमें से मानो प्राण विसर्जित हो गए हों। समाज के लोगों में यह मान्यता यदि सत्य रूप में पुनः जागृत हो तो लोगों को इससे नवचेतना प्राप्त होगी।

भारतीय पौराणिक काल गणना के अनुसार द्वापर युग के अंत में भारतवर्ष में श्री कृष्ण का अवतार हुआ। उनके पावन चरित्र से हमारे

देशवासियों को पुरानी परम्पराओं को नवीन रूप से मनाने की महत्त्व-पूर्ण प्रेरणाएँ मिलीं।

उनके जन्म के समय लोग आज के दिन देवराज इन्द्र का पूजन करते थे। इन्द्र वर्षा के देवता हैं। उनकी कृपा से वृष्टि होती है, जिससे देश भर का घर-घर धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। वर्षा के अंत पर लोग उन्हीं इन्द्र का पूजन किया करते थे। इस पूजन का सबसे बड़ा महोत्सव ब्रज भूमि में मनाया जाता था। प्रत्येक घर में पकवान बनता था और प्रत्येक परिवार हर्षोल्लास में भरकर सामूहिक रूप से श्रद्धापूर्वक 'इन्द्रोज यज्ञ' करते थे। परन्तु बड़े होने पर श्री कृष्ण को यह बात रुचिकर नहीं हुई। उन्होंने भोले-भाले ब्रजवासियों को समझाकर कहा—"जिस देवता को आज तक किसी ने नहीं देखा ऐसे देवता पर श्रद्धा या आस्था रखना अंध-श्रद्धा है। इससे तो अच्छा हमारा गोवर्द्धन पर्वत है। जिसकी तराई में चारा पाकर हमारे लाखों पशुओं का पालन होता है। इसलिए इन्द्र के स्थान पर उसी प्रत्यक्ष देवता का पूजन करना हितकर है।" ब्रजवासियों ने श्री कृष्ण की बात मान ली। परिणाम यह हुआ कि माता यशोदा के आग्रह से बाबा नंद ने सभी ग्वालों को एकत्र करके श्री कृष्ण की बात सुनाई। वे सब तो श्री कृष्ण को अपने प्राणों से भी बढ़कर प्यार करते थे। इसलिए उन्होंने इन्द्र की पूजा के साथ-साथ गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करना भी स्वीकार कर लिया। किन्तु श्री कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत की प्रशंसा की और उसकी उपयोगिता बताते हुए उसी की पूजा करने का आग्रह किया। ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण की बात मानकर इस नए प्रयोग को करने का शुभ संकल्प कर लिया।

कहते हैं कि ब्रजवासियों के इस प्रयोग से देवराज इन्द्र चिढ़ गए। उन्हें अपना अपमान मालूम हुआ। इसलिए उन्होंने ब्रजवासियों से बदला लेने का निश्चय किया और घोर वर्षा करके सारे ब्रज को पानी में डुबा देना चाहा। इस वर्षा से ब्रज के लोग घबरा उठे। उन्हें इन्द्र पूजन के विरोध का फल प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें धैर्यपूर्वक इस विपत्ति से लड़ने का साहस प्रदान किया और स्वयं

गोवर्द्धन पर्वत को छतरी की तरह अपने हाथ पर उठा लिया।

इन्द्र इससे लज्जित हो गए और उन्होंने प्रकट होकर श्री कृष्ण से क्षमा माँगी। श्रीकृष्ण तो स्वभाव से अत्यन्त सरल थे। उन्होंने इन्द्र को क्षमा कर दिया। वह अपने लोक को चले गए। तब से अन्नकूट का उत्सव आज के दिन बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

60. भाई दूज

कार्तिक शुक्ला द्वितीया

भारतीय संस्कृति में नारी की महिमा महान् है, वह त्याग, तप और दया की मूर्ति है। गीता में वर्णन किये हुए कर्मयोग की साकार प्रतिमा और सेवा की सजीव साधना है। माता के रूप में वह जगद्धात्री आद्या महाशक्ति का अवतार है। उसका दूसरा जगत् वन्द्य स्वरूप बहिन के रूप में है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—'दयाया भगिनी मूर्तिः'।

यह सब होते हुए भी हमारे समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी शोचनीय है। स्त्रियों की समस्याओं को लेकर गत कई वर्षों से देशभर में बड़ी-बड़ी चर्चाएँ चल रही हैं। बहुत-से परिवारों में परिवर्तन भी हुए हैं। लोकमत में भी काफी फर्क पड़ा है। फिर भी यह मान लिया जाय कि स्त्रियों की हालत में कोई खास फर्क पड़ा है, यह बात संतोषदायक रूप में नहीं दीख पड़ती, क्योंकि परिस्थितियों के दबाव के कारण, लाचारी की हालत में जबरन कोई हेर-फेर करने की अपेक्षा, जब तक हृदय परिवर्तन के द्वारा समाज स्त्रियों के बारे में अपना मत निश्चित नहीं करता तब तक उनकी दशा में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

सीता, सावित्री, द्रोपदी, अनुसूया और गांधारी आज भी भारतीय नारियों की आदर्श हैं। उनके गौरव को आज की विषम परिस्थितियों में भी, भारतीय नारी ने नहीं खोया है। वह अभी भी अपने-अपने

परिवार में अनेक कष्ट उठाकर अपने मूक परिश्रम द्वारा आनन्द का सृजन करती रहती है। हर एक घर में प्रातः से लेकर अर्द्ध रात्रि तक कठोर परिश्रम करने वाली देवियों के दर्शन हमें आज भी होते हैं। उन्हें क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं है। उन्होंने मानो अपने जीवन को एक प्रज्ज्वलित होम-कुंड के समान बना रखा है। मृत्यु के बाद ही वह होम-कुंड शान्त होता है। उनके शुभ आशीर्वादपूर्वक उनके हाथ का प्रसाद प्राप्त करना आयुवर्धक और आरोग्यकारक है। इस-लिए भाई दूज के इस उत्सव को विशुद्ध प्रेम का प्रतीक मानकर बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाना होगा और बहन के रूप में नारी के अधिकारों की रक्षा करने का व्रत लेना होगा। उनकी समस्याओं को अपनी निजी समस्या की भाँति सुलझाने का दृढ़ प्रयत्न करना होगा। यही भाई दूज के त्यौहार का आदर्श है। इसके सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा इस भाँति है—

यमुना भगवान् सूर्य की पुत्री हैं। उन्होंने अपने भाई यमराज को अपने घर बुलाकर बड़ा स्वागत किया। इस पर प्रसन्न होकर यमराज ने उससे वर माँगने को कहा—तब यमुना ने यही वर माँगा कि तुम प्रति वर्ष इसी तरह मेरे घर आया करो। यमराज ने स्वीकार कर लिया। और कहा कि मेरे-जैसे क्रूर को श्रद्धा के साथ कोई अपने घर नहीं बुलाना चाहता किन्तु तेरी भ्रातृ-निष्ठा पर मैं प्रसन्न हूँ और यह वर देता हूँ कि आज के दिन जो बहन अपने बुरे-से-बुरे भाई को भी बुलाकर सत्कार करेगी उसे मैं अपने पाश से मुक्त कर दूंगा। उसी दिन से भैयादूज का उत्सव समाज में प्रचलित हो गया।

आज के दिन जिन विद्यालयों में लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते हों, वहाँ यह उत्सव खूब धूम से मनाना चाहिए। लड़कियाँ अपने हाथ से खाने का सामान बनाकर लड़कों को खिलाएँ और लड़के अपनी हाथ की बनी हुई चीजों को उन्हें बहन मानकर उपहार में दें। इससे आपस का सौहार्द्र बढ़ेगा और समाज में सद्भावना का प्रचार होगा।

61. सूर्य षष्ठी

कार्तिक शुक्ला षष्ठी

कार्तिक शुक्ला षष्ठी को 'सूर्य षष्ठी' कहते हैं। वैदिक युग से ही इस त्यौहार की हिंदू समाज में प्रतिष्ठा है। सूर्य और अग्नि वेद में वर्णित देवता हैं। उनसे ही संसार का कितना बड़ा काम होता है। ऐसे उपकारी देव का वंदन तो जितनी श्रद्धा से किया जाय वही श्रेष्ठ है।

ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों के अनुसार ग्रहों के घूमने के मार्ग को क्रांतिवृत कहते हैं। इस वृत के बारह विभाग हैं जिन्हें मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन के नाम से बारह राशियाँ कहा जाता है। उसके एक राशि से दूसरी राशि पर जाने के काल को संक्रमण काल कहते हैं। इनमें दो अयन होते हैं। कर्क से धनराशि (चौथी से नवीं) तक दक्षिणायन रहता है। जिस दिन सूर्य मकर राशि (दसवीं) पर प्रवेश करता है, उस दिन से उत्तरायण काल आरम्भ होता है। सारांश यह है कि मकर संक्रान्ति उत्तरायण का आरम्भ है। वैसे तो प्रत्येक संक्रान्ति का पर्व उत्तम है। परन्तु अयन संक्रांति का महत्त्व विशेष है। आज से देवताओं का दिन आरम्भ होता है। शीतकाल का वेग घटना आरम्भ होता है। इसीलिए इस दिन की महत्ता विशेष मानी जाती। सप्तमी सूर्य का दिन है साथ ही शुक्लपक्ष भी यदि हो तो वह और भी प्रशस्त है।

शुक्लपक्षेतु सप्तम्यां संक्रांति ग्रहणाधिका।" (धर्मसिंधु)

मौसम बदलने के इस काल पर हम शुभ संकल्प हों और श्रम करने के योग्य बन सकें ऐसी प्रार्थना भगवान् सूर्य से आज के दिन की जाती है। नदी स्नान और दान की महिमा पर पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। आज के दिन वे सब अवश्य होने चाहिएँ। इस तिथि का विशेष वर्णन मकर संक्रान्ति (माघ शुल्का सप्तमी) के प्रकरण में होगा।

62. देवोत्थानी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी

देव शयनी एकादशी के प्रकरण में जिस तरह भगवान् विष्णु के पाताल जाने की कथा का वर्णन किया गया है उसी तरह आज का दिन उनके वहाँ से आने का माना जाता है। आज की तिथि को इसीलिए देवोत्थानी एकादशी या देवठान कहते हैं। वैष्णव धर्म में भक्ति, चारित्र्य की शुद्धता और मनुष्य-मनुष्य की समानता इन तीनों बातों पर अधिक ज़ोर दिया गया है। इन्हीं तीन बातों को अपनाने से इस एकादशी के व्रत का माहात्म्य पूरा होता है। आज के दिन श्रद्धापूर्वक भगवद्भजन और संकीर्तन आदि करना चाहिए। वैष्णव धर्म ने जिस भगवद्भक्ति पर ज़ोर दिया है वह क्या चीज़ है ? मान लीजिए हम किसी मन्दिर में देवमूर्ति खड़ी कर दें और लोग उसका दर्शन-पूजन करें, उसका नाम स्मरण करें तो क्या भक्ति पूरी हो जायगी ? नहीं, वह तो भक्ति का अभिनय मात्र होगा। दर असल भक्ति तत्व को समझने का वह प्रथम सोपान है। जैसे केवल बारहखड़ी रट लेने का नाम विद्या नहीं होता, विद्या के लिए तो साधना करनी होती है। जीवनभर अर्जन करने पर भी वह कम ही मालूम पड़ती है। यही दशा भक्ति की भी है। देव-मन्दिर का प्रसाद लेने से कुछ भावना उत्पन्न होती है। उस भावना को बढ़ाते रहने के प्रयत्नों में यदि शिथिलता आ जाय तो भक्ति का लक्ष्य पूरा नहीं होता। इन्हीं भावनाओं में जब बल आता है तब हमारे जीवन में सब प्राणियों के लिए प्रेम, करुणा और सौहार्द्र पैदा होता है। वही तो असली भक्ति है। ऐसी भक्ति जहाँ होती है वहाँ बाकी सारे गुण अपने आप मनुष्य में आने लगते हैं और सभी शक्तियाँ उसकी सहायक होती हैं।

63. भीष्म पंचक

कार्तिक शुक्ला एकादशी

यह व्रत कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से शुरू होकर पूर्णिमा को समाप्त होता है। इन पाँच दिनों के व्रत को भीष्म पंचक कहते हैं।

पितामह भीष्म का चरित्र भारतीय इतिहास की अमर सामग्री है। महाराज शान्तनु की धर्म पत्नी गंगादेवी के गर्भ से उनकी उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए उन्होंने भगवान् परशुराम से युद्ध-विद्या और महर्षि वेदव्यास से शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। युवा होने पर उनके पिता एक धीवर की कन्या पर आसक्त हो गए। उसका नाम सत्यवती था। महाराज शान्तनु ने सत्यवती के पिता को अपने पास बुलाकर अपने साथ सत्यवती का विवाह कर देने का प्रस्ताव किया। धीवर राज़ी तो हो गया, परन्तु उसने अपनी कन्या के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की माँग उनके समक्ष रखी। राजा अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए भीष्म जैसे सुपुत्र को अधिकारच्युत करने को तैयार नहीं हुए। किंतु भीष्म ने पिता की प्रसन्नता के लिए वह कठोर व्रत स्वीकार किया जो प्राणीमात्र में किसी ने नहीं किया था। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर पिता के राज्य की रक्षा करते हुए माता सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक को राज्याधिकारी स्वीकार कर लिया।

भीष्म की इस भीषण प्रतिज्ञा से स्वर्ग के देवता भी चकित हो उठे। पिता की प्रसन्नता के लिए जो त्याग उन्होंने किया था वैसा त्याग देवों से भी सधना कठिन था। आगे चलकर शान्तनु के वंशजों में जब राज्य के लिए महाभारत नामक युद्ध हुआ, उस समय भी वह राज्य-मन्त्री के पद पर आरूढ़ थे। दसवें दिन के युद्ध में वह वीर अर्जुन के बाणों से घायल होकर जब बाणों की शैया पर गिरे तब उन्होंने लोगों से कहा —पिता के वरदान से उन्हें इच्छा मृत्यु प्राप्त हुई है। अतः वह अट्ठावन दिन के बाद शरीर का त्याग करेंगे।

महाभारत का युद्ध अट्ठारहवें दिन समाप्त हो गया। तब युद्ध में मरे हुए अपने भाइयों का श्राद्ध करते समय धर्मराज युधिष्ठिर को वैसा ही मोह हुआ जैसा युद्ध के आरम्भ में महारथी अर्जुन को हुआ था। युधिष्ठिर के मोह को दूर करने के लिए श्री कृष्ण ने उन्हें भीष्म से उपदेश लेने की सलाह दी। भीष्म ने पाँच दिन तक शैया पर पड़े-पड़े ही युधिष्ठिर को राजधर्म, वर्णधर्म और मोक्षधर्म का महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया। उस उपदेश का महाभारत के शांति पर्व में महर्षि वेदव्यास ने वर्णन किया है।

उस उपदेश की महत्ता पर प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने पितामह भीष्म की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि आपने मानव धर्म का जो निरूपण किया है वह जीवन को ऊँचा बनाने के लिए अमर सहायक होगा। इसीलिए आपकी चिर स्मृति को क़ायम करने के लिए मैं भीष्म पंचक व्रत स्थापित करता हूँ। इन दिनों आपके दिये हुए उपदेश को श्रद्धा और संयम के साथ श्रवण करने से लोगों को जीवन की राह मिलेगी।

64. कार्तिकी पूर्णिमा

कार्तिक पुर्णिमा

आज के दिन भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर नामक राक्षस को मारा था। इसीलिए इसे त्रिपुरी पूर्णिमा भी कहते हैं। आज के दिन गंगा स्नान और सायंकाल के समय दीपदान का बड़ा महत्त्व माना जाता है। मत्स्य पुराण के अनुसार आज की संध्या में भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था।

श्री मद्भगवद्गीता में एक महावाक्य है कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च:।
तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अर्थात्—इस पृथ्वी पर जो भी जन्म लेता है उसकी एक न एक दिन मृत्यु अनिवार्य है। परन्तु पृथ्वी पर अमर होकर जो रहना चाहता है उसे भारतीय संस्कृति में असुर, दैत्य या राक्षस का नाम दिया जाता है। इसी कोटि में त्रिपुरासुर है। उसने भी अमर होकर पृथ्वी पर जीवित रहना चाहा था। इसके लिए उसने कठोर तप करके प्रजापति ब्रह्मा से अमरत्व का वर प्राप्त कर लिया। उसके बाद वह निर्भय होकर लोगों को सताने लगा। दिनोंदिन उसके अत्याचार बढ़ने लगे। देवताओं को उसके अमर होकर जीने में तो कोई हानि प्रतीत न हुई। परन्तु अत्याचारी होकर जीने देना वह कभी सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिए आशुतोष ने उसे बड़े कौशल से मार डाला। उसी समय से लोगों ने आज के दिन को एक महत्त्वपूर्ण अवसर मानकर उसे अपने महोत्सवों में सम्मिलित कर लिया और त्रिपुरासुर-जैसे समाजद्रोही का आतंक दूर करने वाले शंकर का अभिनन्दन किया।

65. गुरु नानक जयन्ती

कार्तिक पूर्णिमा

संवत् 1526 कार्तिक मास की पूर्णिमा सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेवजी की जन्म तिथि है। पश्चिमी पंजाब के शेखूपुरा जिले के तलवंडी ग्राम में लगभग पाँच सौ वर्ष पहले खत्री कुल में उत्पन्न श्री कल्याणचंद की धर्मपत्नी के गर्भ से उनका जन्म हुआ। वह सिक्ख-मत के आदि गुरु थे। उन्होंने अपने उपदेशों को आम बोलचाल की भाषा में दोहों और पदों के रूप में दिया। हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव को मिटाकर आपस में प्यार और मुहब्बत के साथ रहना सिखाया। बचपन से ही उनका मन भगवद्भक्ति की ओर आकृष्ट हो गया था।

एक बार यह अपने पिता से कुछ द्रव्य लेकर व्यापार की चीजें खरीदने जा रहे थे, परन्तु राह में कुछ क्षुधार्त लोगों से उनकी भेंट हो

गई। उनकी भूख मिटाने में उन्होंने सारा धन व्यय कर दिया और खाली हाथों घर लौट आए। पिता के हिसाब पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—"आज मैंने सच्चा सौदा किया है।" उसी दिन से आपने भूखे और दरिद्र नारायण की सेवा का व्रत ले लिया। सुलक्षणा नाम की लड़की से उनके पिता ने कालान्तर में उनका विवाह कर दिया। जिसके गर्भ से श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामक दो बालक भी उत्पन्न हुए। परन्तु घर में अधिक दिनों तक नानक का मन नहीं लगा। और वह जल्दी ही घर त्यागकर देश-विदेश घूमने के लिए निकल खड़े हुए। उनकी मान्यता थी कि एक परमात्मा ने सबको पैदा किया है इसलिए सब से प्रेम करो। प्रेम, सेवा और दया ही उनका महामंत्र था। उनका स्वयं का जीवन बड़ा ही प्रेरणात्मक और निष्ठा सम्पन्न था। आज बहुत बड़ी संख्या में लोग उनके मत को मानने वाले हैं।

आपकी रची हुई वाणियों का संकलन सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव द्वारा 'ग्रन्थ साहब' के रूप में हुआ। उसके पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि श्री गुरु नानकदेवजी हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध और ईसाई आदि सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे और उनकी अच्छी बातों को मानते भी थे। उनका स्वयं का प्रभाव भी दूसरे मत के मानने वाले लोगों पर काफ़ी पड़ा, अनेक लोगों ने उनके मत को ग्रहण करके कर्तव्य पालन का सच्चा उपदेश ग्रहण किया।

आज के दिन उनका जन्मोत्सव मनाकर असंख्य भारतीय उस उपकारी संत की कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी रची हुई वाणियों का श्रद्धा से पाठ करते हैं।

66. काल भैरवाष्टमी

मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी

मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को काल भैरवाष्टमी कहते हैं। इस तिथि पर भगवान् शंकर के अंग से काल भैरव का जन्म

हुआ था। भगवान् शंकर तो मृत्यु के देवता हैं। काल भैरव उन्हीं का एक स्वरूप है।

मृत्यु के बारे में भारतीय संस्कृति का अपने ढंग का विचार है। वह उसे जीवन वृक्ष का मधुर फल मानती है। रात में सोया हुआ बालक प्रातःकाल तरोताज़ा होकर जिस तरह किलकारियाँ भरता हुआ खेल खेलने के लिए उठ बैठता है, उसी तरह मृत्यु की नींद में सोकर मानव पुनः जागता है, तरोताज़ा होकर नया खेल खेलता है। इसीलिए मृत्यु को महानिद्रा नहीं कहा जा सकता, उसमें तो भावी जीवन का अमर आशीर्वाद छिपा हुआ है। इसीलिए जीने की इच्छा रखने वाला प्राणी मृत्यु का अभिनन्दन करता है। उसे हँसकर गले लगाने में उसे किंचित् भी संकोच नहीं होता। उसे वह प्रियतम से मिलने का महामार्ग मानता है। अपने साजन का घर मानता है। वह उसके खेल का मैदान है।

जिस संस्कृति ने हमें मृत्यु का भय मिटाकर जीवन का परिचय दिया है। वह हमें बताती है—

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम् अक्लेद्यो शोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर्चलोऽयं सनातनः॥

आत्मा को न तो हथियार काट सकते हैं, न अग्नि उसे जला सकती है, जल उसे गला भी नहीं सकता और न वायु उसे सुखा सकती है। कभी भी कटने, जलने, गलने, सड़ने और सूखने का भय इसे नहीं है। वह तो नित्य, सबमें व्याप्त, अचल और सनातन है।

इसी ज्ञान ने हमें मृत्यु की सरसता का दर्शन कराया है। वह हमें प्रतिक्षण सावधान करती रहती है। हमारी इच्छा हो या अनिच्छा, दिनोंदिन हम उसी की ओर बढ़ रहे हैं। जैसे-जैसे वह समीप आती जाती है, वैसे-वैसे हमारे शरीर की दशा में अपने-आप परिवर्तन होता जाता है। हालांकि मोह-मदिरा के नशे से उन्मत्त होकर हम उसका संगीत सुन नहीं पाते, पर वह अपना भैरव निनाद प्रत्येक घड़ी विश्व के कानों में डालती रहती है। संसार की असलियत को एक बार समझ लेने वाले

लोग उसके स्वागत की तैयारी सदैव रखते हैं। महात्मा कबीर ने यही संकेत अपने इन शब्दों में किया है।

करले सिंगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा।
मट्टी उढ़ावन, मट्टी बिछावन, मट्टी में मिल जाना होगा।
न्हाले धोले शीस गुँधाले फिर व्हाँ से नहिं आना होगा॥

यह गीत कितना सुन्दर है। मरण का नाम है प्रभु का मेल। मरने वाले की शव-यात्रा भी मानो विवाह का मंगल मूल है। काल भैरव के पूजन का यही रहस्य है।

67. दत्तात्रेय जन्मोत्सव

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी

भगवान् दत्तात्रेय का अवतार मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को हुआ था। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवताओं की संयुक्त मूर्ति माने जाते हैं। इसीलिए उनके तीन शरीर और छः भुजाएँ मानी जाती हैं। उनके जन्म के बारे में यह कथा बड़ी प्रसिद्ध है कि—

एक बार देवर्षि नारद भगवान् शंकर, विष्णु और ब्रह्माजी से भेंट करने के लिए उनके लोकों में गए। दैवयोग से उन तीनों में से कोई भी उन्हें अपने-अपने स्थान पर नहीं मिले। उनकी पत्नियाँ अर्थात्—श्री पार्वती, लक्ष्मी और सावित्री मिलीं। थोड़ी देर उन देवियों से बातचीत करके देवर्षि नारद ने देखा कि उन्हें अपने-अपने पतिव्रत और शील पर बड़ा गर्व हो गया है। नारद को यह अच्छा न लगा। उन्होंने उन तीनों के समक्ष महासती अनुसूया के पतिव्रत पालन की महिमा का वर्णन किया। नारद की कही हुई बातें उन तीनों देवियों को अच्छी न लगीं। इसलिए उनके स्वर्ग से चले जाने के बाद तीनों ने अपने-अपने पतियों के आने पर अनुसूया की चर्चा उठाई। सामान्य मानवी होकर वह देवियों से आगे बढ़ जाय यह उन्हें अच्छा

नहीं प्रतीत हुआ। इसी ईर्ष्या के कारण उन्होंने अनुसूया के व्रत को भंग कर देने का हठ किया।

तीनों देवता एक साथ महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। और संन्यासी के वेष में नारायण हरि की ध्वनि लगाने लगे। देवी अनुसूया द्वार पर आये हुए अतिथि का स्वागत करने के हेतु बाहर आईं और संन्यासियों को प्रणाम करके कुछ पल विश्राम लेने का आग्रह किया। संन्यासी वेषधारी त्रिदेवों ने कहा—"यदि आप हमारी इच्छानुसार हमें भोजन कराना स्वीकार करें तो हम लोग यहाँ ठहर सकते हैं।" अनुसूया जी ने प्रसन्नतापूर्वक यह बात मान ली। उनसे कहा—"आप लोग जाकर अपने नित्य-नैमित्तिक कार्यों से निवृत होइए तब तक मैं भोजन बनाती हूँ।" तीनों देवता यह सुनकर स्नान, पूजन आदि से निवृत्त होने के लिए चले गए और जब लौटे तब भोजन तैयार मिला। देवी अनुसूया ने अपने हाथों से उन्हें भोजन परोसा, परन्तु उन्होने उसे ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, और कहा कि जब तक तुम नग्न होकर भोजन न दोगी तब तक हम लोग अन्न ग्रहण न करेंगे। अनुसूया इस अनोखी माँग को सुनकर मनमें बड़ी क्रोधित हुई। अपने तप के बल से उन्हें यह तो पता लग ही गया था कि आज के अभ्यागत स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। और वह मेरे व्रत की परीक्षा लेना चाहते हैं। किंतु इतने ऊँचे पद पर निवास करने वाले देवताओं के मुख से इतना घृणित प्रस्ताव उन्हें बहुत बुरा लगा। फिर भी द्वार पर आये हुए अतिथियों को अपमानित करना भी उन्हें अभीष्ट न था। इसलिए उन्होंने तुरन्त एक उपाय ढूँढ निकाला और उसके अनुसार वह अपने पति महर्षि अत्रि के पास गईं, उनके चरण प्रक्षालन करके उसी जल को लाकर उन देवताओं के ऊपर छिड़क दिया। इस जल के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों दुधमुँहे बच्चे बनकर किलकारियाँ भरने लगे। तब देवी अनुसूया ने उन्हें बड़े प्यार से अपना स्तन पान कराया और पेटभर जाने पर उन्हें पालने में लिटाकर स्नेहमयी जननी की भाँति उनकी मुख शोभा को देखने लगीं। बहुत दिनों तक जब वे देवतागण अपने-अपने स्थान पर न लौटे तो उनको

पत्नियाँ बड़ी चिन्तित हुईं और दुखीं होती हुईं इधर-उधर भटक-भटक कर अपने पतियों की खोज करने लगीं।

उसी समय वीणा पर हरिगान करते हुए देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। उन्हें इस सारे रहस्य का पता पहले ही लग चुका था। फिर भी उन्होंने केवल इतना ही कहा कि कुछ दिनों पहले मैंने उन्हें अत्रि मुनि के आश्रम की ओर जाते हुए देखा था। अतः आप लोग वहीं जाकर उनका पता लगाएँ।

तीनों देवियाँ अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँचीं और देवी अनुसूया से बड़ी विनम्रतापूर्वक अपने-अपने पतियों के बारे में पूछा। देवी अनुसूया ने उन्हें उसी पालने को दिखा दिया, जिनमें उनके पति अबोध बालकों की भाँति पड़े हुए अपने पैरों के अंगूठे चूस रहे थे। मां अनुसूया ने प्यार भरे नेत्रों से बालकों को देखते हुए सावित्री, लक्ष्मी और देवी पार्वती से निवेदन किया कि—"यही आपके पति हैं। आप लोग स्वयं इन्हें पहचान कर ले जाइए। तीनों बच्चे एक जैसे थे, इसलिए उन्हें पहचानना कठिन था। देवी लक्ष्मी ने जिस बालक को बहुत गौर करके उठाया वह भगवान् शंकर निकले। इस पर लक्ष्मीजी का बड़ा उपहास हुआ। यह दशा देखकर वे तीनों देवियाँ लक्ष्मी, पार्वती और सावित्री, देवी अनुसूया से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं कि हमें अपने-अपने पति प्रदान करने की कृपा करिए।

देवी अनुसूया ने कहा—ये लोग मेरा स्तन पान कर चुके हैं। अतः मेरे बालक हैं। इन्हें किसी न किसी रूप में मेरे पास रहना पड़ेगा। इस पर तीनों देवों के अंग से एक दैवी तेज प्रकट हुआ और उसने एक संयुक्त स्वरूप धारण किया। वही तेज दत्तात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद अनुसूया ने अपने पति के चरणोदक को फिर से देवताओं के शरीर पर छिड़क दिया और उन्हें फिर से अपना असली रूप मिल गया।

धन्य हैं इस देश की देवियाँ जिन्होंने अपने पावन चरित्र के आगे स्वयं स्वर्ग की देवियों को भी झुकने के लिए विवश कर दिया। आज भारतीय इतिहास उन्हीं देवियों की गाथा को लेकर परमोज्ज्वल हुआ है।

68. अवसान पूजा विधि

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी

कुँवारी कन्या के रूप में तो भगवती दुर्गा के स्वरूप को मानकर पूजने की प्रथा भारतीय संस्कृति में मानी ही गई है। परन्तु विवाह के बाद भी नारी पूजने के योग्य है यह संदेश 'अवसान पूजन विधि' से प्राप्त होता है। आज के दिन केवल सुहागिन अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियों के पूजन का विधान हमारे धर्म-ग्रन्थों में वर्णन किया गया है। नारी अपने इस रूप में हमारे घरों की लक्ष्मी है। मनु भगवान् मनुस्मृति में कहते हैं कि—

यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

जिन परिवारों में नारी की पूजा होती है वहाँ देवतागण निवास करते हैं। नारी सेवा, त्याग और प्रेम की प्राणमती प्रतिमा है। यही मानकर उसे आज के दिन आदर देना निश्चय किया गया है। वैसे आमतौर पर विवाह के अंत में सात या पाँच सौभाग्यवती स्त्रियों का निमंत्रण करके उनको सम्मान के साथ पूजने की प्रथा हमारे परिवारों में प्रचलित है। अकसर कार्तिक स्नान के बाद या मलमास के स्नान के उपरान्त यह पूजन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि किसी काम के निर्विघ्न पूरा होने पर ही यह व्रत किया जाता है। हमारे गाँवों की बहनें इसे 'अचानक देवी' का व्रत भी कहती हैं।

इसकी विधि यह है कि आज के दिन अथवा ऊपर कहे गए किसी अवसर पर सवेरे पाँच या सात सुहागिन स्त्रियों को भोजन करने का निमंत्रण दिया जाता है और मध्याह्न में उनके आने पर उबटन स्नान कराके श्रद्धानुसार वस्त्र आभूषणों से अलंकृत किया जाता है। बाद में शास्त्र विधि के अनुसार स्थापित किये गए एक मंगल कलश के चारों ओर वे बैठती हैं। पंचांग पूजन के बाद वे सुहागिनें अपने-अपने हाथों में अक्षत लेकर कथा कहती हैं। पूजा कराने वाली बहन यदि सधवा है तो स्वयं भी पूजा में भाग लेती है और यदि विधवा है तो अलग रहती

है। कथा समाप्त होने पर कलश पर अक्षत छोड़े जाते हैं। सुहागिनों की माँग में सिंदूर भरा जाता है। उसके बाद भोजन कराकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इस व्रत के बारे में श्रीमद्भागवत पुराण में यह कथा मिलती है कि—

मार्गशीर्ष मास में एक बार भगवान् श्री कृष्ण अपने साथियों के साथ बन में गौएँ चराते हुए घूम रहे थे। दोपहर का समय था। ग्वाल बालकों को बड़ी भूख लगी। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा कि आज तो हमें भूख बेतरह सता रही है। क्या किया जाय ? श्री कृष्ण बोले—"यहाँ से कुछ दूर पर वेदज्ञ ब्राह्मण स्वर्ग पाने की इच्छा से आंगिरस नामक यज्ञ कर रहे हैं। उनके पास जाकर अन्न माँग लाओ। वे ग्वाल यह सुनकर यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के पास गए और श्री कृष्ण को भूख लगी है, यह कहकर अन्न माँगने लगे किन्तु ब्राह्मण यज्ञ के पूरा होने के पहले अन्न देने को राजी न हुए। गोप बेचारे वापस लौट आए। तब श्री कृष्ण ने उन्हें उन ब्राह्मण पत्नियों के पास भेजा और कहा कि अब की बार इनकी गृहलक्ष्मियों से अन्न माँगना। ग्वालों ने तत्काल ब्राह्मण पत्नियों से जाकर अन्न माँगा। श्री कृष्ण ने अन्न मँगवाया है यह सुनते ही वे हर्षित होकर बोलीं—"जो श्री कृष्ण जगत् के पूज्य हैं, बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा जिनका पूजन करते हुए भी बड़े-बड़े ऋषि और महात्मा उन्हें नहीं प्राप्त कर पाते वही श्री कृष्ण स्वयं हम दीन कुल वधूटियों से अन्न माँग रहे हैं, यह हमारा सौभाग्य है।" यह कहकर वे सब बड़ी श्रद्धा के सहित अनेक प्रकार के सुगंधियुक्त पदार्थ भिन्न-भिन्न पात्रों में लेकर श्री कृष्णचन्द्र को अर्पण करने के लिए चल दीं। ग्वाल बालों सहित श्री कृष्ण ने उनका स्वागत किया और उनका लाया हुआ अन्न अपने साथियों के साथ वहीं बैठकर खाया।

उधर थोड़े समय के बाद उन यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को भी अपनी भूल का ज्ञान हुआ। तब उन्होंने दुखी होकर आपस में कहा कि हमारे तीन प्रकार के शौक्ल (ब्राह्मण शरीर) सावित्री (गायत्री उपदेश युक्त) और देव (यज्ञ की दीक्षा से युक्त) जन्म को धिक्कार है।

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ।
धिक्कुलं धिक क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ।।
नासाँ द्विजाति संस्कारो न निवासो गरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभा ।।

श्रीमद्भागवत स्कध 10 श्लो० 42-43

अर्थात्—इन स्त्रियों के न तो उपनयम आदि संस्कार हुए हैं, न इन्होंने गुरुकुल में निवास ही किया (वेद नहीं पढ़े), न तप किया, न आत्म-चिन्तन ही किया, न इनमें शौच ही है और न संध्योपासन आदि क्रियाएँ हैं। फिर भी यह उत्तम कीर्ति से युक्त योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकीं, यह नारियाँ वंदनीय हैं।

उस ओर श्रीकृष्ण को श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर जब वे ब्राह्मण पत्नियाँ लौटने लगीं तब श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—"आप लोगों की श्रद्धा पर मैं प्रसन्न हूँ। आपके पवित्र हाथों का प्रसाद पाकर हम सबका जीवन उपकृत हुआ। जो परिवार सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथों का प्रसाद प्राप्त करते हैं वहाँ स्वर्गीय सुख की निधियाँ निवास करती हैं। जो लोग आपका आदर-सत्कार करेंगे उनकी मनोकामनाएँ परिपूर्ण होंगी। उस दिन मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी थी। इसलिए उस दिन सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथ का प्रसाद पाना प्रत्येक परिवार के लिए सुख-समृद्धिदायक माना जाता है। तभी से इस व्रत का रिवाज हमारे समाज में प्रचलित हुआ ऐसा माना जाता है।

69. उत्पन्ना एकादशी

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को उत्पन्ना एकादशी कहते हैं। भविष्य पुराण में इस एकादशी के बारे में यह कथा मिलती है कि सत्ययुग

में मुर नाम का एक दानव था, जिसने अपने पराक्रम से देवों पर भी विजय पाई और देवताओं के राजा इन्द्र को उनके पद से नीचे गिरा दिया। इस पर सभी देवता दु:खी होकर पृथ्वी पर फिरने लगे। इन्द्र ने भी दु:खी होकर भगवान् शंकर को अपनी कष्ट-कथा सुनाई। शिव ने उन्हें भगवान् विष्णु के पास जाने की सलाह दी। देवताओं ने क्षीर-सागर के तट पर जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति करके उनका आवाहन किया। श्री विष्णु ने प्रकट होकर देवताओं का हाल सुना तो उन्हें मुर नामक दानव पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने मुर को समाप्त करने का वचन दिया और अपने बाणों से सभी दानवों को मार डाला। परन्तु मुर नहीं मरा। उसके शरीर पर किसी शस्त्र का भी प्रयोग कारगर नहीं होता था। तब विष्णु ने उससे मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया। बहुत दिनों तक मुर से उनका मल्लयुद्ध होता रहा परन्तु वह तब भी नहीं मरा। यह देखकर कि किसी देवता के वरदान से वह अजेय है—श्री विष्णु उससे मल्लयुद्ध करना छोड़कर बद्रिकाश्रम की एक गुफा के अन्दर जाकर विश्राम करने लगे। मुर भी भागता हुआ उनके पीछे गया और गुफा के अन्दर जा पहुँचा। यहाँ विष्णु को सोते हुए देखकर उसने उन्हें मार डालने का विचार किया। उसी समय श्री विष्णु के शरीर से एक महातेज युक्त कन्या प्रकट हुई। वह कन्या दिव्य-आयुधों से सुसज्जित थी। विष्णु के तप और तेज के अंश से उसका जन्म हुआ था। इसलिए थोड़ी ही देर में उस कन्या ने मुर के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला। इतने में विष्णु भगवान् भी अपनी निद्रा से जगे। उन्होंने मुर के शरीर-खण्ड देखे। कन्या भी हाथ जोड़े हुए उनके सामने आ खड़ी हुई। विष्णु ने उससे सब हाल पूछा। उसने कहा—"मैं आपके ही अंग से उत्पन्न हुई एक शक्ति हूँ। इस दैत्य का अविचार देखकर मैंने इसे मार डाला।" भगवान् विष्णु अपनी कन्या के इस पराक्रम पर बड़े प्रसन्न हुए और उससे कोई अपनी इच्छा का वर माँगने को कहा। कन्या ने इसके उत्तर में कहा—"प्रभो! आप तो जगत् के प्राणीमात्र के ऊपर दया करके उसका पालन करते ही हैं। परन्तु मनुष्य स्वभावतः निर्बल प्राणी है इसलिए वह आपके उपकारों को भूलकर

अनेक कमज़ोरियों का शिकार होकर आप से दूर हट जाता है। इसलिए यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर प्रदान करें कि मैं उन भूले-भटकों को सहायता देकर आपके निकट आने में उनकी मदद कर सकूँ।" विष्णु ने प्रसन्न होकर कन्या को यह वर प्रदान कर दिया और उसकी मंगलमयी भावनाओं से सन्तुष्ट होकर कहा—"पुत्री जो लोग तेरा आदर करके तेरी कृपा प्राप्त करेंगे उन्हें अपने जीवन में मेरी कृपा और मरने पर मेरे लोक का वास प्राप्त होगा।" वही कन्या एकादशी है। उसकी कृपा प्राप्त करने वाले प्राणी को जीवन में सुख-शान्ति और मरण के बाद विष्णु-लोक प्राप्त होता है। प्रत्येक मास में वह एकादशी दो बार पड़ती है। सभी एकादशी व्रतों का फल समान है। परन्तु मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी तो उस परोपकारिणी देवी का खास जन्म-दिन है। इसलिए शास्त्रों में इस एकादशी के व्रत-उपवास और भजन-कीर्तन करने का बड़ा महात्म्य माना गया है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक एकादशी की महिमा और फल का अलग-अलग वर्णन किय गया है।

70. नाग दीपावली (नाग पंचमी)

मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी

मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को नाग दीपावली कहते हैं। इस दिन नागों की पूजा के साथ उनकी आधारभूता माँ पृथ्वी की पूजा करके उसके अंगों को दीप जलाकर सुसज्जित किया जाता है। पृथ्वी की महिमा तो वेदों में खूब गाई गई है। यहाँ तक कि अथर्ववेद में उसकी वंदना का सूक्त ही अलग है। उसे पृथ्वी सूक्त कहते हैं। उसमें कहा गया है कि—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

—यह पृथ्वी हमारी माँ है और हम सब उसके पुत्र हैं। पृथ्वी को

माँ के रूप में मानकर वेदों ने कितनी मधुर कल्पना की है। भूमि और मानव के सम्बन्धों को कितना प्रेरणात्मक भाव प्रदान किया है, उसकी स्मृति ही चिर-सुखदायिनी है। वह धरती माता कितनी क्षमाशील है। कितनी उदार है। हम उसे अपने हल के फाल से छेदते हैं मगर वह अनेक प्रकार के अन्न अपने वक्ष में से प्रकट करती है। हम उस पर गंदगी फैला देते हैं। पर वह हम से कभी रुष्ट नहीं होती। इतना ही नहीं, वेद के द्रष्टा तो माँ वसुन्धरा पर जो भी जन्मा है उस सबको पूज्य-भाव से देखते हैं। उन्होंने कहा है कि हे पृथ्वी ! तेरे वक्ष से पयपान करके जो भी जन्मा है अथवा जो भी चर-अचर पोषित होते है जैसे—वृक्ष, वनस्पति, शेर, व्याघ्र आदि हिंस्र जंतु, यहाँ तक कि नाग, बिच्छू आदि तक उनसे भी हमारी प्रीति हो और वे भी हमारा कल्याण करने वाले हों। हमारा किसी से द्वेष न हो। यह हमारी माँ जिन धातुओं से तथा रत्न, मणि आदिक निधियों से परिपूर्ण है, वे सब हमारे लिए लाभदायक हों।

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशिनी।
निधिं विभ्रती बहुधा गुप्त वसुमणि हिरण्यं पृथिवी ददातु में ।।42।।
वसूनि नो वसुधा रसमाना देवी दधातु सुमनस्यभाना ।।44।।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहाँ ध्रुवेषु धेनुरनपस्फुरंति ।।45।।

अटल खड़ी हुई अनुकूल गाय के सदृश माँ वसुन्धरे। तुम अपनी सहस्रों रस-धाराएँ हमारे हित के लिए प्रवाहित करो। तुम्हारी कृपा से हमारे राष्ट्र का कोष अक्षय सम्पत्तियों से परिपूर्ण हो। उसमें किसी भी काम के लिए कभी कमी न पड़े।

सा नो भूमिर्विसृजता माता पुत्राय मे पयः ।।

बालक को जिस तरह माँ से पोषण पाने का अधिकार है उसी तरह हम तेरा आश्रय पाने के अधिकारी हैं। अपने शरीर से निकलने वाली शक्ति की धाराओं से हमें संयुक्त करो। जगतवंद्य मातृभूमि के इसी सर्व कल्याणमय रूप की कल्पना करती हुई हमारी भारतीय संस्कृति ने उसे सदा पूज्य माना है और उसे देवत्व के पद पर सुशो-भित किया है। पुराने समय से मातृभूमि के प्रति हमारी यही धारणा

रही है। हम अपनी श्रद्धा के पुष्प उसके चरणों पर चढ़ाते चले आए हैं। वह हमारे पूर्वजों की भी जननी है। उससे अपना यही सम्बन्ध स्थापित करके मानव का जीवन सफल हुआ है। इसलिए जयघोष के साथ वह घोषणा करता है, "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" स्वर्ग का वैभव उस माँ वसुन्धरा के सुख के आगे हेय है। उसी मातृभूमि की वंदना का अमर संगीत हमारे जीवन का मधुरतम राग है। आज उसी की वंदना का पर्व है।

71. चम्पा षष्ठी

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी को चम्पा-छठ या चम्पा षष्ठी कहते हैं। आज के दिन भगवान् विष्णु ने माया-मोह में फँसे हुए देवर्षि नारद का उद्धार किया था। इसीलिए संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने की इच्छा रखने वाले लोगों को आज के दिन व्रत करके उसकी कथा को स्मरण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो कथा पुराणों में मिलती है वह इस प्रकार है कि, एक बार देवर्षि नारद को अपने त्याग-तप और संयम पर बड़ा गर्व हुआ। वह अपने मुख से अपने त्याग की महिमा का बखान करते हुए भगवान् शंकर के सामने गए और कुशल समाचार पूछने पर संयम की डींग हाँकने लगे। शंकर ने उन्हें समझाते हुए कहा—"देवर्षि! जिस तरह आपने अपने तप की महिमा का वर्णन मुझसे किया ऐसा भगवान् विष्णु के सामने मत करिएगा।" नारद उस समय तो चुप हो गए। परन्तु उनके हृदय में अन्दर ही अन्दर अपने तप का हाल अपने इष्टदेव भगवान् को सुनाने की इच्छा प्रबल हो उठी। वह वहाँ से उठकर सीधे ही विष्णु-लोक को चले गए। भगवान् ने उन्हें अपना परम-भक्त जानकर बड़ा आदर-सत्कार किया। परन्तु उनके मुख

से जब उन्होंने आत्म-प्रशंसा के शब्द सुने तो अपने मन में सोचा कि इन्द्रियों के दमन से देवर्षि के मन में अभिमान जाग उठा है। और भगवद् भक्तों में अभिमान होना उनके पतन का कारण होता है। इसलिए मुनिवर को ऐसा क्रियात्मक पाठ पढ़ाना चाहिए जिससे उनके मन का अभिमान दूर हो जाय।

नारदजी जब भगवान् के पास से लौट रहे थे तब प्रभु ने उन्हें अपनी माया का एक अद्भुत खेल दिखा दिया। उन्हें मार्ग में एक बड़ा सुसमृद्ध राज्य मिला। उस राज्य का शासन एक देव-तुल्य राजा कर रहा था। उसकी राजकन्या की झलक किसी प्रकार नारद ने देख ली और वे उस पर अनुरक्त हो उठे। उसका स्वयंवर होने वाला था। उनके मन में उससे विवाह करने का विचार उत्पन्न हुआ। परन्तु दाढ़ी-मूँछ वाले बैरागी बाबा के साथ कोई सुन्दरी अपनी इच्छा से क्यों विवाह करने लगी यह सोचकर देवर्षि नारद अपने इष्टदेव भगवान् विष्णु के पास जाकर बोले—"प्रभो! आप मुझे इतना रूप प्रदान कर दें कि जिससे मैं उस राजकन्या का मन अपनी ओर खींचकर उसे अपनी पत्नी बना सकूँ।" इतनी जल्दी देवर्षि नारद के संयम का बाँध टूटा हुआ देखकर प्रभु भी पहले तो हँसे। परन्तु नारद को रूप का वरदान देकर उन्हें उस कन्या के स्वयंवर में भेज दिया। नारद बड़ी प्रसन्नता से वहाँ गए। परन्तु जब राजकन्या ने दूसरे के गले में अपने हाथ की जय-माला डाल दी तब नारद को भगवान् विष्णु पर बड़ा क्रोध आया कि जिन श्री हरि का वह बड़े प्रेम से निरन्तर स्मरण करते थे वह उनके मन को रखने के लिए ज़रा-सा काम न कर सके। इसलिए उन्होंने भगवान् को श्राप दे डाला—

बंचेहु मोहि जवन धरि देहा।
सो तनु धरहु श्राप मम एहा॥

अर्थात्—जिस रूप को रखकर तुमने मुझे ठग लिया वही रूप लेकर तुम्हें पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा। श्री विष्णु ने श्राप तो स्वीकार कर लिया परन्तु अपने भक्त को विषयों के मार्ग पर जाने से बचा लिया।

भगवान् की इसी महिमा का प्रकाश करने के लिए आज का व्रत

मनाया जाता है और भवजाल को काटने वाले उन्हीं श्री हरि का आराधन किया जाता है।

72. गीता जयन्ती

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी

आज कर्त्तव्य मार्ग का महान् निर्देश देने वाली श्री मद्‌भगवद्‌गीता का जन्म दिन है। आज के दिन कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि पर खड़े हुए भगवान् श्री कृष्ण ने मोह में फंसकर अपने कर्त्तव्य से विमुख होने वाले अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। गीता का उपदेश केवल अर्जुन को ही दिया गया हो वैसी बात नहीं है, वह तो अर्जुन के बहाने सारे विश्व के लिए एक अमर संदेश है। उसमें मानव के कर्त्तव्य की गंभीर विवेचना हुई है। गीता भगवान् श्री कृष्ण द्वारा एक छोटे-से गागर में भरा हुआ सागर है। आज विश्व की प्रत्येक भाषा में उसके अनुवाद प्रचलित हैं। संसार का कोई धर्म ऐसा नहीं है जिसमें गीता के मत को मानने वालों की संख्या कम हो। वह एक सार्वभौम ग्रंथ ही नहीं बल्कि हमारी राष्ट्रमाता है। मानव के मार्ग-दर्शन के निमित्त नैतिक विधान ही नहीं अपितु ज्ञान और वैराग्य का अक्षय तथा अखण्ड विश्व-कोष है।

गीता में कहा गया है कि मानव को इतना कमजोर नहीं बनना चाहिए कि संसार के साधारण दुख-सुख भी प्राणी पर आसानी से असर डाल सकें। लाभ-हानि, जय पराजय को एक जैसा मानकर मानव को कर्तव्यरत होना चाहिए, यही गीता का ज्ञान है जो मानव जीवन का जागृत मंत्र है। संसार की सभी विद्याएँ प्रायः यही सिखाती हैं कि मानव अल्प है, क्षणभंगुर है और सीमित शक्ति वाला है। परन्तु गीता संजीवनी विद्या है। वह मनुष्य को महान् मानती है। कभी न मरने

वाला मानती है और असीम शक्ति का भंडार मानती है।

वह व्यक्ति दरअसल महान् है जिसने जीवन के सभी तूफानों को हँसते-हँसते झेलकर असफलताओं और कठिनाइयों से चूर-चूर होने के बजाय उन्हें अपनी सफलता का प्रेरणा-स्रोत बना लिया है। मानव जीवन की सफलता स्वयं मानव के हाथ में है। वह कायरता या निराशा की मूर्ति बनकर आत्म-सम्मान को गँवाने के लिए नहीं वरन् जीवन की निराशा पर विजय पाने के लिए कर्म क्षेत्र में उतरता है। ईश्वर पर भरोसा रखकर मार्ग की विघ्न-बाधाओं की परवाह न करता हुआ अपने जीवन की नौका को मंजिल की ओर बढ़ाता हुआ ले जाता है और आंतरिक आनन्द एवं उल्लास का अनुभव करता है। इस आनन्द के विषय में गीता का मत है कि—

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते।

चित्त से प्रसन्न रहने से उसके सभी दुखों का नाश हो जाता है। क्योंकि जिसका चित्त प्रसन्न है उसकी बुद्धि भी तत्काल स्थिर होती है। और जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती उससे इस दुनिया में कुछ भी करते-धरते नहीं बन पड़ता।

इस प्रसन्नता या सुख के बारे में लोगों की धारणाएँ अलग-अलग हैं। लोग यह मानते हैं कि प्रसन्नता उन पदार्थों में है जिन्हें हम अपने अर्थ या पैसे से खरीद सकते हैं। अधिक धन होगा तो माया का प्रसार बढ़ेगा, अधिक चीजें आएँगी। अधिक सुख का अनुभव होगा, परन्तु क्या आज तक कोई भी व्यक्ति उन से प्रसन्नता खरीद सका है? धन और सम्पत्ति से आज तक किसी के मन को शांति और सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सका। सच्चा सुख हमारे खाने-पीने या ऐश आराम लेने में नहीं, वह तो आदर्श जीवन जीने से ही प्राप्त होता है। उसका जन्म उच्च विचारों एवं परोपकार के कार्यों में होता है। स्वार्थ, ईर्ष्या और लालच से वह दूर भागता चला जाता है। ऐसे लोग उसे अपने जीवन में छू भी नहीं सकते। गीता ने हमें यह सिखाया है कि प्रसन्नता कोई बाहर की वस्तु नहीं है और न वह थोथे उपायों से भविष्य में मिलने वाली है।

यह तो हमारे अपने हृदय की संपत्ति है जिसके आधार-स्रोतों के उद्भव का स्थान हमारा अंतःकरण है। इसलिए उसे हम जब चाहें प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन के पहलुओं पर लौकिक दृष्टि से जो विचार हमें करना चाहिए उसके बारे में तो गीता ने विचार किया ही है परन्तु केवल यही बात उस समूचे ग्रंथ में वर्णन की गई हो ऐसा नहीं है। उसमें तो दर-असल ज्ञान-भक्ति युक्त कर्म की महिमा का गान हुआ है।

जिन पाश्चात्य पंडितों ने परलोक सम्बन्धी विचारों को छोड़ दिया है या जो लोग उसे गौण मानते हैं वे गीता में प्रतिपादित किये गए कर्मयोग को भिन्न-भिन्न लौकिक नाम दे डालते हैं। जैसे सद्व्यवहार शास्त्र, सदाचार शास्त्र, नीति शास्त्र, अथवा समाज धारणा-शास्त्र आदि। परन्तु गीता आगे जाकर गहन अध्यात्म तत्व का निर्देश कर रही है—ऐसा अध्यात्म जीवन जिसे मानव जीवन की सुगन्धि कहा जा सकता है। श्रद्धा और विश्वास ही तो मानव जीवन की ताली हैं। यदि विश्वास न हो तो विजय भी नहीं होगी। जो लोग अपने जीवन को विकसित करना चाहते हैं वे विश्वास के साथ प्रगति की राह पर बढ़ते जाते हैं। पीछे मुड़कर नहीं देखते। कवीन्द्र श्री रवीन्द्र ने अपने 'एकला चलो रे' गीत में गीता के इसी संदेश की पुनरावृत्ति की है। संसार में तुम अकेले कहाँ हो? विश्व की सभी शक्तियाँ तुम्हारी सहायता की बाट जोह रही हैं। आगे बढ़ो और देखो कि विश्व की शक्तियाँ तुम्हारी सहायता के लिए किस तरह आगे आती हैं। यही गीता का प्रतिपादित मार्ग है।

ऐसे अमर संदेश की दाता माँ गीता के उपदेश से हमारा जीवन उपकृत हो इसीलिए उसकी जयन्ती मनाकर हम उसके संदेश को जीवन में ग्रहण करें यही इस पुनीत पर्व को मनाने का लक्ष्य है। इसलिए बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ सामूहिक रूप में हमें हर प्रदेश में गीता जयन्ती का महोत्सव मनाकर उसकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

73. संकष्ट चतुर्थी

पौष कृष्णा चतुर्थी

आज के दिन गौ के गोबर की गणेश-प्रतिमा बनाकर पूजी जाती है। गोबर खाद के रूप में तो हमारे देश की खेती का प्राण है ही किन्तु आज के युग ने तो उससे गैस पैदा करके उसे और भी उपयोगी बना दिया है। पुराने युग के लोग गौ के गोबर को धरती के अनेक कीटाणुओं का नाशक मानते थे। इसलिए प्रत्येक शुभ कर्म में उससे भूमि को लीपना पवित्रता का द्योतक माना जाता है। प्लेग जैसे संक्रामक रोग के अवसर पर भूमि को गोबर से लीपने की सलाह कुछ डाक्टर दिया करते हैं। अब भी डाक्टरों की राय में गोबर 'एण्टी सैप्टिक' (कीटाणु-नाशक) माना जाता है। पंचगव्य बनाते समय गोबर मिलाने के अवसर पर यह मंत्र पढ़ा जाता है :—

अग्रमग्रं चरन्तीनामौषधीनां बने बने।
तासामृषभ पत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्॥
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा।

अर्थात्—जंगल में औषधियों के ऊपर के भाग को चरने वाली गायों का गोबर पवित्र और शरीर को पवित्र करने वाला होता है। हे गोबर! तू मेरे शरीर के रोगों और उससे होने वाले शोक को दूर कर। इटली में अब भी हैज़ा या अतिसार के रोगी को ताजे पानी में ताज़ा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाब के पानी में हैजे के जंतु हों उसमें गोबर डालते हैं। उनका अनुभव है कि इससे हैज़े के जन्तु मर जाते हैं। (कल्याण, गो अंक पृष्ठ 431)

मद्रास के सुप्रसिद्ध किंग कहते हैं कि यह अब हाल के प्रयासों से सिद्ध हो गया है कि गाय के गोबर में हैज़े के कीटाणुओं को मारने की अद्भुत शक्ति है। डाक्टरों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि 'रोग-जन्तुनाश के लिए गोमय का बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपयोग है।' (कल्याण गो अंक पृष्ठ 431)

योग रत्नाकर में कहा गया है कि—

गो शकृदरस दध्यम्ल क्षीर मूत्रैः समैघृतम् ।
सिद्धं चतुर्थकोन्माद ग्रहापस्मार नाशनम् ।।
अपस्मारे ज्वरे कासे श्‍व यथावुदरेषु च ।
गुल्मार्शः पांडुरोगेषु कामलायां हलीमके ।
अलक्ष्मी ग्रह रक्षोघ्नं चतुर्थकं विनाशनम् ।।

गाय के गोबर का रस, दही का खट्टा पानी, दूध और गोमूत्र बराबर लेकर उससे तैयार किया हुआ घृत, चौथिया (चार दिन में आने वाला ज्वर) पागलपन, भूत-प्रेत और अपस्मार (मृगी) का नाशक है। यह अपस्मार, ज्वर, खाँसी, सूजन, उदर के विकार, वायुगोला, बवासीर और तीनों तरह के पीलिया के रोग में हितकारी है। अलक्ष्मी, भूत-प्रेत और राक्षसों तथा चौथिया का नाशक है।

इतने उपयोगी गुणों से अलंकृत गोबर के गणेश बनाकर पूजने की कल्पना भी एक अनूठी चीज़ है। पूजने का आधार भी यही है कि हम उसके महत्त्व को समझें। उसे गंदा और व्यर्थ की चीज़ मानकर फेंक न देवें। उसका आदर करना सीखें। उसकी प्रतिष्ठा करें। अब रही गणेश बनाने वाली बात। गणेश तो बुद्धि के देवता हैं। उनका आकार गोबर का बनाया जावे यह दूसरी अनोखी बात है।

वास्तव में दूसरे देवताओं में भी वही गणेशजी तो सब्से अधिक पूज्य और अग्रगण्य माने जाते हैं। इसलिए उन्हीं को हमारे समाज में सर्व प्रथम स्थान मिला है। उसके पूजने की रीति पुराणों में इस प्रकार वर्णन की गई है कि गोबर की गणेश प्रतिमा बनाने के उपरान्त एक कोरे घड़े में जल भरे और उसके मुख पर नवीन वस्त्र टाँककर यव अथवा अक्षत से भरा हुआ पात्र रखे। बाद में शान्त चित्त होकर श्री गजानन का ध्यान करे। तब षोडशोपचार विधि से उनका पूजन करें। आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध और पुष्प आदि से पूजन करने के बाद अंगपूजन आरम्भ करे। अंग पूजा में चरण, जंघा, उरु, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, कंठ, स्कंध, हाथ,

मुख, ललाट, सिर और सर्वांग का पूजन होता है तथा धूप-दीप नैवेद्य, आचमन, तांबूल और दक्षिणा के पश्चात् आरती करके उन्हें प्रणाम करना चाहिए। इस पूजा में कम-से-कम इक्कीस लड्डू भी रखने चाहिएँ। उनमें से पाँच तो गणेशजी की भेंट करें और शेष गाँव के प्रतिष्ठित विद्वानों को अर्पण करने चाहिएँ। यह सारी क्रिया दिन में मध्याह्न के समय होनी चाहिए। रात्रि में जब चन्द्रमा उदय हो उस समय तक भगवद्-कीर्तन करें। बाद में गाँव के प्रत्येक बूढ़े-बालक और युवा को प्रसाद देकर दक्षिणा सहित गणेश प्रतिमा को गाँव के आचार्य को अर्पण करें। बाद में सब लोग गणेशजी की महिमा सुनते हुए शेष रात्रि व्यतीत करें।

इस तरह के सामूहिक पूजन से गाँव में समृद्धि आती है। पाठक इस पूजन का रहस्य और भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इस तरह के पर्व मनाने का महत्त्व अच्छी तरह स्वयं समझ सकते हैं कि कितना महत्त्वशील और प्रभावशाली है। जब से हमने ऐसे पूजन की प्रथाएँ अपने आलस्य और अश्रद्धा के कारण बन्द कर दी हैं तब से हमारे जीवन में जो विषमताएँ आईं उनका परिणाम हमारे सामने है। हमारा देश तो जनपदों का देश है। पाँच लाख बासठ हज़ार गाँव आज समूचे देश में हैं। उनकी प्रतिष्ठा से देश की सम्पत्ति और अन्न के भंडार की वृद्धि होगी। उसे अपार उत्साह के साथ प्रतिष्ठा देने के महत्त्व को जागृत करने का काम हमारे सामने है। धार्मिक-यज्ञ के समान उसे प्रतिष्ठित करने का भार आज देश के प्रत्येक नागरिक और समाज सेवा करने वाले भाइयों पर है।

74. सफला एकादशी

पौष कृष्णा एकादशी

इस एकादशी को सफला एकादशी कहते हैं। पौष मास के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। इसके आराध्य देव श्री नारायण हैं। जिस तरह नागों में वासुकी, पक्षियों में गरुड़, यज्ञों में अश्वमेध, नदियों में गंगा और पर्वतों में पर्वतराज हिमालय हैं, उसी तरह एकादशियों में सफला एका-दशी है। आज के दिन नारियल, आंवला, दाड़िम, सुपारी, लौंग और अगर आदि से भी नारायण की पूजा की जाती है। दीपदान और रात्रि-जागरण होता है। व्रत की महिमा तो इस ग्रंथ में यथेष्ट कही जा चुकी है। पाठक उसके महत्त्व को भली प्रकार समझ लें। यह जीवन खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए तो मिला नहीं है। जीवन का सही उप-योग तो दूसरों की हित-चिन्ता में कष्ट सहने से होता है। इसका रहस्य तो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में निहित है। इस एकादशी के व्रत की महिमा पर नीचे लिखी हुई कथा पुराणों में कही गई है।

महिष्मत नामक एक राजा की चम्पावती नामक पुरी थी। उस राजा के चार पुत्र थे। उनमें सबसे छोटा लड़का लुयंक बड़ा पापाचारी था। व्यभिचार, चोरी, जुआ और वेश्यागमन आदिक दोष उसके चरित्र में घर कर गए थे। अपने पिता से पाये हुए धन को वह इन्हीं सब कु-कर्मों में खर्च कर देता था। राजा ने उसके दुर्गुणों से अप्रसन्न होकर उसे अपने राज्य से निकाल दिया। तब वह जंगलों में भटकने लगा। परन्तु बुरी आदतें जब मनुष्य के चरित्र में जड़ पकड़ लेती हैं तब वह आसानी से दूर नहीं की जा सकतीं। इसलिए जंगलों में भूखे-प्यासे भट-कते रहने से भी उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। वह वहाँ रहते हुए चोरी या डकैती करता हुआ अपना जीवन बिताने लगा।

जंगलों में रहकर लूटमार करते हुए भी लुयंक को तीन दिन भूखे रहना पड़ा। तब क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल होकर उसने एक महात्मा की कुटिया पर छापा मारा। उस दिन सफला एकादशी का दिन था।

महात्मा की कुटी में तो केवल एक दिन का अन्न ही रहता था। उस दिन व्रत होने के कारण वहाँ कुछ भी नहीं था। परंतु लुयंक को देखकर महात्मा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और भोजन के अतिरिक्त जो कुछ थोड़े-बहुत कपड़े और पात्र उनके पास थे वह उसे दे दिए और कहा कि आपका स्वागत करने के लिए मुझ जैसे गरीब की झोंपड़ी में आज कुछ फल-फूल भी नहीं निकले, इसका मुझे दुःख है। अस्तु, जो कुछ मेरे पास है वह आपकी भेंट है।

महात्मा के ऐसे सद्व्यवहार से लुयंक की बुद्धि पलटी और उसने सोचा कि एक यह भी मनुष्य है जो अपने घर चोरी करने के लिए आये हुए चोर का भी स्वागत करता है और एक मैं हूँ जो ऐसे परोपकारी महात्मा के घर में भी चोरी करने से नहीं चूकता। धिक्कार है ऐसे जीवन पर। राजा का पुत्र होकर भी मैं कितना नीच हो गया हूँ। यह सोचकर वह उन महात्मा के पैरों पर गिर पड़ा और स्वयं अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा।

महात्मा ने उससे कहा—मैं एक ही शर्त पर तुम्हें क्षमा कर सकता वह यह कि तुम आज से मेरे पास रहा करो और जो कुछ मैं भिक्षा वृत्ति से लाऊँ उसी पर जीवन निर्वाह करते हुए अपने विचारों को ऊँचे आदर्शों से सुसज्जित करो। लुयंक तो बे-घर-बार का आदमी था ही। उसने महात्मा की बात मान ली और वहाँ रहकर सदाचारमय जीवन बिताने लगा। धीरे-धीरे उसकी सारी दुष्प्रवृत्तियाँ बदल गईं। परन्तु वह अपने विचारों में परिवर्तन लाने वाले दिन को न भूला। इसलिए महात्मा का उपदेश लेकर प्रत्येक एकादशी का व्रत करने लगा। कुछ दिनों बाद महात्मा ने भी उसे पूरी तरह से बदला हुआ जानकर अपना असली रूप उसके सामने प्रकट कर दिया। वह महात्मा और कोई नहीं स्वयं उसके पिता महाराज महिष्मत थे। पुत्र को घर से निकालने के कारण उनकी आत्मा दुखी थी इसीलिए उन्होंने बन में महात्मा के रूप से अपने पुत्र की आदतों को सम्हालने का उपाय किया। दर असल डाँट-फटकार और ताड़न से किसी की आदतें नहीं बदली जा सकतीं। परन्तु प्यार, मुहब्बत और सद्गुणों के सहारे बुरे से बुरे आदमी का हृदय बदला जा

सकता है। यही इस कथा का रहस्य है। पुत्र को सद्गुणी बनाकर महाराज उसे अपने साथ लिए हुए राजधानी में वापस आ गए और राज्य की जिम्मेदारी उसे सौंप दी। लोगों को भी उसके विचारों और आचरण में परिवर्तन देखकर महान् आश्चर्य हुआ। और वे सब धीरे-धीरे महाराज महिष्मत से भी अधिक लुयंक पर स्नेह करने लगे। आगे चलकर वही लड़का एक चतुर और योग्य शासक बना और राज्य की जिम्मेदारियाँ सम्हालते हुए भी वह प्रत्येक एकादशी व्रत की महिमा अपने नागरिकों को सुनाता और उन्हें साधन करने की ओर प्रवृत करता रहता। सफला एकादशी का व्रतोत्सव तो वह अपने जन्मोत्सव की तरह मनाता। तभी से इस एकादशी की महिमा इतनी बढ़ी।

75. मौमवती अमावस्या

पौष अमावस्या

अपने चारों ओर पालतू जानवर ऐसे मनुष्यों की भीड़ देखकर हो सकता है कि आप को अपने अन्दर की दैवी शक्ति की चेतना न हो। लेकिन कोई न कोई क्षण तो अवश्य ऐसा आता ही है जब हम यह सोचने के लिए मजबूर होते हैं कि हमारी शक्ति के पीछे भी कोई महान् शक्ति है, जो सब में एक जैसी है। कभी-कभी शान्त चित्त होकर अपने अंतर में गूंजने वाली उस ध्वनि को मौन होकर सुनिए और देखिए कि वह कितनी महान् है जो आपके अच्छे काम पर आपको अंदर से शाबाशी देती है और आपकी कमजोरियों का नग्न चित्र आपके सामने उपस्थित कर देती है। वह ध्वनि हमारी आत्मा की है। दुनिया के झंझावात में वह सुन नहीं पड़ती परन्तु इस वाह्य दृश्यमान जगत् से आँखें मूँदकर बड़ी शान्ति के साथ मौन होकर आप उस आत्म-संगीत की मधुर रागिनी को सुन सकेंगे। आज के नये दर्शन से आप उसी महा-

शक्ति का वरदान पा सकेंगे। प्रत्येक पक्ष की अमावस्या इस तरह मौन रहकर आत्म चिंतन के लिए निश्चित की गई है। भारतीय दर्शन ने आत्म-चिंतन की अनेक विधियाँ मानव को प्रदान की हैं और उन दिनों या क्षणों को महा पर्व के रूप में मनाने का आदेश समाज को दिया है। समाज भी उन्हें पाकर उपकृत हुआ है। उसने उन्हें दृढ़ता से अपने भीतर आदर का स्थान दिया है।

मानव केवल अपने आप या अपने समाज की ही बात सोचकर रह जाय, यह बात भारतीय संस्कृति को मान्य नहीं है। उसने उसके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का सुदृढ़ प्रयत्न किया है। इसीलिए मानव को मानवेतर सृष्टि से भी अपना सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा दी है। अतः प्रत्येक पक्ष के अंत में उस पाठ को दोहराते रहना चाहिए यही उसका क्रियात्मक उपाय है।

आज के दिन अश्वत्थ (पीपल)वृक्ष और विष्णु का पूजन करके 108 बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए। प्रत्येक प्रदक्षिणा का फल शास्त्र में अलग-अलग कहा गया है। हमारी मानवीय सृष्टि के सबसे बड़े संगठक (Organisor) महर्षि वेदव्यास हैं। उन्होंने मानव-समाज की भाँति वृक्षों को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार विभागों में बाँटा है। बरगद पीपल आदि के वृक्षों में एक महान् गुण है। वह यह कि यदि किसी दूसरी जाति का बीज उनके शरीर पर पड़ जाय तो वे उसे अपने रसों का भाग देकर फलने-फूलने का अवसर और अवकाश भी प्रदान करते हैं। अक्सर बरगद और पीपल के वृक्षों की छाती पर दूसरी जाति के पेड़ भी निकले हुए आपने देखे होंगे। वे वृक्ष धरती का आसरा नहीं पाते। बर या पीपल की शाखें ही उनका आधार है। एवं बरगद और पीपल के वृक्ष धरती माता से यथेष्ठ रस सिंचन करके उन्हें भी रस पहुँचाते रहते हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे वृक्ष ब्राह्मण वर्ण के वृक्ष माने गए हैं जो स्वयं तो फलते और फूलते हैं ही साथ ही अपनी छाती पर दूसरे उग आने वाले वृक्षों की अभिवृद्धि भी चाहते हैं।

फिर 108 प्रदक्षिणा का रहस्य तो और भी उत्कृष्ट है। 108 के अंक को ज़रा गौर से देखिए। इसमें पहला अंक है एक। बीच में शून्य

और अंत में आठ। यह रूप किसी विशिष्ट सिद्धान्त की ओर संकेत करता है। हिंदू धर्म अनेक सिद्धान्तों की गंगा के समान है। जिस तरह अनेक नदी-नाले गंगा में मिलकर उसके रूप को वृहदाकार कर देते हैं, उसी तरह हिंदू धर्म भी अनेक सिद्धान्तों की वारिधारा को लेकर आगे बढ़ता है। हमारे यहाँ अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद आदि अनेक वाद हैं। सभी वादों ने बड़ी-बड़ी दलीलों से जीव के कर्मों और उसकी गति का विवेचन किया है। छोटे-छोटे नदी नालों की तरह इन विचारों की धारा हिंदू धर्म की महान् जलधारा में समय-समय पर आकर मिल गई हैं। हिंदू धर्म ने उन्हें आत्मसात् करके महानद का रूप ले लिया, यही इस धर्म की त्वरित गति है। इन सभी वादों में कहीं पर एकात्मवाद और कहीं अनेकात्मवाद पर विचार हुआ है। परन्तु ब्रह्म, जीव और प्रकृति नामक तीन मौलिक तत्वों पर सबने विचार किया है। वही ब्रह्म एक अंक है जिसे पूर्ण माना गया है यथा—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात्—वह पूर्ण है, उसी पूर्ण में से पूर्ण का विकास हुआ है। उस पूर्ण में से यदि पूर्णता को अलग कर दिया जाय तो भी उसकी पूर्णता अक्षुण्ण रहती है। यही उस तत्व का सार है।

मान लीजिए एक दो वर्ष का बालक है—कल को वह जवान या बूढ़ा होता है। बचपन में उसके छोटी-छोटी सुन्दर दो आँखें, दो कान, दो हाथ और दो पैर तथा अवयव हैं। वह अपने-आप में पूर्ण है। कल को जवान होने पर उसके वही अंग सबल और पुष्ट होते हैं। उस समय उसमें कुछ नए अंग नहीं निकल आते वरन् वही पुराने अंग अपनी पूर्णता में विकसित होते हैं। यह सारी सृष्टि इसी तरह विकास के फल हैं। इसीलिए आगे किसी जीव तत्व की कल्पना शून्य के समान है। जीव का आकार अलग हो सकता है उससे पूर्णांक की कीमत बढ़ जाती है। मगर उसका स्वतंत्र मूल्य कुछ नहीं है। इसी तथ्य को प्रकट करने वाला शून्य एक सौ आठ में एक के पूर्णांक के बाद रखा गया है। वह प्रकृति तत्व है। गीता में अष्टधा प्रकृति का लेख है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेवच ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकृति माता के महत्तत्त्व हैं। सभी निराकार तत्त्वों को साकार रूप देने का काम भौतिक प्रकृति के इन आठ तत्त्वों के मेल से होता है। इसीलिए सगुण प्रकृति के अष्टधा महत्तत्त्वों को जोड़कर 108 का एक अंक शास्त्रकारों ने निर्धारण किया है। निर्गुण ब्रह्म अपने आप में पूर्ण होता हुआ भी बिना अष्टधा प्रकृति के मेल के साकार नहीं हो सकता। अतः निर्गुण और सगुण की सारी प्रक्रिया, समस्त दृश्यमान जगत् के मूल की कल्पना 108 के अंक में निहित मानी जाती है और जिन लोगों को हम साकार रूप में ब्रह्म के समान पूज्य मानते हैं उनके नाम के आगे 108 का अंक लिखकर इसी तथ्य की स्मृति जागृत करते हैं।

अमावस्या के उत्सव में अश्वत्थ वृक्ष की 108 परिक्रमा का रहस्य भी इसी में निहित है। पहले हम यह मानते रहे कि वृक्ष तो निर्जीव होते हैं परन्तु जगदीशचंद्र वसु जैसे सुयोग्य विद्वानों ने जब युग को यह सुनाया कि वृक्षों में भी प्राण होते हैं, उनमें चेतना होती है, वे सांस लेते हैं, उनके भी अवयवों की प्रक्रिया का अपना ढंग है, तब से हमें अपने प्राचीन शास्त्रों की मर्यादा का संस्मरण हो गया और उनकी छानबीन में हमने बहुत कुछ पाया है। अमावस्या के इस पाक्षिक साधन पर आगे चलकर मौनी अमावस्या के प्रकरण में अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा।

76. पुत्रदा एकादशी

पौष शुक्ला एकादशी

निराशा—मानव की सबसे बड़ी शत्रु और ईश्वर का अभिशाप है। मानव में छिपी हुई दैवी शक्तियों के ह्रास का सबसे बड़ा कारण वही है। यह राक्षसी मानव के तन और मन दोनों पर एक जैसा आक्रमण करती है। ऐसे अवसरों पर यदि आपके मन में अदम्य साहस और आत्मविश्वास का संचार करने वाले महात्माओं का प्रेरणात्मक मंत्र न मिले तो आपको अपना जीवन भी भार स्वरूप प्रतीत होगा। ऐसी दशा में आत्मह्त्या तक की नौबत आ जाती है। परन्तु धैर्य से काम लें। निराश न हों। अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखकर आत्मविश्वास के साथ कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ें। आपकी आशा सफल होगी। निराशा का वृक्ष मुरझा जायगा।

पुत्रदा एकादशी के महात्म्य में एक ऐसे ही निराश व्यक्ति की कथा का वर्णन किया गया है कि एक सुकेतु नाम का सद्गृहस्थ था। उसकी पत्नी का नाम शैव्या था। परन्तु उसके कोई संतान नहीं थी। नारी के जीवन की सफलता तो मातृत्व के विकास में होती हैं। जब उसके अंतस्तल में छिपी हुई करुणा, ममता और प्यार की अजस्र धाराओं को फूट पड़ने की राह ढूँढनी पड़ती है और उसके अभाव में उसे अपना जीवन खटकने लगता है। इसलिए संतान के दुख से पति-पत्नी दोनों दुखी रहते थे। इस दुख के असह्य हो जाने पर सुकेतु ने आत्मघात करने के विचार से सघन जंगल की राह ली और अपनी पत्नी को अकेला छोड़कर चला गया। जंगल में भटकते-भटकते दोपहर हो गई। भूख और प्यास से उसका कंठ सूखने लगा। इसलिए थककर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया और अपने भाग्य को कोसने लगा। इतने में ही उसके कानों में कुछ वेद मंत्र का उच्चारण करने वाले ऋषियों का कंठ-स्वर पड़ा। सुकेतु उठकर उस स्थान पर पहुँचा जहाँ से वह सुन्दर ध्वनि आ रही थी। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि नवीन कमलों

से परिपूर्ण एक तालाब के किनारे बैठे हुए कुछ वेदज्ञ ब्राह्मण बैठे हुए वेद पाठ कर रहे हैं। सुकेतु ने उनके पास पहुँचकर बड़ी श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया और चुपचाप एक ओर बैठकर उनके स्वर सहित पाठ का रस लेने लगा। पूजन समाप्त होने पर ब्राह्मणों ने उसका परचय पूछा। सुकेतु ने अपने कुल आदि का परिचय देने के साथ-साथ अपनी निराशा और बन में आने का कारण उन्हें बता दिया। ब्राह्मणों ने उसे सुनकर सुकेतु को धैर्य बंधाया। और पुत्रदा एकादशी का व्रत करने की विधि बताकर कहा कि इस अनुष्ठान को अपनी पत्नी समेत करने से तुम्हारे पापों का क्षय होगा और वंशवृद्धि के लिए सुयोग्य तथा पर-उपकारी पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी।

सुकेतु व्रत की विधि का उपदेश लेकर ब्राह्मणों को प्रणाम करके अपने घर लौट गया और पत्नी समेत उस तरह के साधन को करने में लग गया। कुछ दिनों बाद उसे एक सुयोग्य पुत्र रत्न का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसी ने इस एकादशी का नाम पुत्रदा रखा और तभी से इस व्रत की परम्परा हमारे समाज में शुरू हुई।

77. सुभाष जयन्ती

पौष शुक्ला चतुर्दशी

पौष शुक्ला चतुर्दशी हमारे देश के परम भक्त नेता श्री सुभाषचंद्र बोस की जन्मतिथि है। अंगरेजो महीने की जनवरी मास की 12 तारीख के आसपास यह तिथि पड़ती है। सुभाष बाबू का जन्म सन् 1897 में कटक ज़िले में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री जानकीनाथ और माता का नाम प्रभावती देवी था। इनके बड़े भाई का नाम श्री शरतचंद्र बोस था।

सुभाष बाबू बचपन से ही एक प्रतिभावान बालक थे। कालेज की

शिक्षा बी० ए० तक प्राप्त करके आप इंग्लैंड गए और वहाँ भी अपनी उदीयमान प्रतिभा के कारण बहुत ख्याति प्राप्त की। अपनी स्वदेश-भक्ति के कारण उन्होंने उच्च पद की नौकरी स्वीकार नहीं की। स्वदेश आकर उन्होंने कांग्रेस दल में सम्मिलित होकर देश की आज़ादी की लड़ाई में बड़ी लगन के साथ भाग लिया और चालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने देश के लोगों का प्रेम जीत लिया। इसलिए कांग्रेस ने उन्हें अपना प्रधान चुन लिया। देश के लिए उन्होंने कई बार जेल यात्राएँ कीं और बीमार रहकर भी देश की सेवा में सदैव तत्पर रहे।

युद्ध के दिनों में अंग्रेज़ी सरकार ने सुभाष बाबू को अपने घर पर ही नज़रबंद कर दिया। परन्तु 23, जनवरी 1941 को वह उस क़ैद से छूटकर भाग निकले। पहले वे काबुल की राह से यूरोप पहुंचे। जर्मनी के तत्कालीन नेता हर्ट हिटलर से मिले, और भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने की योजना बनाई, जिसके आधार पर वह ब्रिटिश सेनाओं से भिड़ गए। कई स्थानों पर उन्हें विजय प्राप्त हुई। परन्तु अंत में राशन समय से न मिलने के कारण उनकी अपनी बनाई हुई आज़ाद हिन्द फौज को शस्त्र डाल देने पड़े। उस समय जापान जाते हुए उनके विमान में आग लग गई और वह देश को विदेशी शासकों के चंगुल से बचाने की लगन लिए हुए वीरगति को प्राप्त हो गए और भारत को आज़ादी दिलाने वाले वीरों की कोटि में उनका नाम अमर हो गया।

78. मकर संक्रान्ति

माघ कृष्णा प्रतिपदा

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणी भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

अर्थात्—सब प्राणी मेरी ओर अवैरभाव से (स्नेह भाव से) देखें। मैं सब प्राणियों की ओर स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। हम सब स्नेह की दृष्टि से देखें।

वेद के इन मंत्रों में चारों ओर आपस के मेल-जोल और प्रेम की आशा तथा आकांक्षा व्यक्त की गई है। उसको क्रियात्मक रूप देने की इच्छा हमारे सबसे बड़े सामूहिक स्नान पर्व के अवसर पर प्रतिवर्ष गंगा तट पर प्रयाग में दिखाई देती है। वहाँ देश के कोने-कोने से लोग आकर एकत्र होते हैं और पुण्यतोया भगवती गंगा के रेत के बड़े मैदान पर झोपड़ियाँ बनाकर एक महीने तक रहते हैं। गंगा और यमुना जैसी दो बड़ी सरिताओं के संगम पर जहाँ भारतीय संस्कृति की सरस्वती गुप्त धारा के रूप में मिलती है वहाँ लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष तीर्थयात्री एकत्र होते हैं। ब्रह्म मुहूर्त में ही वे यात्री पितामह भीष्म जैसे बाल ब्रह्मचारी की माता गंगा और यमराज की बहन श्री यमुना की जय बोलते हुए जाते हैं और स्नान से पवित्र होकर अक्षय-वट का पूजन एवं क्षेत्र के देवता भगवान् वेणी माधव का दर्शन करके लौटते हैं। इतना बड़ा धार्मिक मेला कदाचित् ही संसार में कहीं पर होता हो जिसमें एक साथ इतने बड़े जन-समूह को धार्मिक प्रेरणाएँ प्राप्त करने का खुला अवसर मिलता हो।

मकर-संक्रमण यानी सूर्य जिस दिन मकर राशि में प्रविष्ट हो, यह सूचित करता है कि प्रकाश की अंधेरे पर और धूप की शीत पर विजय पाने की यात्रा आरम्भ हुई। आषाढ़ के महीने से रातें बड़ी हो रही थीं। धूप या प्रकाश कम हो रहा था। वह सूर्य का दक्षिणायन काल था। किंतु आज से सूर्य का उत्तरायण काल आरम्भ होता है। दिन के परिमाण में वृद्धि होनी शुरू हो गई। रात्रि काल की अधिकता घटने लगती है। सविता की किरणें अधिकाधिक फैलने लगती हैं। रात्रि मान कम होने लगा। बस यही मकर संक्रमण है।

यह पुनीत पर्व तो आपस के स्नेह और मिठास की वृद्धि का महोत्सव है। इसलिए आज के दिन लोग आपस में एक-दूसरे को तिल-गुड़ देते हैं। तिल की उपज भी आजकल बहुत होती है इसलिए उसे स्नेह

का प्रतीक मानकर दिया जाता है। उसके साथ ही आपस में पुराने अपराधों की क्षमा माँगने का भी हमारा पुराना रिवाज है। आज इस उत्सव को सही रूप में मनाने की प्रथा पर जोर दिया जावे तो आपस की कटुताएँ दूर होकर मेल-जोल की वृद्धि हो सकती है और बढ़ते हुए सूर्य की भाँति देश की भी सौभाग्य वृद्धि होगी।

79. वक्रतुंड यात्रा

माघ कृष्णा चतुर्थी

वक्रतुंड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभ कार्येषु सर्वदा ॥

अर्थात्—करोड़ो सूर्य के समान कांति वाले, बुद्धि के देवता, महाकाय वक्रतुण्ड गजानन हमारे शुभ कार्यों को सदैव निर्विघ्न पूरा करें।

श्री गणेशजी की स्तुति के इस मन्त्र में उन्हें वक्रतुण्ड कहकर सम्बोधन किया गया है। वक्रतुण्ड का अर्थ है टेढ़ी सूँड वाले। इसकी कथा पुराणों में इस प्रकार है कि—एक बार श्री गणेशजी अपने हाथ में मोदक लेकर स्वर्गलोक को जा रहे थे। रास्ते में चन्द्रलोक पड़ा। गणेशजी जब वहाँ पहुँचे तो ठोकर खाकर गिर पड़े। गणेशजी को गिरते देख चन्द्रमा को हँसी आ गई। गणेशजी को चन्द्रमा की हँसी अच्छी न लगी। इसलिए उन्होंने रुष्ट होकर उसे श्राप दे दिया कि आज से जो तुम्हारा मुँह देखेगा वह कलंकी कहलाएगा। चन्द्रमा यह श्राप सुनकर पश्चात्ताप से कमल-सम्पुट में अपना मुख छिपाकर जा बैठे। परन्तु चन्द्रमा के अभाव में सारे लोकों में खलबली मच उठी। सब देवताओं ने जाकर प्रजापति ब्रह्मा को यह स्थिति बतलाई। प्रजापति ने देवताओं से कहा—"गणेशजी की स्तुति किए बिना चन्द्रमा के श्राप को दूर करने का कोई मार्ग नहीं है।" उन गणेश को कैसे प्रसन्न

किया जा सकता है। यह विधि भी ब्रह्माजी ने उन्हें बतला दी। देवताओं के गुरु वृहस्पति ने चन्द्रमा के पास जाकर वह विधि उन्हें बतलाई। चन्द्रमा ने उसी के अनुसार गणेश पूजा की। गणेशजी अपनी वंदना सुनकर चन्द्रमा पर प्रसन्न तो हो गए, परन्तु अपना पूरा श्राप उन्होंने वापस नहीं लिया, उसका प्रभाव सीमित कर दिया और चन्द्रमा से कहा कि केवल भादों मास की कृष्णा चतुर्थी को तुम्हारा दर्शन करने वाला कलंकित होगा। चन्द्रमा ने सिर झुकाकर श्राप स्वीकार कर लिया परन्तु उस तरह कलंकित होने वाले निरपराध व्यक्ति के उद्धार के बारे में प्रश्न किया। तब गणेश ने अपने पूजन से उसके कलंक को हरण करने का वचन दिया। तभी से भादों की कृष्णा चतुर्थी को विशेष रूप से गणपति की विशेष रूप से पूजा करने की प्रथा सारे देश में प्रचलित हो गई।

चंद्रलोक की यात्रा के लिए आज के युग में भी बड़े-बड़े प्रयत्न हो रहे हैं और शायद हमारे रॉकेट आज भी उससे टकराकर वापस लौटते हैं तो चंद्रमा को हँसी ही आती होगी। इस दिशा में भारतीय विचक्षण भी प्रयास कर चुके हैं यही तथ्य उपरोक्त कथा में दिखाई देता है। हो सकता है कि आज का विज्ञान इससे कुछ आगे प्रगति करे और चंद्रलोक की यात्रा में सफलता प्राप्त कर ले परन्तु हमारे प्रयत्न तो वक्रतुण्ड होने की सीमा के ही द्योतक प्रतीत होते हैं। उपरोक्त कथा तो हमारी इस दिशा की प्रगति को केवल अलंकारिक रूप में वर्णनमात्र करती है। उस महायात्रा की तिथि को एक उत्सव के रूप में अपनाकर समाज ने उसकी स्मृति कायम कर दी।

80. षटतिला एकादशा

माघ कृष्णा एकादशी

माघ मास के कृष्णपक्ष की एकादशी को षटतिला एकादशी कहते हैं। आज के दिन हवन, व्रत और रात्रि-जागरण का बड़ा माहात्म्य है। काली गाय और काले तिलों का दान आज के दिन बड़ा शुभ माना जाता है। अंगों में तिल के तेल का मर्दन, तिल पड़े हुए जल से स्नान, वैसे ही जल का पान और तिलों के बने हुए पदार्थों का भोजन करना बड़ा ही स्वाथ्यवर्धक माना जाता है।

देवर्षि नारद के प्रश्न पर श्री कृष्ण ने उन्हें इस पर्व का महात्म्य बतलाया है। वह कथा भविष्य-पुराण में वर्णन की गई है। कथा बड़े महत्त्व की है यथा—एक ब्राह्मणी ने बहुत दिनों तक व्रत उपवास करके अपने शरीर को सुखा डाला। उसके तप से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् विष्णु भिक्षुक बनकर उसके दरवाज़े पर आ पहुँचे और भिक्षा माँगी। ब्राह्मणी स्वभाव की ज़रा तेज़ थी। इसलिए उसने चिढ़कर एक मिट्टी का ढेला उनके खप्पर में डाल दिया। भिक्षा में मिट्टी का ढेला लेकर ही भगवान् तो चले गए। बाद में जब अपने शरीर को छोड़कर ब्राह्मणी बैकुण्ठ में पहुँची तो उसे रहने के लिए मिट्टी का एक स्वच्छ और सुन्दर भवन दिया गया। किंतु उसमें खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी। जिससे वह बड़ी दुःखी हुई। तब उसने भगवान् से पूछा कि मैंने मृत्युलोक में रहते हुए इतना कठिन साधन किया पर बैकुण्ठ में आकर भी मुझे शान्ति क्यों नहीं मिली। विष्णु भगवान् बोले—"देवि! इसका कारण यहाँ रहने वाली देवियाँ ही तुम्हें बताएँगी। उन्हीं से पूछो।" देवाङ्गनाओं ने ब्राह्मणी के पूछने पर उससे कहा—"तुमने षटतिला एकादशी की उपेक्षा की है। जिस देश में प्राणी का जन्म हो वहाँ की संस्कृति और भावनाओं की उपेक्षा करके जीव को स्वर्ग में भी आराम नहीं मिला करता। इसलिए अपनी वह कमी तुम्हें यहाँ पूरी करनी होगी।"

ब्राह्मणी ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और भारतीय संस्कृति की आस्था का पर्व स्वर्ग में मनाकर दिव्य भोगों का लाभ प्राप्त किया।

81. मौनी अमावस्या

माघ अमावस्या

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥
—गी० अ० 17 श्लो० 16

"मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह और शुद्ध-भावना मन से होने वाले तप कहलाते हैं।"

मनुष्य की लोकप्रियता को काट डालने के लिए उसकी जुबान शायद पैनी छुरी का काम करती है। कम से कम अपने बारे में तो मनुष्य को थोड़े-से थोड़ा बोलना चाहिए। यद्यपि अपने बारे में ज्यादह से ज्यादह चर्चा करना मनुष्य को स्वभावतः अच्छा लगता है। इसके लिए वह दूसरों की रुचि अथवा अरुचि का ध्यान भी नहीं रखना चाहता। शेखी बखारना या आत्म-निन्दा दोनों बातें आमतौर पर लोगों में पाई जाती हैं। दोनों ही प्रवृत्तियाँ मनुष्य की लोकप्रियता को क्षीण करती हैं। लोग अनावश्यक रूप से बातचीत के सिलसिले में अपनी चर्चा छेड़ देते हैं—वे क्या सोचते हैं, क्या करते हैं, क्या जानते हैं, इत्यादि। और बार-बार उन्हें दोहराते हुए भी नहीं थकते। वे ऐसी कहानियाँ कहते हैं या ऐसे चित्र उपस्थित करते हैं जिनमें उनकी ही प्रधानता हो अथवा अपने आदर की घटनाएँ पेश करते हैं। उन्हीं के समान वे लोग भी हैं जो अपनी शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलताओं को इस रूप में प्रकट करते हैं जिनके भीतर से उनके मन का छिपा हुआ मिथ्याभिमान झाँकता रहता है। याद रखिए असत्याचरण

बेईमानी का दूसरा रूप है। भला आपके परिवार की समस्याएँ—प्रेम और घृणा की चर्चा दूसरों को क्यों रुचिकर होने लगी ? बल्कि इस तरह की बातें करके हम अपने श्रोताओं की सहानुभूति भी खो बैठेंगे। कभी-कभी हम बिना जरूरत ही अपनी राय भी दे बैठते हैं। हो सकता है उस राय को आपने एक नीयती से ही दिया हो किंतु बिना माँगे सलाह देने वाले को लोग अच्छा नहीं समझते। हर आदमी अपनी कुछ राय रखता है। कुछ उसके काम करने के तरीके होते हैं। वह दूसरों की राय पसन्द नहीं करते। जब लोगों को आपकी राय की आवश्यकता होगी तब वे स्वयं आपसे राय माँगेगे और यदि वे आपकी राय नहीं चाहते तो आप कृपया मौन रहिए। लुक-छिपकर हर बात की टोह लगाना, बीच-बीच में बोल पड़ना और अनावश्यक प्रश्न कर बैठना आदि दोष सभ्यता और संस्कृति के शत्रु हैं। दूसरों की भावनाओं, समस्याओं और विचारों में व्यर्थ की दखलन्दाज़ी अच्छी प्रवृत्ति नहीं हैं। इन दुर्गुणों से अपने आपको बचाना मानसिक तप कहलाता है। गीता के उपरोक्त श्लोक में इन्हीं बातों की चर्चा की गई है। मौनी अमावस्या के महात्म्य में भी इन्हीं दुर्गुणों से बचने का साधन करने की प्रेरणा दी गई है। मन में यदि दुर्बलताएँ भरी हुई हैं तो अभिमान आपको कभी ठीक राह पर नहीं जाने देगा। आप अपने आपको जब तक सबसे ऊँचा और अच्छा मानते रहेंगे तब तक मानसिक तप आपसे नहीं सधेगा। इस विषय की एक कथा पितामह भीष्म ने धर्मराज युधिष्ठिर को सुनाई थी जो इस प्रकार है—

काँचीपुरी में देवस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम धनवती था। उसके सात पुत्र और एक कन्या थी। कन्या का नाम गुणवती था। देवस्वामी ने अपने सातों पुत्रों का विवाह कर दिया और कन्या के योग्य वर ढूँढने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र को भेजा। इसी बीच किसी ज्योतिषी ने कन्या की कुण्डली देखकर देवशर्मा से कहा—"सप्तपदी होते-होते गुणवती विधवा हो जाएगी।" देवशर्मा को यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसने अपनी कन्या के बैधव्य योग को हटाने का उपाय पूछा। ज्योतिषी ने कहा—"जब तुम्हारे

घर सोमा आवेगी तब उसका पूजन करने से यह वैधव्य योग दूर हो जाएगा।" देवशर्मा ने पूछा—"वह सोमा कौन है और कहाँ रहती है ?" दैवज्ञ ने कहा—"वह जाति की धोबिन है और सिंहलद्वीप में रहती है। अपने मधुर वचनों से उसे प्रसन्न करके तुम गुणवती के विवाह से पहले उसे यहाँ बुलवाने का प्रबन्ध करो।" यह सुनकर देवशर्मा के सबसे छोटे लड़के ने बहन को साथ लेकर यात्रा की और समुद्र के तीर पर जा पहुँचे।

समुद्र पार करने की चिन्ता में दोनों भाई-बहन एक वट-वृक्ष की छाया में भूखे-प्यासे बैठे रहे। उस वृक्ष के तने में एक गृद्ध की खोल थी, जिसमें उसके बच्चे सुख से बैठे हुए थे। वह दिन-भर इन भाई-बहन को देखते रहे। शाम को उन बच्चों की माँ आहार लेकर आई और बच्चों को खिलाने लगी। पर उन बच्चों ने भोजन नहीं किया एवं अपनी माता से कहा—"इस वृक्ष के नीचे दो प्राणी आज प्रातःकाल से भूखे और प्यासे बैठे हुए हैं। जब तक वे नहीं खाते हम लोग भी नहीं खाएँगे।" अपने बच्चों का यह सद्भाव देखकर गृद्ध माता दयार्द्र हो उठी। उसने अपने मेहमानों से कहा—"आप लोगों की इच्छा को मैंने जान लिया है, आप भोजन करें। जो भी फल-फूल इस वन में हैं वह मैं लाए देती हूँ और प्रातःकाल आप को समुद्र पार कराकर सिंहलद्वीप में सोमा के यहाँ पहुँचा दूँगी।" गृद्ध माता को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करके उन दोनों ने भोजन किया, और प्रातःकाल होने से पहले उसकी सहायता से सोमा के घर पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सोमा का यश सुना। पास के जंगल में एक फूँस की झोंपड़ी में रहकर उन दोनों ने उसे अपनी सेवा से आकृष्ट करने का संकल्प किया। वे लोग नित्य प्रातः अँधेरे मुँह उठकर सोमा का घर झाड़कर लीप दिया करते थे।

एक दिन सोमा ने अपनी बहुओं और बेटों से पूछा कि आजकल हमारे मकान को इतने अच्छे ढंग से कौन लीपता है ? सबने कहा—"हमारे सिवाय और कौन यह काम करने हमारे घर में आएगा।" एक दिन रात को सोमा ने चुपचाप बैठकर सारा रहस्य जान लिया। यह सुनकर कि एक ब्राह्मण कन्या और उसका भाई उसके मकान की सफाई

करते हैं। उसको बड़ा दुःख हुआ। उसने उनके इस तरह सेवा करने के कारण को पूछा। भाई ने उसका प्रश्न सुनकर कहा—"यह गुणवती मेरी बहन है। ज्योतिषियों ने सप्तपदी के बीच इसको वैधव्य योग बताया है, किंतु आपके होते हुए यदि वह संस्कार होगा तो इसका दुःखद योग दूर हो जायगा। इस कारण मैं तुम्हारे घर की सेवा करने का कार्य करता हूँ।" सोमा ने कहा—"आज के बाद तुम यह काम नहीं करना। तुम लोगों ने अपनी साधना, मधुर वाणी और निष्काम सेवा से मुझे विवश कर दिया है। अब तुम्हारी सेवा किए बिना मुझे विश्राम नहीं मिल सकता। इसलिए मैं समय पर तुम्हारे घर अवश्य पहुँचूँगी। लड़के ने विनम्र होकर कहा—"माँ! तुमने हमारे जिस उपकार का आश्वासन दिया उससे हमें हमारी सेवा का पुरस्कार मिल गया। अब हमारी प्रार्थना यही है कि आप हमारे साथ चलकर बहन के विवाह को अपने सामने सम्पन्न करा दें।" सोमा ने साथ चलना स्वीकार कर लिया और अपनी बहुओं से कहा कि मेरे आने तक यदि यहाँ किसी की मृत्यु हो जाय तो उसके शरीर को नष्ट नहीं होने देना। बहुओं ने इसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद सोमा पलक मारते ही दोनों मेहमानों के सहित कांचीपुरी में पहुँच गई।

दूसरे दिन गुणवती के विवाह की व्यवस्था हो गई। परन्तु सप्तपदी होते-होते उसके पति की मृत्यु हो गई। सोमा ने तुरन्त अपने संचित पुण्य का फल गुणवती को दान कर दिया, जिसके प्रभाव से उसका पति पुनः जीवित होकर उठ बैठा। सोमा आशीर्वाद देकर अपने घर चली गई।

संचित पुण्य का दान कर देने से सोमा के पुत्र, जामाता और पति की घर में मृत्यु हो गई। सोमा नवीन पुण्य का संचय करने के लिए एक जगह राह में ठहरी और उसने एक नदी के तीर पर स्थित एक अश्वत्थ वृक्ष की छाया में भगवान् विष्णु का पूजन करके 108 परि-क्रमाएँ कीं, जिसके पूर्ण होते-होते पुत्र, जामातृ और पति जीवित हो गए और उसका घर धन-धान्य से भर गया। मीठे वचन, अभिमान-हीनता और छोटे-बड़े का भेद भुलाकर सबकी सेवा करने का फल

बड़ा ही मधुर होता है, यही मौनी अमावस्या का संदेश है। मौन का अर्थ है बिना किसी दिखावे के सेवा करना।

82. वनायकी चतुर्थी

माघ शुक्ला चतुर्थी

आज के दिन प्रातःकाल सफेद तिलों का उबटन करके स्नान करन के बाद मध्याह्न में गणेश पूजन करने का बड़ा महात्म्य माना जाता है। उसकी कथा कहते हुए एक बार नंदिकेश्वर ने सनत्कुमारों से कहा—एक समय चौथ के चन्द्रमा का दर्शन करने से श्री कृष्ण पर चोरी का कलंक लग गया था। वह इसी गणेश व्रत के करने से दूर हुआ। गणेश का पूजन और व्रत मनुष्य की कीर्ति को उज्ज्वल करता है।

83. वसन्त पंचमी

माघ शुक्ला पंचमी

यह उत्सव ऋतुराज वसन्त के आरम्भ का है। भारत के कवियों ने ऋतु की महिमा का गान करने में अपनी वाणी को पवित्र किया है। संस्कृत साहित्य इसके सौरभ से सुवासित हो रहा है। वसन्त का अर्थ है—पक्षियों का कलरव, आम्र मंजरी की सुगन्धि, शुभ्र अभ्रों की विविधता और चंचल पवन की स्निग्धता। आज के दिन से होली और धमार का गाना आरम्भ होता है। जौ और गेहूँ की बालें इत्यादि भगवान् को अर्पण की जाती हैं। "माघ मासे सिते पक्षे पंचम्याम पूजयेद्धरिम।" माँ शारदा और वैदिकों के पूजन का भी यही दिन है। ब्रजभूमि का तो यह महान् उत्सव ही है।

वसन्त प्रकृति माता के विकास की ऋतु है। इसलिए उस सिवका

के मर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए माँ शारदा का आराधन और पूजन किया जाता है। किन्तु जिस दिन को इस उत्सव के लिए निश्चय किया गया है उस दिन अच्छा खासा चिल्ला जाड़ा पड़ता है और बजाय विकास के तेज बहने वाली हवा के ज़ोर से पतझड़ का आरम्भ होता है। दरअसल जिसे वसन्त ऋतु कहा जाता है वह काल चैत्र मास से अथवा सूर्य के मेष राशि पर प्रवेश करने पर आरम्भ होता है। अतः आज के दिन वसन्तोत्सव मनाना साधारणतया समझ में नहीं आता। फिर भी वसन्त के आरम्भ का कारण यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक ऋतु का चालीस दिन का गर्भकाल होता है और यह दिन वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से (जो चंद्र मास के हिसाब से वसन्त के आरम्भ का दिन है) पूरे 40 दिन पूर्व पड़ता है। वैसे यह ज़रूर दिखाई पड़ता है कि वसन्त का कुसुमाकरत्व आज के दिन के आसपास शुरू हो जाता है। आमों में बौर आ जाते हैं, गुलाब और मालती आदि पुष्प खिलने लगते हैं। भौंरों की गुन्जार और कोकिल की आम्र वृक्षों पर कुहूरव सुनाई पड़ने लगती है। जौ और गेहूँ में बालें आने लगती हैं। इसलिए उसको वसन्तोत्सव के रूप में मनाया जाना सार्थक ही है।

वसन्त ऋतु में प्रकृति प्रमोद से भरी हुई दीख पड़ती है। सभी वृक्षों में नवीन कोंपलें आने लगती हैं। न बहुत जाड़ा होता है और न अधिक गरमी। चरक संहिता में कहा गया है कि इस ऋतु में कामिनी और कानन में अपने आप यौवन फूट पड़ता है। "वसंतेऽनुभवेत स्त्रीणां काननानाम् च यौवनम्।" इसलिए होली और धमार आदि हर्षोल्लास की संगीत लहरी गूंज पड़ती है।

वेदाध्ययन के आरम्भ का भी यही प्रधान समय है। वेद में कहा गया है—"वसन्ते ब्राह्मणमुपनीयात्।" आनन्द कंद भगवान् श्रीकृष्ण तो इस उत्सव के साक्षात् अधिदेवता ही हैं। उनका पूजन और श्री राधा-माधव के आनन्द-विनोद का उत्सव ब्रजभूमि में इस अवसर पर ख़ास तौर से मनाया जाता है। भगवान् का आराधन तो हर समय मंगलकारी है किन्तु नवीन उल्लास और विशेषता जो प्रकृति के विकास का काल है उस अवसर पर उनका आराधन तो और भी

मंगल करने वाला होता है। इसलिए आज के दिन विशेष रूप से संगीत गोष्ठो आदि करके भगवान् का गुण-गान करना चाहिए।

84. भीष्माष्टमी

माघ शुक्ला अष्टमी

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय में कहा गया है कि—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥24॥

अर्थात्—अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छः मास में शरीर छोड़ने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म को पाते हैं (लौटकर नहीं आते)।

कर्मयोगियों को मृत्यु के बाद भिन्न-भिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न मार्गों से जाना पड़ता है। इन मार्गों को पितृयान और देवयान कहते हैं। एक प्रकाशमय है और दूसरा अंधकारमय। एक से जाने पर पुनर्जन्म लेकर आना नहीं पड़ता और दूसरे से जाने पर यह माना जाता है कि कर्म पूरे होने में कुछ कसर है। इसलिए पुनः इस संसार में जन्म लेना पड़ता है। ब्रह्म को जानने वाले लोगों की यह दो ही गतियाँ गीता में मानी गईं हैं। इन दोनों गतियों का यदि विस्तृत विवेचन किया जाय तो एक ग्रंथ ही अलग बन जाय। परन्तु इतना लिखने का अवकाश इस ग्रंथ में नहीं हो सकता, फिर भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कर्मयोगी मृत्यु पर भी विजयी होता है और उसके इस संसार से जाने का समय निश्चित है। बिना उस काल के आए वह शरीर का त्याग नहीं करता। यह बात आज की तिथि स्मरण कराती है। क्योंकि महाभारत के युद्ध काल में दसवें दिन की लड़ाई में बाल ब्रह्मचारी पितामह भीष्म अर्जुन के बाणों से घायल

होकर शर-शैय्या पर गिरे। उस समय युद्ध बंद करके कौरव और पांडव उनका अन्तिम दर्शन करने के लिए पहुँचे। उस समय उन्होंने कहा कि अभी सूर्य का दक्षिणायन काल है। इसलिए मेरे मरने में अभी कुछ दिन का समय शेष है। सूर्य के उत्तरायण होने पर मैं शरीर छोड़ूँगा। जिस तिथि को उन्होंने शरीर परित्याग किया, वह यही माघ शुक्ला अष्टमी है जो सूर्य के उत्तरायण काल में पड़ती है।

पितामह भीष्म इस देश के रत्न थे। उन्होंने अपने चरित्र से वह पद प्राप्त किया था जो किसी को मिलना दुर्लभ है। वे सागर की तरह गम्भीर, हिमालय की तरह अटल और अनन्त आकाश की भाँति शान्त और निर्मल थे। महाभारत में तो उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ था जिनके मान की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण तक ने अपना प्रण भंग कर दिया था।

अपने यौवन काल में उन्होंने स्त्री का त्याग करने का दृढ़ संकल्प किया था। इस कठोर व्रत के पालन से उनकी कीर्ति अमर हो गई। यद्यपि उन्होंने राज्य भी अस्वीकार कर दिया था परन्तु परिस्थितियों ने उन्हें उसका भार सम्भालने के लिए विवश कर दिया। तो भी एक आदर्श मन्त्री के रूप में भारतीय इतिहास ने उनकी महिमा का बखान किया है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन की तो वे सजीव साधना ही हैं। उसी के बल पर वे परम ज्ञानी, परम समर्थ और धर्मनिष्ठ बने। बल्कि इच्छा मृत्यु वाले भी बन गए। उनकी जैसी वैधानिक वृत्ति (Constitutionalist) तो कदाचित् ही किसी दूसरी जगह देखने को मिले। महाभारत का शान्ति पर्व उनका वह महान् संदेश है जो अपनी मृत्यु शैय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने दिया था। उसमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—"सत्य के लिए निरन्तर प्रयत्न करो। सत्य ही सबसे श्रेष्ठ बल है। सदैव अपने मन पर अधिकार रखकर दया-भाव को अपनाओ। दुष्ट वृत्तियों के अधीन मत हो। जनता को ज्ञान और शिक्षा देने वाले वर्ग का शोषण मत करो। धर्म की प्रेरणा के अनुसार चलो और सदा अपनी शक्तियों का विकास करते रहो।" आज के युग में इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा उपदेश हो सकता है ?

आज के दिन उन्हीं भीष्म का पावन चरित्र सुनना और सुनाना

चाहिए। खासतौर पर विद्यार्थियों को उनके चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और उसके साथ-साथ उन्हीं जैसे दूसरे ब्रह्मचारियों की जीवनी पर विचार करना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस, शारदादेवी, महात्मा ईसा, शुकदेव, हनुमान, लक्ष्मण और समर्थ गुरु रामदास आदि अनेक महापुरुष इस चरित्र के महान् अवलंब हैं। उनकी जीवनियाँ अनंत प्रेरणाओं की स्रोत हैं। उन्हें समझकर अपने आचरण में लाने का संकल्प करना चाहिए।

85. जया एकादशी

माघ शुक्ला एकादशी

मालयवान नामक किसी गंधर्व से असंतुष्ट होकर देवराज इन्द्र ने उसे पत्नी समेत पिशाच बनने का श्राप दे दिया। वे दोनों गंधर्व से पिशाच हो गए और दुष्कर्म में रत होकर विचरने लगे। किंतु ऋषियों के सदुपदेश से उन्होंने जया एकादशी का व्रत करके पिशाच योनि से छुटकारा पाया और पुनः गंधर्व बन गए। जो मनुष्य आज के दिन व्रत उपवास करके विश्वपालक भगवान् विष्णु का श्रद्धा से पूजन करते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। यही इस एकादशी का महात्म्य है। यह कथा पद्म पुराण में इसी विश्वास के साथ लिखी गई है।

86. माघ स्नान समाप्ति

माघ पूर्णिमा

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

—गीता अ० 18 श्लोक 5

पूरे मास भर त्रिवेणी स्नान करने के बाद प्रयाग के कल्पवास या माघ स्नान का यह अन्तिम दिन है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए

कि यह उत्सव केवल मेला लगाने की वस्तु नहीं है। इन पुण्य पर्वों पर वही कार्य होने चाहिएँ जिनका वर्णन गीता के उपरोक्त श्लोक में किया गया है। यज्ञ, दान, तप यही तीनों साधन भारतीय व्रत-उत्सवों के प्राण हैं। इन्हीं से मानव जीवन पवित्र होता है। इन क्रियाओं के साथ समाज के जीवन का सामञ्जस्य ही भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत किये जाने वाले समस्त काम यज्ञ, दान अथवा तप के साँचे में ढले हुए हैं। उनमें इन्हीं तीनों भावों का समावेश होता है। यहाँ इन तीनों के महत्त्व और उपयोग पर प्रकाश डालना युक्तिसंगत होगा।

'यज्ञ' शब्द के अर्थ "यज् देव पूजा संगतिकरण दानेषु।" इस धातु पाठीय विवरण से सिद्ध है कि—देव पूजा, देव संगतिकरण और दान। व्याकरण के अनुसार यही इस शब्द का अर्थ है। अब विचार यह करना चाहिए कि यह पूजा, देवसंगतिकरण और दान हैं क्या एवं कैसे करने चाहिएँ ?

असल में तो यह तीनों ही दान हैं। एवं अनपेक्षित दान का नाम ही पूजा है। क्योंकि पूज्य की पूजा उसकी ज़रूरत देखकर नहीं की जाती वरन् अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए ी जाती है। किसी नई वस्तु को पैदा करने के विचार से जब एक-दूसरे की अपेक्षा रखकर दो तत्त्वों को परस्पर मिला दिया जाता है तब उसे संगतिकरण कहते हैं और लेने वाले की ज़रूरत देखकर जो दिया जाता है उसे दान कहते हैं।

उदाहरण के लिए ब्रह्म यज्ञ (वेदाध्ययन) को लीजिए। उसे देखकर यही लगता है कि गुरु शिष्य को उसकी रुचि का ज्ञान दे रहा है। मगर वहाँ उपरोक्त तीनों बातें आपको मिलेंगी। शिष्य द्वारा गुरु की सेवा—यह पूजा है। गुरु का शिष्य को पढ़ाना—यह दान है और गुरु के साथ अनेक प्रश्न करके विषय को हृदयंगम करना संगतिकरण है। गीता में वर्णन किये गए अनेक यज्ञों का रहस्य समझने की यही एक तालिका है। यह न समझ पाने से यज्ञ को केवल आहुति को यज्ञाग्नि में झोंकने के समान मानना चाहिए।

'यज्ञ' एक रासायनिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कुछ वस्तुओं के मेल से अन्य अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। यज्ञ तो बड़ा व्यापक शब्द

है। जिन तत्त्वों की जहाँ कमी होती है उन्हें पूरा करने का कार्य यज्ञों के द्वारा होता है। गीता में यह भी कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ने प्रजा के साथ यज्ञ को उत्पन्न करके उनसे कहा कि—इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो; यह तुम्हारी कामधेनु होवे; तुम इससे देवताओं को संतुष्ट करो और वे देवता तुम्हें संतुष्ट करते रहें। इस तरह आपस में एक-दूसरे को संतुष्ट करते हुए दोनों परम कल्याण प्राप्त कर लो। यही यज्ञ की यथार्थ धारणा है।

'तप' शरीर, वाणी और मन से किए जाने वाले तपों का वर्णन गीता के सत्रहवें अध्याय में किया गया है। यथा—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥14॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहित च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥15॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्चते ॥16॥

अर्थात्—देवताओं, विद्वानों, गुरुओं और द्विजों की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को कायिक—शरीर से होने वाला तप कहते हैं। ऐसी बात कहना जिससे कभी किसी दूसरे के मन को तक-लीफ़ न हो, प्रिय, सत्य और हितकारी शब्द कहना, सत्य शास्त्रों को पढ़ाना एवं पढ़ना वाणी से होने वाले तप हैं। तथा मन को हमेशा प्रसन्न रखना, सौम्य होना, मौन धारण करना, मन को वश में करना और अपनी भावनाओं एवं विचारों को पवित्र रखना यह मन से होने वाले तप हैं। इन तीनों तरह के तपों को यदि फल की आकांक्षा से रहित होकर श्रद्धा के साथ योग युक्त होकर किया जावे तो वह सात्विक तप कहा जाता है। जो तप पाखंड के रूप में या लोगों में केवल अपना मान और प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए किया जाता है वह राजसिक तप है। और यही तप यदि खुद कष्ट उठाकर दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिए किए जावें, उन्हें तामसिक तप कहा जाता है। यही दशा दान की भी है। गीता में उनका वर्णन भी बहुत सुन्दर हुआ है। जो कर्त्तव्य बुद्धि से,

देश, काल और पात्र का विचार करके अपने ऊपर किसी उपकार न करने वाले को दिया जाय वही सात्विक दान है। परन्तु किसी उपकार करने वाले का बदला चुकाने के लिए, किसी फल की आशा से, मन में दुख मानकर दिया जावे वह राजसी दान है और बिना देश, काल एवं पात्र का विचार किये हुए अपमान या अवहेलना के भाव से दिया जावे वह तामसिक दान है।

धार्मिक पर्वों में भाग लेने वाले लोगों के लिए गीता का यह चरित्र-कोष (Code of Conduct) बड़े महत्त्व का है। बिना इन गुणों को प्राप्त किए कल्पवास में रहना केवल कष्ट देने वाला ही लगेगा। इस-लिए गंगा माता के पवित्र तट पर रहते हुए इन्हीं तीनों बातों का अभ्यास करने से कल्पवास का पुनीत फल मिलता है। और मन तथा आत्मा को शान्ति मिलती है।

87. विजया एकादशी

फाल्गुण कृष्णा एकादशी

स्कंध पुराण में फाल्गुण कृष्णा एकादशी का महात्म्य इन शब्दों में वर्णन किया गया है कि—लंका पर आक्रमण करने के विचार से जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम अपनी रीछ-बानरों की सेना लेकर समुद्र के तीर पर पहुँचे तो सामने अपार सागर को देखकर उनके चित्त में यह शंका पैदा हो गई कि इस अगाध समुद्र को कैसे पार किया जायगा। वीरवर लक्ष्मणजी ने उन्हें आस-पास बसने वाले ऋषि-महात्माओं से परामर्श करने का सुझाव दिया। श्री राम ने यह सलाह मानकर समुद्र तट पर निवास करने वाले तपस्वी महात्माओं के आश्रमों में जाकर समुद्र लंघन का उपाय पूछा। उस समय उन महात्माओं ने कहा—"श्री राम! हम लोग जानते हैं कि तुम्हारे पास एक सागर तो

क्या अनन्त सागरों को पार करने वाली महाशक्ति है फिर भी हम लोगों का सम्मान रखने के विचार से हम से समुद्र लंघन का उपाय पूछा है। हम तपस्वी लोग तो हर अच्छे कार्य को करने के समय व्रत-उत्सवों के द्वारा ही उन्हें आरम्भ करते हैं। वही हम आपको भी बता सकते हैं। उससे आपका मंगल होगा। वह व्रत है फाल्गुण कृष्णा एकादशी। इस दिन एक मिट्टी का कलस (घड़ा) लेकर उसके ऊपर पीपल, बट, गूलर, आम और पाकर यह पंच पल्लव रखें। घड़े के नीचे सातों नाज और ऊपर एक मिट्टी के पात्र में जौ भरकर रखें। उसके ऊपर इस सृष्टि का पालन करने वाले लक्ष्मी और नारायण की मूर्ति स्थापित करके नियमपूर्वक श्रद्धा से पूजन करें। रात्रि पर जागरण करके भगवान् का स्मरण कीर्तन करें। द्वादशी को प्रात: घड़े को जल सहित समुद्र को अर्पण कर दें और मूर्ति किसी वेदपाठी विद्वान को भेंट कर दें। इस व्रत के करने से तुम्हें समुद्र ही क्या स्वयं राक्षसराज रावण तक पर विजय प्राप्त होगी। राम ने ऋषियों की आज्ञा का पालन करके समुद्र और रावण दोनों पर विजय पाई। उन्होंने इस व्रत को प्रचलित किया।

88. महाशिवरात्रि

फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी

चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुणे शिव पूजनम्।
तामुपोष्य प्रयत्नेन विषयान् परिवर्जयेत ॥

—शिव रहस्य

यह व्रत फाल्गुण कृष्ण चतुर्दशी को किया जाता है। चतुर्दशी के स्वामी भगवान् शंकर हैं अत: इसी रात्रि को व्रत करने के कारण इसे महाशिवरात्रि कहते हैं।

वैसे तो प्रत्येक मास की शिवरात्रि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को होती

है और शिव के भक्त उसे व्रत आदि करके मनाते हैं। परन्तु ईशान-संहिता के अनुसार फाल्गुण कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को ही महाशिव-रात्रि कहते हैं। यथा—

शिवरात्रि व्रतं नाम सर्वपाप प्रणाशनम्।
आचाण्डाल मनुष्याणां भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्॥

इस श्लोक के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अछूत, स्त्री पुरुष और बालक, युवा तथा वृद्ध सभी इसी व्रत को कर सकते हैं। प्राणियों में दया का बर्ताव करने के सिद्धान्त को समझने के लिए यह त्यौहार बड़े महत्त्व का है।

प्राचीन हिन्दू समाज में शिव और विष्णु को लेकर बड़े-बड़े मतभेद हो गए थे। जिसके कारण शैव और वैष्णवों में बड़े-बड़े संघर्ष भी हो चुके हैं। धर्माचार्यों और उनके अनुकरणकर्ताओं ने इस मतभेद की खाई को उत्तरोत्तर वृद्ध करने की ओर ही ध्यान दिया इसलिए दक्षिण भारत में शैवों और वैष्णवों ने पुराने जमानों में एक-दूसरे का कुछ कम खून नहीं बहाया। आश्चर्य तो यह है कि जीव दया के व्रत को लेकर हिंसाएँ की गईं। यह सब मानव की घातक वृत्ति के कारण हुआ।

जीवदया के सर्व प्रथम समर्थक आदि कवि महर्षि वाल्मीकि हैं, जिन्होंने रामायण महा काव्य की रचना करते हुए देवता, राक्षस, मनुष्य आदि के साथ पशु और पक्षियों के प्रेम की कथाएँ लिखकर समाज में नई चेतना को जन्म दिया। एवं मानवेतर सृष्टि पर प्रेम करने का पाठ सिखाया। भक्तशिरोमणी हनुमान, बानर नरेश सुग्रीव, गृद्धराज जटायु और भगवान् राम के वृद्ध महामंत्री जांववंत आदि की कथाएँ उन्होंने इस तरह अपने महाकाव्य में लिखीं कि आज उनकी गाथाएँ पढ़कर हमारे हृदय में यह भान ही नहीं रह जाता कि हम किसी पशु या पक्षी की बात पढ़ रहे हैं। वरन् आदरपूर्वक उन जीवों के प्रति श्रद्धा से हमारा मस्तक उनके सामने झुक जाता है। यह आदर या समता का भाव ही भारतीय संस्कृति में जीव प्रेम की सच्ची बुनियाद है। वशिष्ठ और कामधेनु, दिलीप और नंदिनी गाय, नकुल और युधि-ष्ठिर का राजसूय यज्ञ, गज और ग्राह, वेद की सरमा और चोरी करने

वाले फणि लोग, धर्मराज का कुत्ता, मनु और मत्स्य, राम के सेतुबंध में सहायक गिलहरी इत्यादि अनेक उदाहरणों में पशुओं और मानव की समता के भाव गुँथे हुए हैं। तब शैव और वैष्णवों का विवाद क्या उपहास की बात नहीं होगी ?

आधुनिक युग के महान् लेखक कविवर गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रयत्न तो और भी महत्त्व का है। उन्होंने जहाँ अपने रामचरित-मानस ग्रंथ को जन-जन की भाषा में लिखकर एक महान् धर्म ग्रंथ का सृजन किया है वहाँ शिव और विष्णु के भेद को हटाने का एक भगीरथ प्रयत्न भी किया है। और यहाँ तक लिखा है कि—

शिव द्रोही मम दास ॥
सो नर करिहँहि कल्पपरि घोर नर्क मँह बास ॥

अब ज़रा शिवरात्रि की कथा पर भी ध्यान दें। वह कथा पुराणों में इस प्रकार है कि एक सघन वन में एक सुन्दर जलाशय था, जिसके किनारे पर एक बेल का पेड़ था। उसकी जड़ में भगवान् शंकर की एक पाषाण-प्रतिमा सुशोभित थी। उस जंगल के हिरण रोज़ उस तालाब में पानी पीने जाते और जल पीकर उस बेल की छाया में बैठकर विश्राम करते। एक दिन एक व्याध उस स्थान पर आया। उसे अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए कुछ पशुओं का माँस लेना था। इसलिए वह बेल के पेड़ पर चढ़-कर बैठ गया और हिरणों के आने की प्रतिक्षा करने लगा। रात हुई। इतने में दो-चार हिरण आए। व्याध ने उन्हें देखकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। व्याध के चढ़े हुए बाण को देखकर उनमें से एक हिरण ने व्याध से कहा—"हे व्याध ! आप बाण न चढ़ाएँ हम आपकी सेवा के लिए तैयार हैं परन्तु आप यदि हमें इतना अवकाश दे दें कि हम एक बार अपने बच्चों को देख आएँ तो हम लोग स्वयं यहाँ आकर आपको आत्म-समर्पण कर देंगे।"

व्याध यह सुनकर हँसा और बोला—"क्या हाथ में आये हुए शिकार को छोड़ देना बुद्धिमानी है। मेरे बाल बच्चे भी तो भूख से तड़प रहे हैं।" हिरणों ने कहा—"जिस तरह तुम्हें अपने बच्चों की याद सता रही है

वैसे ही हमें भी अपने बच्चों की याद परेशान कर रही है। उन्हीं बच्चों के लिए हम तुम से थोड़ा-सा समय चाहते हैं। व्याध के मन में कौतूहल जाग उठा। और यह देखने के लिए कि यह पशु भी अपने वचन का पालन कर सकते हैं, उसने सूर्योदय से पहले लौट आने का वचन लेकर उन्हें छोड़ दिया और हिरणों के आने तक वह जागता रहे इसलिए पेड़ से नीचे उतरकर बेल की पत्तियाँ गिन-गिनकर शिव के मस्तक पर चढ़ाता रहा।

उधर हिरण अपने-अपने स्थान पर गए और बाल-बच्चों से बिदा लेकर सूर्योदय से पहले व्याध के पास आ पहुँचे। पीछे-पीछे उनके बच्चे भी वहाँ चले आए। हिरणों ने आगे बढ़कर व्याध से कहा—"व्याध ! हम आ गए। मोह के कारण हमारे बच्चे भी चले आए हैं। परन्तु आप उनकी चिंता न करें। उन्होंने हमें प्रसन्नता से विदा दी है। इसलिए अब आप हमें मारकर अपने बच्चों की भूख मिटाएँ।" किंतु इसी बीच भगवान् शंकर ने उसकी पाप-वृत्ति को हरण कर लिया था। उसके स्वभाव में हिंसा की जगह दयावृत्ति जाग पड़ी थी। इसलिए उन मूक पशुओं के वचन को पालन करने की मर्यादा देखकर उसे हर्ष हुआ और वह उनसे बोला—"आप सब तो आदर के पात्र हैं। आपका बध करना सद्गुणों को मार डालने के समान है। मैं आपका बध नहीं कर सकता।" व्याध की ऐसी सद्भावना देखकर वे पशु तो उसपर प्रसन्न हुए ही, साथ में आशुतोष भगवान् शंकर भी उसपर प्रसन्न होकर वहाँ प्रकट हो गए और बोले—"व्याध ! जिस तरह इन मूक पशुओं का प्रतिज्ञा पालन देखकर तुमने उन्हें मृत्यु के भय से मुक्त किया है उसी तरह मैं भी तुम्हें मृत्यु भय से मुक्त करता हूँ और जीवनभर अपने बाल-बच्चों सहित सुखी रहने का आशीर्वाद देता हूँ। जाओ और प्राणीमात्र पर दया करने का अभ्यास करो। तुम्हें और तुम्हारे परिवार को सुख-समृद्धि की कमी नहीं रहेगी।"

शिव का वरदान पाकर वह व्याध अपने घर लौट आया और हिंसा वृत्ति त्यागकर प्राणीमात्र की सेवा में तत्पर हो गया। यही

महाशिवरात्रि के व्रत का परिणाम है। उसने मृत्यु के उपरान्त शिव-लोक की प्राप्ति की।

89. अविघ्नकर व्रत

फाल्गुरण शुक्ला चतुर्थी

फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गरणेशजी का शास्त्र की विधि से पूजन किया जाता है। किसी बड़े काम को निर्विघ्न पूरा करने के विचार से यह व्रत किया जाता है, इसीलिए इसे अविघ्नकर कहते हैं। वाराह पुराण के मतानुसार इस व्रत को अपने अश्वमेध यज्ञ को पूरा करने के लिए महाराज सागर ने, त्रिपुरासुर से युद्ध करने के समय भगवान् शंकर और समुद्र मंथन को निर्विघ्न पूरा करने के विचार से स्वयं नारायण ने किया था। इस व्रत में आज के दिन मंगलमूर्ति गजानन का गंध आदि से पूजन करें। तिलों से बने हुए पदार्थों का भोग लगाएँ, तिलों का हवन करें और तांबे के पात्रों में तिल भरकर योग्य पात्रों को दान करें। इससे विघ्न-बाधाओं का शमन होता है।

90. सीता अष्टमी

फाल्गुरण शुक्ला अष्टमी

यह व्रत सती शिरोमरिण महारानी जानकीजी के पूजन का है। संसार की महिलाओं में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने विवाह के बाद जिस तत्परता से अपने पति श्री राम की सेवा की है वह भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित है। उनके पवित्र चरित्र और उनके

नाम को स्मरण करते ही पतिव्रत धर्म का महात्म्य सजग हो उठता है। हिन्दू समाज में प्रत्येक महिला के हृदय पर उनका प्रभाव है। वे सब उनसे प्रेरणा प्राप्त करती हैं। लंका विजय के बाद भी जब एक धोबी के कहने से लोकरंजन का व्रत लेने वाले श्री राम ने उन्हें अपने से दूर कर दिया, उस समय महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहकर उन्होंने लव और कुश नामक दो बालकों को जन्म दिया। वे बालक श्री राम के समान ही यशस्वी और प्रतापी थे। उन्होंने अपनी बालसुलभ क्रीड़ा में आकर श्री राम के यज्ञाश्व को पकड़ लिया, और श्री राम की अश्वरक्षक सेना पर उन बालकों ने विजय पाई। यहाँ तक कि स्वयं श्री राम को भी उन्होंने परास्त ही कर दिया। जिस समय जानकीजी को यह मालूम पड़ा उस समय धरती फट गई और पतिव्रत धर्म की वह मूर्तिमती निर्मल गंगा उसमें समा गई और आने वाले युगों के लिए अपनी अमर कहानी छोड़ गई। उस दिन से घर-घर में उनकी पूजा हुई।

आज का त्यौहार उन्हीं मातेश्वरी की स्मृति को सजग रखने के लिए प्रत्येक भारतीय महिला बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ मनाती है। यह त्यौहार विशेष रूप से महिलाओं का त्यौहार माना जाता है।

आज के दिन चौकी पर लाल वस्त्र बिछाकर चावलों का अष्ट-दल कमल बनाया जाता है और जानकीजी की प्रतिमा रखकर उसी का पूजन किया जाता है। एक हजार दीये जलाए जाते हैं। यही इस पूजन की रीति है।

91. आम्लकी एकादशी

फाल्गुण शुक्ला एकादशी

फाल्गुणे मासे शुक्लायामेकादश्यां जनार्दनः ।
वसत्यामलकी वृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ॥

फाल्गुण महीने की शुक्ला एकादशी को आम्लकी एकादशी कहते हैं। इस दिन आँवले के वृक्ष के पास बैठकर भगवान् का पूजन किया जाता है। इसके सम्बन्ध की कथा ब्रह्माण्ड पुराण में यह दी गई है कि वैदेशिक नगर में चैत्ररथ राजा के यहाँ एकादशी व्रत का अत्यधिक प्रचार था। एक बार फाल्गुण शुक्ला एकादशी के दिन नगर के सम्पूर्ण नर-नारियों को व्रत-महोत्सव में मग्न देखकर एक व्याध कौतूहलवश वहाँ जाकर बैठ गया और भूखा प्यासा दूसरे दिन तक वहीं बैठा रहा। परन्तु अनजाने में व्रत और जागरण हो जाने का फल यह हुआ कि दूसरे जन्म में वह जयन्ती का राजा हुआ। इस थोड़े और धोखे से हो जाने वाले शुभ कर्म अथवा संगति का प्रभाव इस कथा से स्पष्ट होता है। इसीलिए एक संत का कथन है कि—

एक घड़ी आधी घड़ी आधी की पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की—कटै कोटि अपराध॥

92. होलिका दहन

फाल्गुण पूर्णिमा

होली हमारा प्राचीनतम त्यौहार है। आज के दिन छोटे-बड़े, ऊँच-नीच के विचार को छोड़कर रंगोत्सव मनाया जाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे दूसरा वसंतोत्सव कह सकते हैं। जाड़ा खत्म हुआ,

वसंत का विकास छोटी-से-छोटी वनस्पति तक को नया जीवन दे गया। पतझड़ को जमा की हुई पत्तियों और वृक्षों की सूखी डालियों को जमा करके अंतिम संस्कार कर देने का यह महापर्व है। सर्दी के गर्म कपड़े बक्स में रखकर हल्के परिधान से मानव-शरीर परिष्कृत होता है। इसी तरह मोटी और दबाकर रखने वाली भावनाओं को अलग करके नवीनता और कोमलता को धारण करने का संकेत प्रकृति माता की ओर से मिल रहा है। आज भी यदि इस संकेत को हम न समझ पाएँ तो होली का त्यौहार ही व्यर्थ गया।

किन्तु इतने अच्छे महोत्सव की जो छीछालेदर हमने कर डाली है वैसी दुर्दशा शायद ही किसी देश के लोगों ने अपने त्यौहारों की बनाई हो। आज तो आमतौर पर संयम की लगाम ढीली छोड़ दी जाती है। उसके स्थान पर लोगों में स्वच्छंदता का बोलबाला होता है। इस स्वच्छंदता की सनक में लोग इतने नीचे उतर आते हैं कि बेहूदा गालियाँ और कुरुचिपूर्ण गाने गाते हुए निर्लज्जता की सीमा लाँघ जाते हैं। और जहाँ आपस के प्रेम में एक-दूसरे के गले लगकर लोगों के मुख को अबीर और गुलाल लगाकर लाल करना चाहिए वहाँ कीचड़ उछालते हुए और ग़लाज़त फेंकते हुए लोग दिखाई देते हैं। आज तो सभ्यता के विकास का युग है। हर दिशा में नई प्रगति हो रही है। तब इस त्यौहार का यदि यही रूप बना रहा जो आज है तो शर्म से हमारी गरदनें नीचे ही झुकी रहेंगी।

असल में होली तो 'नवान्नेष्टि' यज्ञ है। बच्चों को नए से नए खेल-खिलौने चाहिएँ और व्रत करने वाले को स्वयं भी उसमें भाग लेना चाहिए। स्मरण रखें कि जिस तरह यज्ञ-याग आदि कर्मों से हमारी विचार-धारा संतुष्ट होती है उसी तरह बच्चों को हिलमिलकर खेल-कूद करने का अवकाश देने से उनके स्वास्थ्य की पुष्टि होती है। यह एक आवश्यक सामाजिक कर्तव्य है जिसके बिना हमारा राष्ट्रीय जीवन हराभरा नहीं रह सकेगा।

पौराणिक युग की एक कथा ने तो इस त्यौहार को और भी महत्त्व-पूर्ण बना दिया है। वह कथा एक बालक के आत्मविश्वास पर लिखी

गई है। उस बालक का नाम प्रह्लाद है। उसकी बुआ का नाम होलिका था। उसमें यह गुण था कि वह आग में बैठकर भी जलती नहीं थी। अपने भाई के कहने से वह होलिका बालक प्रह्लाद को लेकर आज के दिन आग में बैठी थी। परन्तु वह स्वयं जलकर राख हो गई पर प्रह्लाद जीवित निकल आए। उन्हें आग न जला सकी। उल्टे उसका पिता हिरण्यकशिपु ही मारा गया। इसी अवसर पर नवीन धान्य (जौ, गेहूँ और चना) की खेतियाँ भी पककर तैयार हो जाती हैं। मानव-समाज उन्हें उपयोग में लाने की तैयारी में होता है। किन्तु उन्हें देने वाले मालिक, इस जगत् के आधार भगवान् को अर्पण किए बिना उसका उपयोग कैसे करें? इसलिए आज की इस दहकती हुई अग्नि को भगवान् का रूप मानकर पूजन करने के बाद मंत्र उच्चारण करते हुए यव, गोधूम आदि के चारु स्वरूप बालों की आहुति देकर हुतशेष धान्य को घर लाकर प्रतिष्ठित किया जाता है। उसी से प्राणों का पोषण होकर राष्ट्र बलवान हुआ यही होलिका दहन का त्यौहार है, मंगलोत्सव मनाकर सबको गले लगाते हुए आपसी वैर-भाव को भुला देने का महापर्व है।

93. होला महोत्सव

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा

यह उत्सव होलिका दाह के दूसरे दिन अर्थात्—चैत्र कृष्णा प्रति-पदा को सारे देश में बड़ी धूम से मनाया जाता है। इसे घुरेंडी भी कहते हैं। भारत के गाँव-गाँव में इस उत्सव की धूम होती है। शहर के लोग गुलाल, गोष्ठी, परिहास और गाने-बजाने तथा देहात के लोग धूल धमाका, जलक्रीड़ा और धमार आदि के साथ इसे मनाते हैं। आजकल इसका स्वरूप बहुत ही उच्छृंखल और विकृत हो गया है। लोगों को

उन्हें बदलना चाहिए। भगवद्भक्ति के गीत और कीर्तन आदि का सुरुचिपूर्ण ढंग अपनाना चाहिए। लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि होली के जलाने में प्रल्हाद के निरापद अग्नि से बाहर निकल आने के हर्ष में यह उत्सव सम्पन्न होता है। शास्त्रों में इस दिन इसी रूप में नवान्नेष्टि यज्ञ बतलाया गया है। इस यज्ञ की समाप्ति पर भस्मवंदन और अभिषेक होता है। माघ शुक्ला पंचमी से चैत्र शुक्ला पंचमी तक वसंतोत्सव का काल है।

आज के उत्सव को नए रूप देने का काम बहुत बड़ा है। मद्य पान या नशीली वस्तुओं से लोगों को बचाने का खास कार्यक्रम आज के दिन रखा जाय तो बहुत अच्छा है।

94. शीतलाष्टमी

चैत्र कृष्णा अष्टमी

वंदेऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनी कलशोपेतां शूर्पालंकृत मस्तकाम्॥

—शीतलास्तोत्र

शीतलास्तोत्र में शीतला का जो रूप बतलाया गया है, वह शीतला रोग की गतिविधि समझने के लिए बहुत हितकारी है। उसमें कहा गया है कि शीतला दिगंबरा है, गर्दभ पर सवार है, सूप, मार्जनी और नीम की पत्तियों से अलंकृत है। एवं हाथ में शीतल जल का घट लिए हुए है।

हमारे देश में प्रायः शीतला का प्रकोप बड़े वेग के साथ होता है। उससे बचने के अनेक साधन भी होते रहते हैं। परन्तु प्राचीन समय में शीतला का सामूहिक पूजन और व्रत उससे बचने के उपायों के रूप में प्रचलित था। जैसा व्रत करने वाले के इस संकल्प से प्रकट है कि—

"मम गेहे शीतलारोग जनितोपद्रव २ा मनपूर्वकायुरोग्यैश्वर्याभिवृद्धिये शीतला षष्ठी तं करिष्ये ।"

उसके बाद सुगंधियुक्त गंध पुष्प आदि से शीतला का पूजन करें और शीतल पदार्थों का भोग लगाकर स्वयं भी उसी प्रसाद को ग्रहण करें । इस वृत को करने वाले के कुल में कुदाह ज्वर, पीतज्वर, विस्फोटक, दुर्गन्धि युक्त फोड़े, नेत्रों के रोग, शीतला की फुंसियों के चिह्न और शीतला जनित दोष दूर होते हैं ।

95. पापमोचनी एकादशी

चैत्र कृष्णा एकादशी

पाप मोचनी एकादशी की कथा भविष्यत् पुराण में इस भाँति मिलती है—एक समय वसंत ऋतु का आगमन होने पर इंद्रलोक की अप्सराएँ और गंधर्व चैत्ररथ बन में भ्रमण कर रहे थे । उस बन में अनेक ऋषि-महात्मा भी तप-साधन करते थे । वहाँ पर तप करने वाले मेधावी ऋषि को मुंजघोषा नाम की अप्सरा ने देखा । वह अपने कंठ से वीणा के स्वरों पर गान करती हुई उनके पास जा पहुँची । मेधावी ऋषि की योगनिद्रा टूटी और वह उस अप्सरा के रूप तथा गुण पर मुग्ध हो गये । मुनि ने अपना तप छोड़ दिया और अप्सरा ने स्वर्ग जाने का विचार त्याग दिया । दोनों साथ रहने लगे । किन्तु महात्मा की भोग वृति दिनोंदिन बढ़ने लगी । यहाँ तक कि तप का सारा तेज उनका क्षीण पड़ गया । वह अप्सरा भी उन्हें क्षीण-पुण्य मानकर छोड़ गई । मेधावी ने क्रुद्ध होकर उसे पिशाचिनी बनने का श्राप दे डाला । अप्सरा घबरा उठी । उसने अपने उद्धार का उपाय मेधावी ऋषि के सामने आकर पूछा । उन्होंने कहा—"दुष्टे ! इतने दिन मेरे साथ रहकर भी तेरी असंतुष्ट कामनाओं ने दूसरे पुरुषों के पीछे

भागने का अधर्माचरण करने की ओर प्रवृत्त किया और तू उन क्षणिक भावनाओं के वश होकर उस राह पर भाग खड़ी हुई। इस पाप का दंड तो तुझे मिलना ही चाहिए। परन्तु पापमोचनी एकादशी व्रत का अनुष्ठान तेरे वासनाओं से भरे हुए मन को शान्ति देगा। और इस के साधन से ही पापों का शमन होने पर तुझे पवित्र जीवन मिलेगा। यह कहकर वह अपने पिता के पास चले गए। मुंजघोषा वहीं रहकर व्रत-अनुष्ठान में लग गई। कुछ दिनों बाद इस व्रत के प्रभाव से शुद्ध होकर वह स्वर्गलोक को चली गई।

एक अबला को श्राप देकर उसका परित्याग करने के दुख से मेधावी ऋषि को भी अपार क्लेश हुआ। उन्होंने अपने पिता से अपने मन की शान्ति का उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि जिस व्रत को तुमने उस नारी को बताया है उसी के पूरा करने से तुम्हें भी आत्म-शान्ति मिलेगी। चित्त को ठीक करके उसी व्रत का पालन तुम भी करो। अतः मेधावी ऋषि ने उसी दिन से पापमोचनी एकादशी के व्रत अनुष्ठान को आरम्भ करके भगवान् विष्णु का पूजन किया और मन की निर्मलता प्राप्त की। यह इस व्रत का महात्म्य है।

96. चैत्री अमावस्या

चैत्र अमावस्या

विक्रमीय संवत्सर की यह अन्तिम रात्रि है। इसके बाद सूर्योदय होते ही नव वर्ष का श्री गणेश होगा इसलिए समूचे वर्ष में किये गए कार्यों का सही-सही मूल्यांकन करने के लिए इससे बढ़कर और कौन-सा दिन हो सकता है। नए वर्ष में नए संकल्प करके हमें आगे प्रगति करने की प्रतिज्ञा करनी है इसलिए क्या-क्या काम छूट गए और क्या-क्या रह गए इनकी समीक्षा आज के व्रत में करनी चाहिये और

रात्रि हमारे सारे अपराधों को क्षमा कर देने वाले भगवान् नारायण के स्मरण में बितानी चाहिए।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' हम अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ें और दिनोंदिन कृतसंकल्प होकर प्रगति की राह में बढ़े चलें यही शिक्षा भारत के त्यौहार हमें निरंतर देते रहते हैं। आज उनके स्वस्थ विचार और परिपाटियों को विकृत रूप में मानकर छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। हमें उनके शुद्ध सिद्धान्तों को अपनाने के लिये बड़े धैर्य और संयम से काम लेना होगा।

97. बुद्ध जयन्ती

वैशाख पूर्णिमा

बुद्ध धर्म के प्रवर्तक—महात्मा बुद्ध के नाम से विख्यात है। उन्हें हम भगवान् विष्णु का अवतार मानते हैं। इन जगद्विख्यात महापुरुष के जन्म-मरण की तिथियों के बारे में गम्भीर तथा व्यापक अनुसंधान होने पर भी, अभी तक एक सर्व-सम्मत मत की स्थापना नहीं हो सकी है। हाँ यह ज़रूर माना जाता है कि उनका जन्म ईसा से ५६० वर्ष पहले और निधन ४८० वर्ष इस्वी पूर्व में हुआ था।

उनके पिता का नाम शुद्धोदन और माता का नाम आभा देवी था। लुम्बनी नामक ग्राम को उस महापुरुष की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। बचपन में उनका लालन और पालन बड़े दुलार के साथ हुआ। युवावस्था आने पर उनका विवाह भी यशोधरा नाम की राज-कुमारी के साथ कर दिया गया। परन्तु विलास की विपुल सामग्रियों और कंचन तथा कामिनी का संग उनके मन को अधिक समय तक संसार के माया-जाल में फाँसने में समर्थ नहीं हो सका।

वह तो जगत् की माया में फँसे हुए लोगों को त्याग, संयम और

अहिंसा का पाठ पढ़ाने के लिए धरा-धाम पर अवतरित हुए थे। जन्म के समय में ही उनके ग्रहयोग को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी। उन्होंने राजा से कहा—"राजन्! आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपका पुत्र या तो पृथ्वी का सम्राट् होगा या फिर धर्म सम्राट्। यदि वैराग्य की ओर इनका मन झुक गया तो यह विरक्त ही होंगे।" राजा तो सामान्य संसारी प्राणियों की तरह राज्य-लिप्सा-आसक्त व्यक्ति थे, उन्होंने पूछा—"वैराग्य कैसे पैदा होगा?" ज्योतिषियों ने कहा—"जन्म, मृत्यु और जरा के दुख को देखकर।" राजा ने पुत्र को इन दृश्यों से दूर रखने की व्यवस्था कर दी। परन्तु होश सम्भालते ही कुमार के मन में यह सवाल पैदा होने लगे—मैं कौन हूँ? क्यों उत्पन्न हुआ हूँ। यह संसार क्या है? इत्यादि। एक दिन बन में उन्होंने एक दुर्बल, अपंग और वृद्धावस्था के संताप से दुखी एक व्यक्ति को देखा। कुमार ने अपने सारथी से पूछा—"यह व्यक्ति कौन है?" सारथी ने कहा—"अवस्था के भार से थका हुआ यह एक अपंग रोगी है और जीवन के शेष दिन पूरे करने के लिए जी रहा है।" कुमार ने पूछा—"क्या इस संसार के सभी लोगों की यही दशा होने वाली है?" सारथी ने कहा—"हाँ कुमार। इस संसार में जो भी वस्तु पैदा होती है, उस पर पहले शैशव का हास्य खिलता है, फिर उन्मत्त यौवन आता है और उसके बाद बुढ़ापे की जर्जरता उसके अंग की कान्ति को हरण कर लेती है। अंत में मृत्यु उसके अस्तित्व की नाक़ाब उलट देती है। यही संसार के सारे प्राणियों की गति है।" "क्या इस गति को बदलने की कोई राह नहीं है?"—कुमार ने पूछा। सारथी ने कहा—"नहीं कुमार! इस गति को आजतक कोई नहीं बदल सका।"

उसके बाद उन्होंने कुछ लोगों को कंधों पर लादे हुए एक शव को श्मशान की ओर ले जाते हुए देखा। वह चौंक उठे। उन्होंने सारथी से घबराकर पूछा—"यह क्या है?" सारथी ने कहा—"यही वह राह है जिससे एक दिन सभी को जाना पड़ता है, कुमार!" वह बोले—"क्या मुझे भी एक दिन इस संसार से ऐसे ही जाना पड़ेगा?" सारथी ने कहा—"कुमार! इस दुनिया में जो पैदा होता है उसे एक दिन अपनी

इच्छा न होते हुए भी मरना पड़ता है।" कुमार अधिक न देख सके और राज भवन की ओर लौट पड़े।

इसी बीच उनके एक पुत्र का जन्म हुआ। परन्तु उनके हृदय में वैराग्य प्रवेश कर चुका था। इसलिए घर, राज्य, पत्नी और पुत्र सब का मोह छोड़कर वह राज-भवन से निकल गए। अभोदा नदी के तीर पर उन्होंने अपने वस्त्र और आभूषण तथा केश उतार दिए। भिक्षुक वैरागी की कठिनता का अनुभव करते हुए वह किसी योग्य पथ-प्रदर्शक गुरु की खोज करने लगे। मस्तिष्क में वैराग्य-पूर्ण विचारों का स्रोत उमड़ा पड़ रहा था। अंत में एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर गम्भीर मनन में युक्त हो गए और वहीं उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ।

उनके उपदेशों से जगत् को चिर शांति के मुख्य साधन अहिंसा और दया का उपदेश मिला। धीरे-धीरे उनमें आस्था रखने वाले भक्तों की संख्या बढ़ चली, जिन्होंने दूरस्थ देशों में जाकर इनके सिद्धान्तों का प्रचार किया और एक समय ऐसा आया कि महात्मा बुद्ध सारे एशिया के धर्म सम्राट् बन गए। प्राणी मात्र के प्रति उनका आदर भाव था। सभी जाति के लोग उनके शिष्य हो सकते थे। स्त्रियों ने भी उनसे दीक्षा ग्रहण की। धर्म-प्रचारक संस्थाओं में उनकी स्थापित संस्थाओं ने बहुत बड़ा कार्य किया। उन्हीं भगवान् बुद्ध की शिक्षा से विशाल जन समुदाय को जीवन की राह मिली। उनकी स्मृति को सजग रखने के लिए प्रति वर्ष उनकी जयन्ती का उत्सव मनाया जाता है।

भारत में मनाये जाने वाले अन्य धर्मावलंबियों के त्यौहार

1. क्रिसमस

25 दिसम्बर

आज महात्मा ईसा मसीह की पुण्य जयन्ती का पर्व है। संसार की समूची जनसंख्या में लगभग 35 फ़ीसदी लोग उनके द्वारा प्रचलित किये गए ईसाई धर्म को मानने वाले हैं। भारत में इस मत के मानने वालों की संख्या 82 लाख है। भारत की जनसंख्या के अनुपात से हिन्दू और मुसलमान के पश्चात् तीसरा स्थान ईसाई मतानुयायियों का है। वे लोग इसे बड़ा दिन कहते हैं। इसका दूसरा नाम क्रिसमस है। ईसा के पूर्व प्राचीन रोमन राज्य में 25 दिसम्बर सूर्य देवता की वर्षगांठ का समझा जाता था और इसी दिन वे लोग क्रिसमस अर्थात् बड़ा दिन मनाया करते थे।

अरब देश के वायव्य कोण में फिलस्तीन (Palestine) नामक एक देश है। यही यहूदियों का स्थल है, जिसे भगवान् ने उन्हें दिया था। प्राचीन युग से यह स्थान बड़े-बड़े पैग़म्बरों, नबियों और अलौकिक शक्ति वाले महापुरुषों तथा भविष्यवक्ताओं की कर्म-भूमि माना जाता है। इसी में यहूदिया एक तहसील है। उसमें येरुसलम नामक एक नगर है। उससे कुछ दूर पर महात्मा यूसफ़ अपनी पत्नी सहित बैथेलहेम नामक नगर की एक धर्मशाला में आकर ठहरे। वहीं महाप्रभु ईसा का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम मेरिया था और तत्कालीन यहूदी प्रथाओं के अनुसार प्रथम सन्तान होने के नाते उन्हें भगवान् को अर्पण कर दिया गया। उनका सार्वजनिक जीवन तीस वर्ष की अवस्था से आरम्भ होता है। इसी समय उन्हें महात्मा जौन ने जार्डन नदी के तट पर शिक्षा दी थी।

ईसा के जन्म से पहले रोम दो हिस्सों में विभक्त था। यहूदी लोग

अपने को सर्व श्रेष्ठ मानते थे और दूसरी जाति वालों से सम्पर्क रखना उन्हें अपनी शान के खिलाफ़ लगता था। लोग अपनी अवस्थाओं के अनुसार अपने रीति-रिवाज एवं धर्म-व्यवस्था का बड़ी कट्टरता से पालन करते थे। उन्हीं कट्टरताओं के विरुद्ध महात्मा ईसा ने अपनी आवाज़ ऊँची की। वैसी ही जैसी महात्मा बुद्ध ने भारत में अपनी समकालीन कट्टरताओं के विरुद्ध ऊँची की थी। उन दिनों सारे संसार में किसी न किसी रूप में बलि-प्रथा प्रचलित थी। इस हिंसा से भरी हुई प्रथा के अनेक रूप थे। भारत में नरमेध, गोमेध, पशुमेध आदि बलि-प्रथाएँ प्रचलित थीं। यहूदियों में भी पशुमेध होता था। मध्य-पूर्व एशिया में अनेक स्थानों की खुदाई में राजा अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति के शव के साथ एक दासी या पत्नी, एक सेवक तथा एक घोड़ा ज़मीन में गाड़ दिया जाता था। मैक्सिको में लोग मनुष्य का हृदय निकालकर देवता को चढ़ाते थे और यह सब होता था धर्म के नाम पर।

येरुसलम का मन्दिर भी मेमने, कबूतर और पैसा कमाने वालों का अड्डा बन गया था। मन्दिर के कमरे किराए पर उठाए जाने लगे। पुरोहितों, कर्मकांडियों के पाखंड से जनता आतंकित हो उठी थी। वे धर्म के ठेकेदार अपने आपको मानव और ईश्वर के बीच की एक कड़ी मान बैठे थे। उनके विचार से ईश्वरीय कोप बलि चढ़ाने मात्र से ही ठंडा होता था। आँख के लिए आँख और दाँत के लिए दाँत का सिद्धान्त ही उन लोगों में घर बनाये हुए था। वे लोग अपने अपराधों के लिए निरीह जीवों की हत्या करते थे।

महाप्रभु ईसा ने इन प्रथाओं के विरुद्ध लोगों को प्रेरणाएँ दीं। उनका जीवन स्वयं भी बड़ा तपस्वी, सहिष्णु और सात्विक था। लोगों को उनकी वाणी से त्राण मिला। उनका सीधा सिद्धान्त था। जीवन के सभी क्षेत्रों को उनके उपदेशों ने प्रभावित किया। उनके विचार में धर्म जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का हल करने वाला था और यदि यह न हो तो वह अनुपयोगी सिद्ध होता था। वह मानते थे कि प्रेम और घृणा मन की संतानें हैं। मानव को अपने नैसर्गिक

गुणों का विकास करने में प्रयत्नशील होना चाहिए और केवल धर्म स्थान में आने-जाने और माला फेरने मात्र से धर्म का सृजन नहीं होता।

उनके व्यक्तिगत चरित्र में अनेक चमत्कारी घटनाएँ दिखाई देती हैं। नेत्र हीनों को नेत्र, पंगु को गति, मृतकों को जीवन, रोगियों को आरोग्य, कोढ़ियों को शुद्ध शरीर, बधिरों को श्रवण शक्ति, उपद्रवों का शमन, पानी पर चलना और भोजन पात्र को अक्षय बनाना आदि उनके जीवन की विविध घटनाएँ हैं। पर केवल चमत्कार दिखाकर लोगों को प्रभावित करना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। मानव थे और मानव के दुखों में उनकी सहायता करना ही उनके जीवन का व्रत था। उन्होंने वर्गहीन समाज की कल्पना की थी। सभ्य एवं असभ्य, दास एवं स्वतन्त्र लोगों के बीच की गहरी खाई को पाट कर मानव को ऊँचा उठने का शिक्षण दिया। उन्होंने स्वयं कष्ट और अपमान सहकर दूसरों को सहिष्णु बनने का उपदेश दिया। एवं मानव को दुःख से मुक्त करने में अपनी सारी शक्ति का उपयोग किया। उनके पर्वतीय उपदेशों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—"स्वर्ग का राज्य दीन-दुखियों का है। नम्र व्यक्ति ही धन्य है। इस सारी पृथ्वी के वे ही अधिकारी हैं। शुद्ध हृदय लोग ही परमात्मा को पा सकते हैं। धर्म और न्याय के लिए कष्ट सहने वाले लोगों के लिए स्वर्ग की निधियाँ सुरक्षित हैं।"

प्रभु ईसा का उपदेश सुसमाचार कहलाता है। उसके द्वारा उन्होंने भक्तिमार्ग की प्रतिष्ठा स्थापित की है। अपने आत्म-त्याग से इंसानों का हृदय बदल देने वाली साधना ही उनकी सबसे बड़ी देन है। दीन-दुखियों की सेवा ही भगवान् की सेवा है। विश्व में निराशा की जिन्दगी एक बुझा हुआ चिराग है उसे आश की ज्योति से चमकाना चाहिए। गिरे हुए लोग भी मन की पवित्रता से ऊँचे उठ सकते हैं। यही धर्म का सार है।

2. नया वर्ष

1. जनवरी

इंग्लैंड में 31 दिसम्बर की रात को 11 बजे से गिरजाघरों में घण्टे बजने शुरू होते हैं। आरम्भ में यह घण्टे धीरे-धीरे बजते हैं। उस समय लोगों को अपने खोये हुए साथियों की याद आती है। धीरे-धीरे घण्टों का शब्द तेज होने लगता है और सब लोगों के मन नए वर्ष के स्वागत के लिए तत्पर हो जाते हैं। रोम नगर के लोग भी इसी प्रकार आज के दिन को नया वर्ष मानकर इसकी खुशियाँ मनाया करते हैं। इस महीने का नाम भी वहाँ के एक पुराने देवता के नाम पर रखा गया था। उस देवता का नाम जैनस था। उसकी मूर्ति को असाधारण प्रतिभा का प्रतीक मानते थे। क्योंकि वह हमारे गत वर्ष की घटनाओं और अग्रिम वर्ष की होनहार के विषय का ज्ञान रखता था। सदैव जागरूक रहकर वह पीछे और आगे की बातों को देखता हुआ चलता था। यूरोप में पुराने समय से गतवर्ष का अन्तिम दिन और नए वर्ष का पहला दिन हँसी-खुशी में मनाने और दावतें उड़ाने में जाता था। चाहे गरीब हो या अमीर, प्रत्येक व्यक्ति बड़े उल्लास के साथ इस त्यौहार को मनाते थे। भारत में भी इसी आधार को लेकर यह त्यौहार मनाया जाता है। विशेषतः धर्म में आस्था रखने वाले लोगों के लिए यह बड़ा खुशी का पर्व है।

3. ईस्टर

मार्च

ईसाई भाइयों का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार ईस्टर भी है। यह वसंत-ऋतु में पड़ता है। ऐसा भी माना जाता है कि इस दिन प्रभु ईसामसीह तीन दिनों की मृत्यु के बाद उठकर बैठे थे। इन तीन दिनों तक उनका पार्थिव शरीर बिलकुल मृतक के समान निश्चेष्ट पड़ा रहा परन्तु जब वे उठ बैठे, तो लोगों ने बड़ा हर्ष प्रदर्शन किया। वह लोगों की प्रसन्नता का विषय बन गया। उसी उल्लास की घड़ी को ईस्टर कहते हैं। ईस्टर शब्द सम्भवतः इग्रोस्टर शब्द से निकला हुग्रा-सा लगता है। इग्रोस्टर ऐंग्लो-सैक्शन देवी थी। यह देवी वसन्त ग्रौर उषा काल की देवी मानी जाती है। यह त्यौहार ब्रिटेन में सेंट ग्रगस्टाइन द्वारा सन् 597 ई० के लगभग ग्रारम्भ किया गया था। तभी से वहाँ के लोग इसे मनाते हैं।

ईस्टर के बारे में यह भी जानने योग्य है कि यह त्यौहार हमेशा एक ही तारीख पर नहीं पड़ता। 21 मार्च के बाद जब पहली बार चाँद पूरा पड़ता है ग्रौर उसके बाद जो पहला रविवार ग्राता है वही ईस्टर माना जाता है। 22 से 25 तक यह कभी भी पड़ सकता है। कभी-कभी इसमें तीन-तीन सप्ताह का भेद पड़ जाता है। ईस्टर के रविवार से पहले जो सप्ताह पड़ता है, वह पवित्र माना जाता है। प्रभु ईसा को इस सप्ताह में बड़े-बड़े संकट सहने पड़े थे। ईसामसीह रविवार के दिन इजराइल की राजधानी में घुसे थे। उस समय लोग ताड़ के वृक्षों की शाखाएं लेकर उनसे मिलने के लिए टूट पड़े थे। इसी से उसे पाम संडे भी कहते हैं। इसी घटना के ग्राधार पर पादरी लोग पाम संडे को ताड़ के वृक्षों की शाखाएँ जनता में बाँटा करते हैं। कभी-कभी उसे लेकर जुलूस के रूप में नगर-यात्रा करते हैं ग्रौर उसके बाद उनमें ग्राग लगा दी जाती है। एवं राख ग्रगले वर्ष के लिए रख ली जाती है।

4. गुड फ्राइडे

मार्च

उपरोक्त रविवार के बाद गुड फ्राइडे आता है। जो ईसाई धर्म में सबसे अधिक गम्भीर माना जाता है। इसी दिन प्रभु ईसा को फाँसी पर चढ़ाया गया था। इस दिन रोम के सैंट पीटर्स नामक ईसाइयों के सबसे बड़े गिरिजाघर में शोक छाया रहता है। इस दिन पादरी और उनके कर्मचारी शोक के रंगवाली पोशाक पहनते हैं और अपने अस्त्रों को उल्टा लेकर चलते हैं।

5. रमज़ान

मुस्लिम भाइयों का यह पवित्र मास है। इन दिनों वे एक महीने का रोज़ा अर्थात् उपवास रखते हैं। फ़रिश्ता जिब्रील के द्वारा भगवान् ने जो संदेश तेईस वर्षों में पैगम्बर साहब के पास भेजा था, वही पैगाम पैगम्बर साहब ने जगत् को दिया। हज़रत जिब्रील जिस संदेश को लाए थे उसका नाम कुरान शरीफ़ है। रमज़ान के दिनों में वह उतरे थे इसी लिए यह मास अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

कुरान शरीफ़—ईश्वर के यहाँ रक्षित उत्तम ज्ञान भंडार की पुस्तक 'लौहे-महफ़ूज़' में लिखी है। उसी महान् ईश्वरीय लेख का यह अंश है। कुरान-शरीफ़ खजूर के पत्तों और भित्तियों पर लिखकर रखी गई थी। बहुत-से लोगों ने उसे कंठ कर रखा था। पहले खलीफ़ा हज़रत अबूबक्र के समय में बहुत-से याद रखने वाले लोग यमन के युद्ध में शहीद हो गए थे। इसलिए हज़रत उमर ने हज़रत अबूबक्र से कुरान शरीफ़ का प्रामाणिक संकलन करने के लिए अनुरोध किया और प्रामाणिक प्रति को सुरक्षित करने का सुझाव दिया।

हज़रत अबूबक्र ने उसकी एक प्रति संकलित करके हज़रत उमर की पुत्री और पैगम्बर साहब की धर्मपत्नी बीबी हफ़्सा के पास रखवा दी। हज़रत उसमान तीसरे ख़लीफा हुए। उनके समय तक अनेक देशों में मुस्लिम राज्य और धर्म फैल चुका था परन्तु कुरान शरीफ़ में पाठ-न्तर होने लगा था। हज़रत उसमान ने उसकी प्रतियाँ तैयार कराने का आदेश दिया। हज़रत ज़ैद को पूरी कुरान कंठ थी। परन्तु उसमें भाषा का भेद पड़ चुका था। इसलिए हज़रत कुरेश की भाषा को मान्यता दी गई। क्योंकि पैगम्बर साहब भी उसी गोत्र के थे। उसी भाषा में कुरान नाजिल हुई। पैगम्बर साहब के अनेक प्रवचन हदीस कहलाते हैं। उनका वही आदर है जो हिन्दू-धर्म में स्मृतियों का है। उनमें इस्लामी आचार और पैगम्बर साहब की दैनिक चर्चा का विवरण है।

नबी और रसूल शब्द कुरान में आया है। 28 नबियों का भी उसमें वर्णन किया गया है। वे सब ईश्वर की ओर से हर युग, देश तथा जाति में भेजे गए हैं। उन सभी ने ईश्वर के संदेश मानवों को सुनाए। पैगम्बर साहब अन्तिम संदेश लाने वाले रसूल थे। रसूल का महत्त्व इसलाम धर्म में बहुत बड़ा है। यद्यपि अल्लाह ही सबसे बड़ा और सबके ऊपर है परन्तु पैगम्बर या रसूल भी उसी के समान पूज्य है।

कलमा, नमाज़, ज़मात, रोज़ा तथा हज यह पाँच मुस्लिम धर्म के अनिवार्य कर्म हैं। 'कलमा' इस्लाम का मूल मंत्र है। उसका केवल एक ही संदेश है कि 'अल्लाह' के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है। और पैग़म्बर साहब उसके भेजे हुए रसूल हैं। 'नमाज़' रात-दिन में पाँच बार पढ़ी जाती है। भगवान् को याद करने की यह एक विधि है। 'ज़कात' अपनी आय का ढाई प्रतिशत दान करना मुस्लिम धर्म में अनिवार्य माना जाता है। दान करना मानव-धर्म है। इस्लाम उसकी अनिवार्य शिक्षा देता है। 'रोज़ा' आत्म शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। महीने भर तक केवल एक बार सायंकाल को अन्न और जल लेकर मुस्लिम भाई इस कठिन व्रत को करते हैं। पाँचवी बात मक्का शरीफ की तीर्थ यात्रा 'हज' है।

इस्लाम की साधना समन्वयात्मक है। वह व्यक्ति के महत्त्व की जगह समूह को प्राथमिकता देता है। एकेश्वरवाद का दृढ़ समर्थक है। इस्लाम में ईश्वर की उपासना का साधन सरल और सीधा है। नारी के जीवन की उसमें प्रतिष्ठा क़ायम की गई है। साम्य का अमोघ मंत्र उसकी देन है। जिसके कारण राजा और रंक एक पंक्ति में खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं। इस्लाम ने दिमाग़ी उलझनों में मानव को न छोड़कर सत्य जीवन की राह दिखाई है।

6. ईद

रमज़ान के बाद रोज़ा समाप्त होने पर ईद पड़ती है। यह इस्लाम मतावलंबियों के लिए खुशी का त्यौहार है। नए कपड़े पहनकर पहले मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ते हैं, और उसके बाद आपस में एक-दूसरे के गले मिलकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

7. वकरीद

इस त्यौहार को हज़रत मुहम्मद साहब ने शुरू किया। उनसे पहले भी लोग इस त्यौहार को मनाते थे। इसलिए मुसलमानों का यह बहुत पुराना त्यौहार है। इस पर पशुओं की कुरबानी की जाती है। कुरान में बलि के विषय में कहा गया है कि अल्लाह ताला के पास मांस व रुधिर तो नहीं पहुँचता मगर वह मांस खाना हलाल है जो उसके नाम पर किया गया हो। असल में तो एक त्याग-वीर की कथा का स्मारण इस त्यौहार को मनाते समय जागृत होता है। वह भक्त थे ईश्वर-निष्ठ इब्राहीम। उनके दो पुत्र थे। छोटे लड़के इस्माइल पर उनकी प्रीति कुछ विशेष थी। यह देखकर एक दिन शैतान ने विचार

करके ईश्वर से कहा—"यह देखिए अपने भक्त की लीला। आप समझते हैं कि आप ही से वह भक्त प्यार करता है परन्तु प्रीति आप से ज्यादह अपने बेटे पर है।" उसी दिन अल्लाह ताला ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कुरबानी करने का आदेश दिया। भक्त इब्राहीम ने एक पशु की कुरबानी कर दी। परन्तु रात को उन्होंने फिर वही स्वप्न देखा। दूसरे दिन उन्होंने उससे बड़े पशु की कुरबानी की। मगर वह भी अल्लाह ताला को मंजूर नहीं हुई। उसने फिर से स्वप्न देकर भक्त इब्राहीम से कुरबानी करने को कहा। इब्राहीम ने इस स्वप्न में बड़ी विनम्रतापूर्वक उसकी प्रार्थना करते हुए उससे पूछा—"मेरे मालिक! तू किसकी कुरबानी मुझसे चाहता है?" ईश्वर ने कहा—"तेरे प्यारे बेटे की।"

मालिक की मरजी सुनकर इब्राहीम को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। उसने अपना जीवन उसकी मरजी पर उत्सर्ग कर दिया था। इसलिए उसकी मरजी को पूरा करने के इरादे से दूसरे दिन वह अपने लड़के इस्माइल को लेकर कुरबान-गृह की ओर चल खड़े हुए। शैतान ने इस्माइल की माँ और स्वयं इस्माइल को बहकावे में डालने की कोशिश की। परन्तु वह सारा परिवार इतना दृढ़-निष्ठ था कि शैतान की बातों का उनपर कोई असर नहीं हुआ। पिता ने भी बिना आँखों में आँसू बहाए अपने पुत्र की गरदन पर छुरी रख दी। और ज्योंही वह उसका काम तमाम कर देने को उद्यत हुए त्योंही ईश्वर ने प्रकट होकर उन्हें रोका और उनके पुत्र की जगह एक पशु बलि लेना स्वीकार कर लिया। यह त्यौहार इसी घटना की याद दिलाने के लिए मनाया जाता है। आगे चलकर इन्हीं इस्माइल के वंश में इस्लाम धर्म के नबी हज़रत मुहम्मद साहब का जन्म हुआ, और बलिदान की महिमा समझाने के लिए नबी साहब ने इसका महत्त्व बढ़ाया।

8. मुहर्रम

मुहर्रम का त्यौहार मुसलमान भाइयों के लिए श्राद्ध का त्यौहार है। इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाले बड़े से बड़े शहीदों की याद को तरोताज़ा करने की शक्ति इस त्यौहार में है। हज़रत हसन हुसैन जैसे धर्म-निष्ठ लोगों ने अरबस्तान की पुण्य-भूमि करबला में धर्म के लिए कितना बड़ा बलिदान किया और हज़रत पैग़म्बर की आज्ञाओं एवं उपदेशों के प्रति वफ़ादार रहते हुए कितना बड़ा त्याग किया, कितनी तकलीफ़ें उठाईं और सारे युद्ध में कितनी बहादुरी से मृत्यु का आलिंगन किया—यही सब बातें मुहर्रम के अवसर पर सहसा जाग पड़ती हैं।

हमारे राष्ट्रीय त्यौहार

1. गणतंत्र दिवस

26 जनवरी

हमारे स्वतंत्र देश का यह सबसे बड़ा राष्ट्रीय महापर्व है। आज के दिन सन् 1950 में देश में नया संविधान लागू किया गया। सारे देश में आज का त्यौहार बड़ी धूम से मनाया जाता है। भारत की राजधानी दिल्ली में तो आज का महोत्सव देखने योग्य ही होता है। राष्ट्रपति भवन से एक शानदार जुलूस निकाला जाता है। भारतीय सेना की परेड होती है और विभिन्न प्रदेशों की सुंदर झांकियाँ सजाकर निकाली जाती हैं। यह जुलूस मीलों लम्बा होता है और लाखों दर्शक इसे देखने के लिए दूर-दूर से आकर एकत्र होते हैं। आज ही के दिन भारत के गणराज्य की प्रथम घोषणा सन् 1950 ई० को की गई थी। नव विधान की प्रस्तावना में भारत को संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा उनमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने का संकल्प किया गया है।

संविधान के पहले अनुच्छेद के अनुसार भारत राज्यों का संघ है और उसके राज्य क्षेत्र में आंध्र, असम, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास मैसूर, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य-प्रदेश, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, जम्मू काश्मीर, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अंडमन, तथा निकोबार द्वीप समूह और लकादीव, मिनिकोय द्वीप समूह के प्रदेश एवं भविष्य में प्राप्त कोई भी अन्य राज्य क्षेत्र आते हैं।

संघ की सारी कार्य शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वह उसका प्रयोग संविधान की मर्यादाओं के अनुसार अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करते हैं। समस्त भारत की ओर से सैनिक परेड में उन्हें आज के दिन सलामी दी जाती है।

2. गांधी निधन तिथि

30 जनवरी

आज के दिन हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का निधन हुआ था। सारे संसार में इस दिन को शोक छा गया था। एक ज्योति थी जो आज के दिन बुझ गई। गत सहस्राब्दि में भी कोई इतना महान् कर्मठ और दूसरों के हित में अपना जीवन अर्पण करने वाला कर्मयोगी महापुरुष नहीं हुआ था। उन्होंने इस देश पर जो उपकार किये हैं उन्हें इतिहास के अन्तर्गत स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया गया है जो आने वाले युगों को त्याग, तप, साहस, धैर्य और संयम के साथ कर्तव्य पालन के प्रशस्त मार्ग का निदर्शन करते रहेंगे। आज के भारत में जो सजीवता आई है वह उन्हीं की देन है।

जब किसी देश में कोई महापुरुष अवतरित होता है तब यह कहना कठिन होता है कि उस महापुरुष ने अपने युग का निर्माण किया। जहाँ तक भारत और गांधीजी का सम्बन्ध है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि दोनों पर एक-दूसरे का प्रभाव पड़ा है। युग की परिस्थितियों ने उनके मानस का निर्माण किया और गांधीजी ने उस पर अपनी छाप जमा दी। उन्होंने अपने पावन चरित्र से एक नवीन ढंग का विकास किया है। लोगों के पुराने सोचने के तरीकों को नया जामा पहनाकर उन्होंने युग के साथ चलने की प्रेरणा दी। उनका व्यक्तिगत जीवन एक संत का सा आदर्श जीवन था और उनका कार्य

क्षेत्र था सारा विश्व। विश्व से अलग रहकर वह कोई बात सोचना पसंद नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में संसार सत्य था और सत्य का आदर करने से ही जीवन की प्रतिष्ठा होगी। इसलिए उन्होंने अपना जीवन सत्य-मय बना डाला था। एवं उसके प्रभाव को मानस पटल पर निरंतर स्थिर रखने के विचार से उन्होंने एकादश व्रतों को अपने जीवन का साधन बनाया था। वे एकादश व्रत ये हैं :—

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यमसंग्रहः
शरीर श्रम अस्वाद सर्वत्र भय वर्जन।
सर्व धर्म समानत्व स्वदेशी स्पर्श भावना
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वे व्रत निश्चये।

इर व्रतों के पालन का जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन हममें से बहुतों ने गांधीजी के जीवन में अपनी आँखों से देखा है। अतः यह मानना कि व्रत और उत्सव रूढ़िवाद अथवा ढकोसले हैं, ठीक नहीं है। असल में व्रतों का पालन करने का उत्साह हमारे मनों में अब नहीं रह गया है। भौतिकवाद की चमक-दमक हमें जिस दिशा में बहाये लिए चली जा रही है उसी का फल यह हुआ कि हम कृत्रिमता, आचरणहीनता और भ्रष्टाचार के गढ़े में दिनों-दिन नीचे उतरते जा रहे हैं। उसे रोकने और कम करने का उपाय एकमात्र व्रतों का पालन और उनका सही सत्कार करना है। यही प्रेरणा हमें पूज्य गांधीजी ने दी थी। यदि निश्चय और श्रद्धा के साथ हमने उनकी प्रतिष्ठा की तो देश और समाज ऊँचा उठेगा इसमें कोई शक नहीं है। आज तक जितने भी बड़े-बड़े महापुरुष इस देश अथवा अन्य देशों में हुए उन सब ने इन व्रतों को किसी-न-किसी रूप में अपनाया और तभी उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी। वे लोग अपने आचरण से आने वाले युगों और पीढ़ियों के लिए एक नित्य संदेश छोड़ गए हैं। वह दिन सचमुच हमारे लिए बड़े सौभाग्य का होगा जब हमारे जीवन में किसी व्रत को करने का उत्साह जगेगा।

3. स्वतंत्रता दिवस

15 अगस्त

बड़े कठोर तप और त्याग तथा अनेक बलिदानों के बाद आज के दिन भारत ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त की थी। इसलिए यह पुनीत महापर्व सारे देश के लिए बड़े गौरव का है। एक ही समय पर आज के दिन प्रत्येक प्रदेश में राष्ट्रीय झंडा लहराया जाता है। राजधानी में इस कार्य को हमारे लोकप्रिय प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलालजी नेहरू सम्पन्न करते हैं। उस समय लाल किले पर झंडा लहराया जाता है। यह हमारे राष्ट्र का महोत्सव है।

संयोग की बात है कि संसार के सबसे सुन्दर देश स्विट्ज़रलैंड तथा हमारे पड़ौसी देश इंडोनेशिया ने हौलैंड के डच शासन से मुक्त होकर अगस्त के महीने में ही अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की थी। इसलिए अगस्त का महीना केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि अनेक देशों के लिए राष्ट्रीय महत्त्व का है। हमारी आज़ादी प्रत्येक देशवासी को मुबारिक हो इसीलिए यह महापर्व सारे देश में बड़ी शान के साथ मनाया जाता है।

4. बाल-दिवस

14 नवम्बर

भारत के प्रधानमंत्री और संसार के लोकप्रिय नेता पं० जवाहरलाल नेहरू का यह जन्म दिन है। सन् 1889 में इस तिथि पर प्रयाग में स्वर्गीय पं० मोतीलालजी नेहरू के पुत्र के रूप में उनका जन्म हुआ। उनकी माता का नाम श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू था। 14 वर्ष

की आयु में ही उन्होंने विदेश जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण की और बैरिस्ट्री पढ़कर स्वदेश लौटे। स्वदेश आने पर देश के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेना आरम्भ किया और एक वीर सेनानी की भाँति आज़ादी की लड़ाई लड़ी। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उनका परिश्रम बड़े महत्त्व का है। महात्मा गांधीजी उनसे बड़ा स्नेह रखते थे। अंग्रेज़ों के जाने के बाद उन्होंने देश का शासन-सूत्र सम्भाला और प्रधानमंत्री के पद से बड़ी योग्यतापूर्वक देश को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। आज के भारत के सर्वतोमुखी विकास का श्रेय उन्हीं को है। उनके अथक परिश्रम और अदम्य साहस तथा उच्च चरित्र के कारण विश्व के दूसरे राष्ट्र भी उन पर मुग्ध हैं। शान्ति के अग्रदूत के रूप में दूसरे राष्ट्रों के लोग भी उनकी बात का आदर करते हैं। भारत की प्रतिष्ठा को उन्होंने ऊँचा किया है। सारे देश के लोग उन्हें शान्ति के अग्रदूत के रूप में मानते हैं और इसी रूप में दूसरे राष्ट्रों के लोग भी उनकी बात का आदर करते हैं। बच्चों के समाज में तो नेहरूजी पूरी तरह खिल उठते हैं। उनके निष्कपट और सरल प्यार में अपने आप को वह बिलकुल भूल से जाते हैं। बच्चे भी उन्हें चाचा नेहरू के नाम से पुकार कर बड़े खुश होते हैं। इसलिए नेहरूजी ने अपने जन्म-दिवस को अन्य किसी रूप में मनाने का निषेध करके बाल-दिवस के रूप में मनाना स्वीकार किया है। इसलिए यह देश भर के बच्चों की खुशी का पर्व है। आज के दिन सहसा ही उनके दिलों में अपने चाचा नेहरू का प्यार जाग पड़ता है। और वे अपने स्कूलों में अध्यापकों से मिठाई पाकर आनन्द में उछलकर चाचा नेहरू जिन्दाबाद के नारे लगाते हुए और हर्ष में किलकारियाँ भरकर कूदते हुए दिखाई देते हैं।

5. राजेन्द्र दिवस

3 दिसम्बर

आज भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के जन्म का 'न है। बाबूजी को देखते ही उनके सरल स्वभाव और विनम्र यवहार की जो छाप उनसे मिलने वालों के दिलों पर पड़ती है उससे .ह लगता है कि मानो प्राचीन समय का कोई तपस्वी महात्मा मिल ाया हो। उनका सारा जीवन एक कर्मठ तपस्वी का जीवन है उनका प्रारम्भिक जीवन एक आदर्श विद्यार्थी का जीवन था। तन् 1905 के बंग-भंग आन्दोलन के समय स्वदेश की समस्याओं की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। सन् 1911 में वकालत शुरू की और उसमें भी सच्चाई और ईमानदारी के कारण ड़ी ख्याति प्राप्त की। चम्पारन के सत्याग्रह समर के अवसर पर उनका सम्पर्क गांधीजी से हुआ। गांधीजी भी बाबूजी की सरलता और विनम्र व्यवहार पर मुग्ध हो उठे। चम्पारन के कामों में बाबूजी ने बड़ी तत्परता और लगन के साथ काम किया था इसलिए गांधीजी का उनपर बहुत बड़ा विश्वास कायम हुआ। सन् 1917 में होमरूल लीग का काम बढ़ा। देश के सभी प्रान्तों में उसकी शाखाएँ बनीं। उधर भारत सरकार की दुधारी नीति अपना काम कर रही थी। सन् 1919 में रौलेट रिपोर्ट के निकलते ही देश में बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। गांधीजी ने उसका नेतृत्व सम्हाला। उस समय बाबूजी ने भी अपना काम-काज छोड़कर उनके साथ काम किया। तब से निरंतर वह स्वतन्त्रता संग्राम के कामों में लगे रहे। सन् 1933 में पहले पहल जेल यात्रा की। छः मास बाद हजारीबाग जेल से मुक्त हुए। उधर यरवदा जेल में गांधीजी ने हरिजनों की समस्या को लेकर अपना आमरण अनशन आरम्भ किया। उस समय पर किये गए काम बाबूजी के नाम के साथ भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। राजनैतिक लड़ाई के अनेक उतार-चढ़ाव के अवसरों पर राजेन्द्र बाबू ने असाधारण धैर्य,

कर्त्तव्य-निष्ठा और साहस के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन किया अनेक बार जेल यातनाएँ सहीं किन्तु कभी अपने छोटे-से-छोटे कर्त्त की भी उपेक्षा नहीं की। 21 सितंबर, 1946 में भारत सरकार की ओ से अन्तरिम सरकार बनी। उसमें बाबूजी को अन्न और खेती व विभाग सौंपा गया। उस समय देश में अन्न संकट बहुत था। ब योग्यता से उन्होंने उसे सम्हाला। वह हमारे राष्ट्रपति थे। सारे देश वासियों के दिल में उनके प्रति अगाध श्रद्धा और आदर का स्थान है

उपसंहार

भारत के त्यौहार, व्रत, उपवास, जयन्तियाँ और दूसरे समारोहों बारे में जो कुछ इस ग्रन्थ में अब तक लिखा गया, उसका आधार अ प्राचीन धर्म ग्रंथ ही हैं। पूर्व के लोगों द्वारा कही हुई बातों को आ की भाषा का कलेवर देकर लिखा गया है। इन कथाओं का संकलन करते हुए मुझे अनेक प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ साथ ही प्राचीन कथाओं को आज के ढंग से समझने और विचार करने की एक अच्छी प्रेरणा मिली। मैंने कुछ विचारों को लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। इसी अर्से में मेरे परम मित्र श्री मोहनसिंह सेंगर ने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी को नित्य तुलसीकृत रामायण सुनाने का आग्रह किया। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। श्रद्धेय बाबूजी जैसे धर्म-निष्ठ भक्त के सामने अपने अस्त-व्यस्त विचारों को लेकर 'श्री राम-चरित मानस' जैसे गहन ग्रंथ पर कुछ कहने का साहस करने की हिम्मत नहीं होती थी। परन्तु बाबूजी के सौजन्य और सरल स्वभाव ने कु कहने-सुनने का बल प्रदान किया। मैंने वह सेवा स्वीकार कर ल बाबूजी भी अपनी घातक बीमारी के आक्रमण से बचकर नर्सिंग होम राष्ट्रपति भवन लौटे थे। उन्हें विश्राम की बड़ी आवश्यकता थी। रा चर्चा से उन्हें बड़ी शान्ति मिलती थी। लगभग आठ या नौ महीने तक य

छोटा-सा सत्संग दैनिक रूप में चलता रहा। अवसर देखकर मैं कभी-कभी इस ग्रंथ में लिखे हुए विचारों को भी उनके सामने प्रकट करने लगता। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने दो शब्द लिखकर मेरे जैसे अल्पमति के विचारों की श्रृंखला को सम्मानित करने की कृपा की। इतना ही नहीं इसमें लिखी हुई अनेक प्रेरणात्मक बातें तो मैंने उन्हीं से प्राप्त कीं और यथा स्थान लिख भी डाला। मेरी बड़ी प्रबल अभिलाषा यह थी कि यह ग्रन्थ उनके सामने ही प्रकाशित हो जाय परन्तु दुर्भाग्य वश मैं वह न कर पाया। 'हरि इच्छा बलीयसी।'

कई प्रदेशों में कुछ त्यौहार इनके अतिरिक्त भी अपने-अपने ढंग से मनाए जाते हैं परन्तु मैंने प्रायः इन्हीं व्रत-उत्सव और त्यौहार तथा जयंतियों का वर्णन किया है जिनका आधार भारतीय है और जो आम तौर पर सभी प्रदेशों में मनाए जाते हैं। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय तो पाठक स्वयं करेंगे। यह अवश्य है कि इन पंक्तियों को लिखकर मुझे ऐसा लगता है कि मैंने अपनी प्राचीन मान्यताओं की गाथा लिखकर अपनी लेखनी सफल की है। इसलिए यदि कहीं पर कोई त्रुटि हो गई हो तो विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करें। साथ ही जिन भाइयों ने समय-समय पर अपने शुभ परामर्श देकर इस ग्रंथ को पूरा करने में मुझे सहायता दी और मेरा उत्साह बढ़ाया उनका मैं चिर-कृतज्ञ रहूँगा।

आज विज्ञापन के चमत्कार का युग है। धार्मिकता पीछे पड़ गई है। इसलिए प्राचीन कथा-साहित्य पर लोगों का महत्त्व घट गया है। किन्तु भौतिक विज्ञान की जिस चमक में हम आगे बढ़ते हुए दिनों-दिन तरक्की कर रहे हैं, उसमें यह भी सत्य है कि मानव में सद्गुणों की कमी होती जा रही है। देश के विचारक और कर्णधार इस दशा से चिन्तित हैं। भौतिक विकास मानव को प्रकृति का विजेता तो घोषित कर सकते हैं परन्तु उसकी मानवता की रक्षा उनसे हो सकेगी इसकी सम्भावनाएँ ज़रा कम ही हैं। संस्कृति और सभ्यता यदि विज्ञान से टकराकर चकनाचूर हो गई तो मानव के सद्गुणों का ह्रास हो जायगा, जिसके अभाव में बड़े-बड़े उठे हुए राष्ट्र भी पिट चुके हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है। इसलिए भौतिक विकास के साथ हमारी उच्च मानवीय मान्यताएँ और चरित्र गठन का मार्ग भी प्रशस्त हो, यही हमारी अभिलाषा है। हमारे त्यौहार, व्रत और जयंतियाँ उसी का निर्देश करती हैं। समाज इनसे प्रेरणाएँ लेकर आगे बढ़ता है। लोगों में सद्भावना और सदाचार का प्रसार होता है। इस दिशा में यदि इन पंक्तियों से लाभ हो सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

●